॥ श्री शंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

कर्मप्रकृतिसंग्रहणीज्ञातृभिः कर्मप्रकृतिप्राभृतप्रमातृभिरनेकटीप्पनग्रन्थनिर्मातृभिः

आचार्यवर्यश्रीमन्मुनिचन्द्रसूरिभिर्विरचितं

विषमपदाटिप्पनकम्

卐

तेन विभूषिता चिरंतनाचार्यकृता

चूर्णिः

卐

तया शोभितं पूर्वधरवाचकवरश्रीशिवशर्मसूरीश्वरप्रणितं

बन्धशतकम्

तथा

श्री उदयप्रभसूरिविरचितं

टिप्पनकम्

卐

तेन युतं पूर्वधरवाचकवरश्रीशिवशर्मसूरीश्वरप्रणितं

बन्धशतकम्

卐

प्रथम-आवृत्ति
पुस्तकाकार-५००
प्रताकार-२५०

मूल्य-पुस्तकाकार १४) रू०
" प्रताकार १६) रू०

वीर संवत् २४९६
विक्रम संवत् २०२६

प्राप्तिस्थान

१. भारतीय प्राच्यतत्त्व प्रकाशन समिति,
C/o रमणलाल लालचंद
१३५/१३७ झवेरी बाजार, बम्बई २



२. भारतीय प्राच्यतत्त्व प्रकाशन समिति.
C/o शा समरथमल रायचंदजी
पिंडवाडा, (राज०)
स्टे० सिरोहीरोड (W. R.)



३. भारतीय प्राच्यतत्त्व प्रकाशन समिति
. शा. रमणलाल वजेचन्द,
C/o दिलीपकुमार रमणलाल,
मस्कती मार्केट,
अमदाबाद २.



मुद्रक-
ज्ञानोदय प्रिन्टिग प्रेस,
पिंडवाडा (राज०)
स्टे. सिरोहीरोड (W. R.)

卐

Availadle from

1 Bharatiya Prachya Tattva Prakashan Samiti
C/o .Shah Ramanlal Lalchandji,
135/37 ZAVERI BAZAAR,
BOMBAY-2.
INDIA



2 Bharatiya Prachya Tattva Prakashan Samiti
C/o. Shah Samarathmal Raychandji
PINDWARA, (Rajasthan)
St.Sirohi Road (W. R)
INDIA

★

3 Bharatiya Prachya Tattva Prakashan Samiti
Shah Ramanlal Vajechand,
C/o Dilipkumar Ramanlal,
Maskati Market,
AHMEDABA-2.
INDIA



Printed by :
GYANODAYA PRINTING PRESS
PINDWARA.
St. Sirohi Road, (W.R.)
Rajasthan,
INDIA

Purvadhara Sri Shivasharma Suri's

BANDHA-SATAKAM

with

Chirantana-acharya's

Churani

and

Gloss,

Clarifying the knotty points thereof,

by

Acharya Sri **Munichandra Suri**

the author of various other glosses.



Including

A separate imprint of Bandha-Satakam

with

Gloss

by

Sri Udayaprabha Suri



प्रकाशकीय-निवेदन

यह सूचित करते हुए हमें अति हर्ष होता है कि प. पू. परमोपकारी स्व. परम गुरुदेव आचार्य भगवन् श्रीमद् **विजयप्रेमसूरीश्वर** महाराज की कृपा दृष्टि से उन श्री की परम पावनी निश्रा में संकलित और विवेचित लाखो श्लोकों वाले कर्म साहित्य के चल रहे प्रकाशन के मध्य में हमारी समिति इस कर्म-साहित्य विषयक पूर्वाचार्य विरचित अति प्राचीन ग्रन्थ रत्न को आज प्रकाशित कर रही है ।

यह **बंधशतक** ग्रन्थ पूर्वधर आचार्यदेव श्री **शिवशर्मसूरि** द्वारा विरचित है जिसके अति प्रौढ विवेचन रूप प्राचीन चूर्णिग्रन्थ भी उपलब्ध है । चूर्णिसहित यह सम्पूर्ण ग्रन्थ आज से पहिले मुद्रित हो चुकने पर भी पूर्वमुद्रित ग्रन्थ के पृष्ठ जीर्णप्रायः होने से इसका पुनःमुद्रण आवश्यक था। तदुपरान्त कुछ समय पूर्व चूर्णि ग्रन्थ के गूढार्थ को प्रकाश में लाती सहस्रावधानी प्रकाण्ड तार्किक आचार्यदेव श्री **मुनिचन्द्रसूरीश्वर** विरचित टिप्पणी की एक हस्तलिखित ताडपत्रीय प्रति पू. आगमप्रभाकर मुनिराज श्री **पुण्यविजय** म० संगृहीत ज्ञानभंडार में से उन के द्वारा उपलब्ध हुई । उसकी एक कामचलाउ प्रति बनवाकर उस प्रति के विशेष शुद्धिकरण हेतु मूल प्रति की एक फोटो कोपी बनवाकर उसे विराटकाय कर्मसाहित्य के कार्यों में अत्यन्त सहायक समझकर उस कार्य में नियुक्त महात्माओं के पास रक्खी गई जिस पर से पू. मुनि श्री **कीर्तिचन्द्रविजय** महाराज ने अपने अमूल्य समय का भोग देकर प्रेस कोपी तैयार की । उसके तैयार होने पर अभ्यासकर्ताओं की अनुकूलता के लिये शतक मूल ग्रन्थ उस पर चूर्णिग्रन्थ और चूर्णिग्रन्थ पर की टिप्पणी क्रमपूर्वक मुद्रित करवाने का निर्णय लिया गया जिसका मुद्रण शुरु हुए आज लगभग एक वर्ष पूरा होने आएगा ।

संपादन संशोधन

इस ग्रन्थ का संपादन-संशोधन प.पूज्य **जयघोष**विजय महाराज, प. पू. **धर्मानन्द**विजय म०, प. पू. **जितेन्द्र**विजय म., प. पू. **जगचन्द्र** वि. म., प० पू. **वीरशेखर** वि. म. तथा प. पू. **कीर्तिचन्द्र**विजय म. ने परस्पर मिलकर सुन्दर रीति से किया है ।

मुद्रित हो जाने बाद भी अनाभोग प्रेस दोषादि के कारण रही हुई अशुद्धियों के प्रमार्जन हेतु परम-पूज्य स्व. गुरुदेव श्री के विद्वान् शिष्यरत्न आगमप्रज्ञ आचार्यदेव श्रीमद् विजय **जम्बूसूरीश्वरजी** महाराज साहब तथा जैन **श्रेयस्कर** मण्डल पाठशाला, महेसानाके अध्यापक सुश्रावक श्रीयुत **पुखराजजी** भाई तथा श्रीयुत **रतिभाई** श्रीयुत **वसंतभाई** आदि अन्य अध्यापकों ने शुद्धि पत्रक तैयार किया जो ग्रन्थ मुद्रण के अन्त में मुद्रित करवाया है ।वाचकों से तदनुसार ग्रन्थ सुधार कर पढने का ध्यान रखने के लिये विनम्र निवेदन है ।

संपादन पद्धति–

मूलग्रन्थ चूर्णिग्रन्थ तथा टिप्पणीग्रन्थ और उसमें आते प्रतीक तथा साक्षी ग्रन्थ के अवतरण आदि के लिए विभिन्न विभिन्न छोटे-बडे खुले व गहरे विविध प्रकार के टाईप पसंद कर अभ्यास कर्ताओं की अनुकूलता बनाए रखने योग्य प्रयत्न किया गया है; जैसे मूल ग्रन्थ १६ पोइन्ट ब्लेक टाईप में. चूर्णि ग्रन्थ १६ पोइन्ट सामान्य टाईप में तथा टिप्पणी ग्रन्थ १२ पोइन्ट मोनो ब्लेक टाईप में मुद्रित करवाया है । चूर्णी में आते हुए साक्षी ग्रन्थ के अवतरणों के लिये १२ पोइन्ट सामान्य टाईप, टिप्पणी में चूर्णी की साक्षी के प्रतीक हेतु फेन्सी १२ पोइन्ट टाईप तथा अन्य साक्षी ग्रन्थ के लिये १६ पोइन्ट सामान्य टाईप रक्खे हैं । सुगमता हेतु चूर्णी टिप्पणी में क्रमशः संख्याएँ लिखी हैं ।

साथ ही चूर्णी के जो ग्रन्थांशो पर टिप्पणी ग्रन्थ है उन ग्रन्थांशों के प्रारम्भ में संलग्न क्रमांक देने के साथ उन ग्रन्थांश के टिप्पणी ग्रन्थांश को उन २ क्रमांकों द्वारा अंकित किया गया है। इसी प्रकार शक्य उपलब्ध पाठांतरों का भी टिप्पणी द्वारा संग्रह किया गया है, जिससे सर्वतोमुखी अभ्यास हेतु भी संपादन अच्छा हुआ है। मात्र सुगमता हेतु भिन्न २ टाईप काम में लेने से या मुद्रणदोष से कई स्थलों पर कुछ टाईप बराबर मुद्रित न होने से उन स्थलों को सुधार कर पढ़ने के लिये वाचकवृन्द से विनम्र अनुरोध है।

श्री उदयप्रभसूरि टिप्पणी युक्त बन्धशतक

उपरोक्त ग्रन्थ का मुद्रण चल रहा था उस अवधि में एक विचार ऐसा हुआ कि आचार्य श्री **उदयप्रभ**सूरीश्वर की जो शतक मूलग्रन्थ पर एक लघु विवेचन रूप टिप्पणी आज भी अमुद्रित है, यदि वह भी साथ ही एक ही पुस्तक में मुद्रित हो जाए तो सोने में सुगंध। अतः फिर कार्य रूप में परिणत करने हेतु खोज करने पर उस ग्रन्थ की एक ही प्राचीन प्रति है ऐसा हमे पता चला। वह प्रति बंबई की **'रोयल एशियाटिक सोसाइटी'** नामक संस्था के ग्रन्थभंडार में थी। जैन साहित्य विकास मंडल के प्रमुख सेठ श्री **अमृतलाल कालीदास** द्वारा इस प्रति की फोटो कोपी तैयार करवा कर देने हेतु निवेदन किया। निवेदन सेठ श्री ने स्वीकार किया और फोटो कोपी तैयार करवा कर हमें देकर हमारे कार्य के वेग में सहयोग दिया। इस ग्रन्थ की फोटो कोपी की प्रेस कोपी भी विहार में होते हुए भी पूज्य मुनिराज श्री **कीर्तिचन्द्र** विजयजी महाराजने करके अपनी प्राचीनश्रुत के प्रति भक्तिका परिचय दिया प्रेस कोपी होते ही यह टिप्पणी ग्रन्थ भी प्रस्तुत ग्रन्थ के पृष्ठ भाग में क्रमानुसार मुद्रित करवाया गया।

पूर्ववत् इस ग्रन्थमुद्रण में भी टिप्पणी ग्रन्थ टाईप १२ मोनो ब्लेक और मूल गाथा १६ पोइन्ट ब्लेक रक्खे गए हैं। इस ग्रन्थ के संपादक और संशोधक पूर्वोक्त महात्मागण ही है।

कृतज्ञता दर्शन

सबसे पहले हम स्वर्गस्थ गुरुदेव श्रीमद् विजय **प्रेमसूरीश्वरजी** महाराज का जितना आभार माने उतना कम है क्योंकि उनश्री की कृपा और प्रभाव से ही इस समिति का उत्थान और कर्मसाहित्य का विशाल सृजन हो सका है। इन सब के मूल आधार आप श्री ही है।

साथ ही इस ग्रन्थ के संपादन कार्य में साक्षात् सहायता देने वाले पूज्य मुनिराज श्री **जयघोष** विजयजी महाराज, पू. मु. श्री **धर्मानन्द** विजयजी महाराज, पू. मु. श्री **जगच्चन्द्र** विजयजी महाराज, पू. मु.श्री **वीरशेखर** विजयजी महाराज तथा पू. मु. श्री **कीर्तिचन्द्र** विजयजी महाराज का उपकार मानते हैं।

इस ग्रंथ के शुद्धिकरण कर्ता पूज्य आचार्य देव श्रीमद् विजय **जंबूसूरीश्वरजी** महाराज का बड़ा उपकार मानते हैं जिन्होंने इतनी उम्रमें इतने इतने शासन के कार्य होते हुए भी ज्ञान-भक्ति से प्रेरित होकर इस ग्रंथ के मुद्रित फर्मों को ध्यान पूर्वक पढकर शुद्ध किये हैं। इसी प्रकार महेसाणा के प्राध्यापक और अध्यापकों की ज्ञान भक्ति भी वास्तव में प्रशंसनीय हैं।

इस चूर्णिटिप्पणी की फोटो-कोपी प्राप्त करवाने में सहायक पूज्य आगमप्रभाकर मुनिराज श्री **पुण्यविजयजी** महाराज तथा श्री उदयप्रभसूरी कृत टिप्पणी की मूल कोपी पर से फोटो कोपी निकलवाने की स्वीकृति देने वाले मुंबई की संस्था **'रोयल एशियाटिक सोसाइटी'** के कार्यवाहकों तथा सेठ श्री **अमृतलाल भाई** का उपकार भी हम भूल नहीं सकते।

यह ग्रंथ पुस्तकाकार रुप में अच्छे लेजर पेपर में तथा प्रताकाररूप में जुन्नेरी टिकाउ हस्त निर्मित कागज पर छपवाया हैं जिसकी प्रतियाँ अनुक्रम से ५०० व २५० हैं।

ग्रन्थ मुद्रण सहायक

पिण्डवाड़ा श्राविका संघ के उपाश्रय के ज्ञान खाते की ६०००) रु. की जो रकम इस समिति में भेट स्वरुप मिली थी उससे इस ग्रंथ का मुद्रण करवाया गया है। ज्ञान खाते की रकम का सुयोग्य स्थल पर उपयोग करने का जो प्रयत्न श्राविका संघ ने किया है वह भी वास्तव में प्रशंसनीय है।

विजयादशमी वि० सं० २०२६
पिण्डवाड़ा (राजस्थान)
स्टे०-सिरोहीरोड

शा० समरथमल रायचंदजी (मन्त्री)।
शा० शान्तिलाल सोमचंद (भाणाभाई) चोकसी (मन्त्री)
शा० लालचन्द छगनलालजी (मन्त्री)
भारतीय प्राच्यतत्त्व प्रकाशन समिति

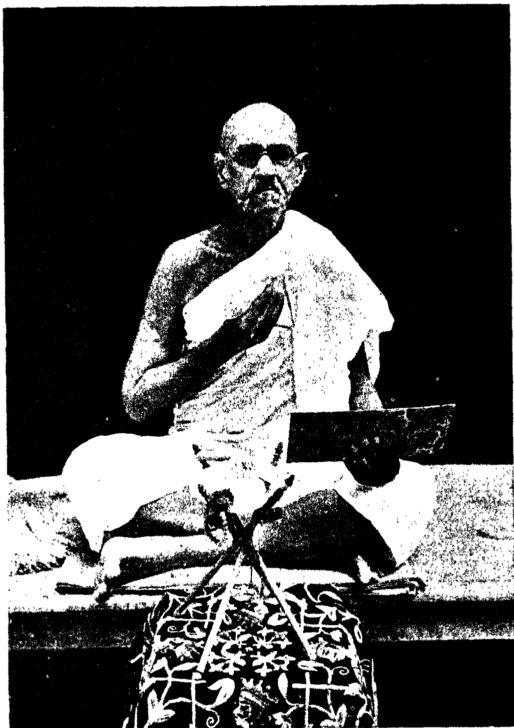
– समिति का निवेदन –

यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष होता है कि **'भारतीय प्राच्य तत्त्व प्रकाशन समिति'** द्वारा कर्मसाहित्य का सृजन एवं प्रकाशन गत कुछ वर्षों से सफलतापूर्वक हो रहा है। अत्यन्त अल्प अवधि में इस संस्था ने पाठकों की सेवा में निम्नलिखित विशालकाय ग्रन्थ प्रस्तुत किये है।

कर्मसाहित्य की सेवा एवं भक्ति का अपूर्व लाभ सद्गृहस्थ भी उठा सकते हैं। इस हेतु निवेदन है कि महत्वाकांक्षी सद्गृहस्थ एवं ज्ञानभंडार के ट्रस्टी मंडल इन ग्रन्थों की प्राप्ति के लिए इस संस्था मे रु० ३०१) देकर पूरे सेट का ग्राहक बन सकते हैं। जैसे-जैसे ग्रन्थ छपते जायेंगे, ग्राहकों को भेज दीये जायेंगे।

क्षपक श्रेणी	(मुद्रित)	प्रदेशबंध (मूल प्रकृति)	मुद्रित
स्थितिबंध (मूल प्रकृति)	,,	स्थितिबंध (उत्तरप्रकृति)	बाईन्डींगमें
रसबंध (,,)	,,	प्रकृतिबंध (उत्तरप्रकृति)	प्रेसमें
रसबंध (उत्तरप्रकृति)	,,	प्रदेशबंध (उत्तरप्रकृति)	,,
		मूलप्रकृतिबन्ध	,,

सकलागमरहस्यवेदी सूरिपुरन्दर बहुश्रुतगीतार्थ परमज्योतिर्विद् परमगुरुदेव



परमपूज्य आचार्यदेवेश श्रीमद्‌विजयदानसूरीश्वरजी महाराजा

विषयानुक्रमः

पृष्ठम् — विषयः

प्रकृतिबन्धः

स्थितिबन्धः

अनुभागबन्धः

प्रदेशबन्धः

श्री उदयप्रभसूरि टिप्पनयुतं बन्धशतकम्

बंधविधामद्वारान्तर्गतप्रकृतिबन्धः

स्थितिबन्धः

अनुभागबन्धः

प्रदेशबन्धः



आ ग्रन्थसर्जनना प्रेरक, मार्गदर्शक अने संशोधक



सिद्धान्तमहोदधि, कर्मशास्त्रनिष्णात, सुविशालगच्छाधिपति, सकलसंघकौशल्याधार,

स्व. परमपूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वरजी महाराजा.

॥ ॐ ह्रीं अर्हं नमः ॥

॥ णमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स ॥

॥ श्री-आत्म कमल-दान-प्रेमसूरीश्वरसद्गुरुभ्यो नमो नमः ॥

कर्म्मप्रकृतिसंग्रहणीज्ञातृभिः कर्म्मप्रकृतिप्राभृतमातृभिरनेकटीप्पनग्रन्थनिर्मातृभिराचार्यवर्यश्रीमद्-
मुनिचन्द्रसूरिभिर्विरचितविषमपदटीप्पनकसमलंकृतया चिरंतनाचार्यकृतचूर्ण्या
विभूषितं पूर्वधर वाचकवर-श्रीमत्-शिवशर्मसूरीश्वरप्रणीतम्

बन्धशतकम्

[बंधसयगं]



[तत्रादौ चूर्णिकृन्मङ्गलाचरण

[1]सिद्धो [1]णिट्ठयकम्मो सद्धम्मपणायगो तिजगणाहो ।
सव्वजगुज्जोयकरो अमोहवयणो जयइ वीरो ॥ १ ॥

॥ शतकचूर्णिविषमपदटिप्पनकम् ॥



प्रणिपत्य विमलकेवल-विलोकिताशेषभावसद्भावम् ।
श्रीजिनवरममरार्चित-चरणाम्बुजयुगलममलमहम् ॥१॥
वक्ष्यामि विषमकतिपय-पदसमुदयविवरण समासेन ।
बन्धशतकस्य चूर्णावुपवर्णितवर्ण्यभावायाम् ॥२॥
पदानि वैषम्यवदर्थभाञ्जि, यद्यप्यनेकान्यपि चात्र सन्ति ।
तथापि मे दुर्गतराणि किञ्चित् , व्याख्यातुमेषोऽधिकृतः प्रयत्नः ॥३॥

(१) 'सिद्धो णिट्ठयकम्मे' त्यादि। सित चिरकालबद्ध कर्म्म ध्मात निर्दग्धं शुक्लध्याना-नलाग्नेन स निरुक्तात् सिद्धः। षिधु गत्यामिति गतो निर्वृतिं, ख्यातो मु(भु)वनाद्भुतविभूतिभाजनतया। षिधू शास्त्रे माङ्गल्ये च'इति समस्तवस्तुस्तोमशास्ता, विहितमङ्गलः। षिधु संराध्यो राध-साध संसिद्धाविति साधितसकलप्रयोजनो वा सिद्ध इति। उक्त च--

---

1 'णिट्ठयकम्मो' इति मु. ।

सव्वेवि गणहरिंदा ²सव्वजगीसेणलद्धसक्कारा ।
सव्वजगमज्झयारे सुयकेवलिणो जयंति सया ॥ २ ॥
जिणवरमुहसंभूया गणहरविरइयसरीरपविभागा ।
भवियजणहिययदइया सुयमयदेवी सया जयइ ॥ ३ ॥

³सम्मद्दंसणणाणचरणतवमएहिं सत्थेहिं अट्ठविहकम्मगंठिं जाइजरामरणरोगअन्नाणदुक्खबीयभूयं छिंदित्ता अजरममरमरुजमक्खयमव्वाबाहं परमणिव्वुइसुहं कहं नाम ¹भव्वसत्ता पावेज त्ति आयपरहितेसीणं साहूणं पवित्ती । अओ अज्जकालियाणं साहूणं दुस्समाणुभावेणं आयुबलमेहाकरणाइगुणेहिं परिहीयमाणाणं अणुग्गहत्थं आयरिएण कयं सयपरिमाणणिप्फन्नणामगं सयगं ति पगरणं,

ध्मातं सितं येन पुराणकर्म्म, यो वा गतो निर्वृतिसौधमूर्ध्नि ।
ख्यातोऽनुशास्ता परिनिष्ठितार्थो, यः सोऽस्तु सिद्धः कृतमङ्गलो मे ॥
[श्रीभगवतीसूत्र वृत्तौ. भा. १ पृ. ३]

निरवशेषतया धुतं कम्पितं कर्म्म ज्ञानावरणादि, काम्यं वा अभिलषणीयं सर्वत्र निस्पृहतया येन स तथा सन् । सुंदरस्त्रिकोटिशुद्धतया धर्मः श्रुतचारित्ररूपः सद्धर्मः । पणायति व्यवहरति. स्तौति प्रणयति प्ररूपयतीति, वुण् प्रत्यये प्रकृष्टो वा नायको यः स तथा । सद्धर्मस्य पणायकः प्रणायकः प्रनायको वा यः स तथा । त्रिजगणेन सम्यग्दर्शन[ज्ञान]चारित्रप्रभवेन तत् समुदयरूपेणाभाति शोभते यः, त्रिजगतो वा भुवनत्रयस्य नाथो यो योगक्षेमकृत् यः स तथा । सार्व्वेषु सर्वहितेषु सव्येषु वाऽनुकूलेषु कृत्येष्विति गम्यते, जयोऽभ्यासस्तदुद्योगकरो भव्यानां तदुद्यमकरणशीलो यः । सर्वजगतो वा भुवनत्रयस्य विमलकेवलालोकपूर्व्वकवचनप्रभाप्राग्भाराविर्भावनेन, उद्योतकरः प्रकाशकरो यः स तथा । अमोहं वैचित्यविहीनं,अमोघं वा अनिष्फलं वचनं प्रवचनं यस्य स तथा । जयति दुर्जयरागादिरिपुपराजयफलानुभवात् सर्वोत्कर्षेण वा वर्तते । कोऽसावित्याह । वीरः, सू(शू)रवीरविक्रान्ताविति विक्रान्तोऽन्तरङ्गरागादिविजयाद्, विशेषेण ईरयति क्षिपति कर्म, गमयति, याति वा शिवमिति वीरः, वर्तमानतीर्थाधिपतिरिति ।

(२) 'सव्वजगीसेणलद्धसक्कार' त्ति जगतामीशा जगदीशाश्चमरेन्द्रशक्रादयः, सर्वे च ते जगदीशास्तेषां नमस्करणीयतया इनात् स्वामिनः जिनाल्लब्धसत्कारस्तवनन्तरपदपूजाप्राप्तिलक्षणो यैस्ते सर्व्वजगदीशेनलब्धसत्काराः । सव्वजगदीशेन वा तीर्थपतिना हेतुभूतेन लब्धसत्काराः, भवत्येव तेषां सत्कारलाभे भगवान् हेतुः तेषां तच्छिष्यतया पूज्यत्वादिति ।

(३) इह सर्व्वे प्रेक्षावन्तो न क्वचिदपि प्रयोजनमनुद्दिश्य प्रवर्तंते(न्ते) । अतः प्रेक्षावतः प्रकरणप्रणेतुः शास्त्रकरणलक्षणप्रवृत्तिफलमादर्शयंश्चूर्णिकारः 'सम्मद्दंसणनाणे' त्यादिना 'तमक्खवक्खा-इस्सामि' इतिपर्यन्तेन सगोचरां स्वप्रवृत्तिमाह ।

तत्रानुग्रहार्थमित्यत्रायमभिप्रायो यथा--इत ऐ(ए)व तावत्प्रकरणाद्बुद्ध्वा प्रागुक्तकर्म्मप्रकृतिप्राभृतादिग्रन्थाभ्यासाऽसहा अपि निर्वाणाऽवन्ध्यकारणबन्धादि परिज्ञानादिगुणभाजनभवनेन निर्वाणशरणा भवन्तु भव्या इति ।

1 सव्वसत्ता' इति खं ।

तमणुवक्खाइस्सामि । [4]तत्थ पुव्वं ताव संबंधो भण्णइ । [5]"संज्ञां निमित्त कर्त्तारं परिमाण प्रयोजनम् ।
प्रागुक्त्वा सर्व्वतन्त्राणां [1]पश्चाद्वक्तानुवर्णयेत् ॥१॥" इति वचनात्, एतस्स पगरणस्स किं णामं ? किं णिमित्तं ? केण वा कयं ? किं परिमाणं ? किं प्रयोजनं ? इति । तत्थ णामं दसप्पगारं ।

[6]"गुण १ णोगुण २ आदाणे ३ पडिवक्ख ४ पहाण ५ णिस्सितं ६ चेव ।
संयोग ७ माण ८ पक्ष्य ९ अणादिसिद्धंत १० विहियंति ॥ १० ॥"[2]

तत्थ एयं पगरणं पमाणणिप्फन्नणामगं सयगं ति । किं णिमित्तं कयं ? ति णिमित्तं भणियं । केण कयं ? ति [7]शब्दतर्कन्यायप्रकरणकर्म्मप्रकृतिसिद्धन्तविजाणएण [3]दिट्ठिवायत्थजाणएण [4]अणेगवाय-

---

(४) *'तत्थ'* इत्यादि । इह संबन्ध उपोद्घातः । संबध्यते शास्त्रनामनिमित्तादिजिज्ञासावतः श्रोतुर्दूरवर्तिसत्शास्त्रं तन्निश्चयसंपादनेन व्याख्यासंनिहितं क्रियतेऽनेनेति व्युत्पातः(त्तेः) ।

(५) *'संज्ञा'* मित्यादि श्लोकान्ते *"इति वचनादिति"* क्वचिन्न दृश्यते । तत्रावावृक्तं चेत्यध्याहारतोऽसौ व्याख्येयः, अन्यथा गमकत्वाभावात् ।

(६) *'गुणणोगुणे'* त्यादि, गुणेन अन्वर्थतया युक्त नाम गुणनाम, यथा इन्द्रश्चन्द्र इत्यादि ॥१॥ तद्विपरित नोगुणनाम यथा रथ्यापुरुषस्य कस्यचित् चन्द्रस्वामी सूर्यस्वामी ॥२॥ आत्तद्रव्यनिबन्धनं नाम आदाननाम, यथा वधूरन्तवर्ती आत्तभर्तृधृतापत्यनिबन्धनत्वात् । नैतद् गुणनाम्नोऽन्तर्भवति, तत्रादानादेय विवक्षाभावात् ॥३॥ प्रतिपक्षनाम कुमारी बन्धि(वन्ध्ये)त्यादि, आदाननाम प्रतिपक्षनिबन्धनत्वात् ॥४॥ अथवा आदानमादिः-अध्ययनोद्देशकादेरादिपदं, तदेव नाम आदाननाम यथा 'धम्मोमङ्गलं···असखयमित्यादि ॥३॥ वाच्यार्थप्रतिपक्षवाचकतया नाम प्रतिपक्षनाम यथा मङ्गलोऽङ्गारकः, मधुरं विषम् ॥४॥ प्रधाननाम यथाऽऽम्रवणं निम्बवनमिति वनान्तःसत्स्वप्यन्येष्वविवक्षितवृक्षेषु विवक्षाकृतप्राधान्यवृतपिचुमन्दनिबन्धनत्वात् ॥५॥ निश्रितनाम यत्पितामहादेर्नाम तत्पक्षपातादिभ्यः पौत्रादावन्यत्र निवेश्यते तस्य तन्निश्रया भावात् निश्रितनामत्वम् । एतच्चान्यत्र नामनामेति रूढम् ॥६॥ संयोगनाम द्रव्य-क्षेत्र काल-भावभेदाच्चतुर्धा । तत्र द्रव्यसंयोगनाम दण्डी, छत्रीत्यादि, द्रव्यसंयोगनिबन्धनत्वादस्य । क्षेत्रसंयोगनाम माथुरो बालम इत्यादि, यदि नामत्वेन विवक्षा भवति । कालसंयोगनाम यथा शारदो, वासन्तक इति । भावसंयोगनाम क्रोधी मानीत्यादि ॥७॥ मानेन मेयस्य नाम माननाम, शत, सहस्रं, द्रोणः, खारी, पलं, तुला, कर्षादीनि, प्रमाणनाम्नां प्रमेयेषूपलम्भात् ॥८॥ प्रत्ययनाम यत्प्रत्ययेनार्थान्निजाभिधेयस्य हेतुना विशेषितं नाम, यथा जलज सरसिजमिति ॥९॥ अनादिसिद्धान्तनाम अपौरुषेयभावादनादौ सिद्धान्ते प्रसिद्ध यत् तदनादिसिद्धान्तनाम, यथा धर्मास्तिकायोऽधर्मास्तिकाय इति ॥१०॥

(७) *'शब्दतर्के'त्यादि* प्रकरणा(ण)शब्दस्य प्रत्येकं सम्बन्धात्[शब्द]प्रकरण तर्कप्रकरणं ।

---

1 'पश्चाद्वक्ता तं वर्णयेत्' इति मु. । 2 अनुयोगद्वारसूत्रे किञ्चित्क्रमभेदेन नाम्न एतेषामेव दशप्रकाराणां तदवान्तरभेदप्रभेदप्रदर्शनपूर्वकं विस्तरेण वर्णनं कृतमस्ति ।

3 'दिट्ठिवायत्थजाणएण' इतिविशेषणं मुद्रितप्रतौ नास्ति किन्तु जे. खं प्रमुखप्रतीषूपलभ्यते ।

4 'अणेगवायसमालद्धविजएण' इति मु. ।

समरलद्धविजएण मित्रसम्मायरियणामधेज्जेण कयं। किं परिमाणं? गाहापरिमाणेण [1]सयमेत्तं, अक्खरादिपरिमाणेण संखेज्जं, अत्थपरिमाणेण [2]अपरिमियपरिमाणमणेगभेयभिन्नं। किं पयोयणं? ति जीवाणं उवओगजोगपच्चयबंधोदयोदीरणासंजोग-[8]बंधविहाणादिअभिगमणत्थं, तदेव णाणं दंसणं च, तओ बंधाइनिरोहणसमत्थे चरणे उज्जमो, ततो मोक्ख इति एयं पयोयणं। भणिओ संबंधो। एवं [9]संबंधागयस्स[3] पगरणस्स इमा आइमा गाहा मंगलाभिधेयाधारसत्थसंबंधत्था—

[अरहंते भगवंते अणुत्तरपरक्कमे पणमिऊणं।
बंधसयगे निबद्धं संगहमिणमो पवक्खामि ॥][4]
सुणह इह जीवगुणसंनिएसु ठाणेसु सारजुत्ताओ।
वोच्छं कइवइयाओ गाहाओ दिट्ठिवायाओ ॥१॥

व्याख्या— सुणह' त्ति सोतविसयत्तातो सुयणाणस्स, सुयनाणं संबज्झइ। कहं? [5]अहिगयत्थाओ दिट्ठिवायातो गाहाओ सुणह त्ति। तं च सुयणाणं मंगलं। कम्हा? भन्नइ णंदी भावमंगलं ति काउं मंगलपरिग्गहियाणि सत्थाणि णिप्फत्तिं गच्छंति, सिस्सपसिस्सपरंपराए[6] पइट्ठाहिंति चेति अतो सुणहसद्दो मंगलत्थो। 'इह जीवगुणसंनिएसु ठाणेसु सारजुत्ताओ वोच्छं

न्याय-प्रकरणमिति। तत्र शब्दप्रकरणं शब्दशास्त्रं व्याकरणमितियावत्। तर्कप्रकरणं जीवाजीवादिद्रव्याणां सदसन्नित्यानित्यादिपर्यायाणां च निरूपणनिपुणं, द्रव्यानुयोग इत्यर्थः।

न्यायप्रकरणं लौकिकप्रतीतनीतिशास्त्रं नैयायिकसमयानुसारी ग्रन्थो वा। कर्म्मप्रकृतिः कर्म्मप्रकृतिप्राकृ(भृ)तम्। सिद्धान्तः शेषसमयः। यदत्र सिद्धान्तग्रहणेन कर्मप्रकृतिग्रहणेऽपि अस्याः पार्थक्योपन्यासस्तदस्य प्रणेतुरत्रात्यन्तकौशलख्यापनार्थम्। ततश्च शब्दतर्कन्यायप्रकरणानि च कर्मप्रकृतिश्च सिद्धान्तश्चेति समासः, तेषां ज्ञायको ज्ञाता, तेन।

(८) 'बंधविहाणादि' त्ति आदिशब्दः स्वभेदसूचकः।

(९) एवं 'संबंधादि(ग)यस्स' त्ति[7]। एवमुक्तलक्षणः सम्बन्ध उपोद्घातः, तेन आगतं स वा आदिः प्रथमं यस्य तदेव सम्बन्धागतमेव सम्बन्धादिकं वा तस्य। एवं 'संबंधाविययस्से' त्ति क्वचित्पाठः। तत्र एवमुक्तक्रमेण सम्बन्धापितस्य प्रापितसम्बन्धस्येति दृश्यन्ते (ते)।

---

1 'सतं' इति जे.। 2 'अपरिमिय' इति जे. प्रतौ नास्ति। 3 'सबंधातितस्स' इति मु.।

4 "अत्र च-'अरहन्ते भगवन्ते'...........॥१॥ गाथा आदौ दृश्यते सा च पूर्वचूर्णिकारैः अव्याख्यातत्वात् प्रक्षेपगाथेति लक्ष्यते।" इत्युक्तं श्री मलधारीयहेमचन्द्राचार्यैर्बन्धशतकवृत्तौ। तथा चोक्तं श्रीमच्चक्रेश्वरसूरिभिर्बन्धशतकभाष्ये-एत्थ य अरहंते इह; आइमगाहा उ अन्नकइरइया। सुणहइह दुइय गाहा इह पत्थुय कविकया ऐया॥ [शतक भाष्ये गा. ६] 5 'अधिगतच्छायो' इति मु.। 'अधिकतच्छायो' इति जे.। 6 'परंपरया' इति मु.।

कइवइयाओ गाहाओ' त्ति अभिधेयाधारत्थो । अभिधेया उवओगादयो, 'दिट्ठिवायाओ' त्ति, सत्थसंबंधत्थो, एस पिंडत्थो । इयाणिं अवयवा विवरिज्जंति-'सुणह' त्ति सीसामंतणवयणं । किं कारणमामन्त्रयतीति चेत् ? उच्यते, सीसायरियसंबद्धपरोवयारोवदरिसणत्थं सोतिंदियोवयोगजणणत्थं च आमन्त्रयति । 'इह' त्ति अस्मिन्प्रकरणे । 'जीवगुणसन्निएसु ठाणेसु' त्ति । सन्नियसद्दो ठाणसद्दो य प्रत्येकं [1]परिसंबध्यते-जीवसन्निएसु ठाणेसु गुणसन्निएसु य ठाणेसु त्ति जीवट्ठाणगुणट्ठाणणामधेज्जेसु त्ति भणियं होति । एतेसिं अत्थो णिद्देसे वक्खाणिज्जिहिति । एतेसि विन्यासप्रयोजनं-पूर्वं जीवास्तित्वचिन्तनं तत्सिद्धौ शेषप्रपञ्चसिद्धिरिति जीवट्ठाणाइं प्रथमं न्यस्तानि, विद्यमानानां जीवानां गुणचिन्तनमिति तदनन्तरं गुणट्ठाणाणि, एवं विन्नासे पयोयणं । 'सारजुत्ताओ' त्ति सारो अत्थो अत्थजुत्ताओ । काओ ताओ गाहाओ त्ति संबज्झइ । 'वोच्छं कइवइयाओ' त्ति वोच्छं भणामि कइवइयाओ 'गाहाओ' [2]त्ति भणियं होइ । गीयन्तेऽर्था 'अस्यामितिगाथा । ताओ गाहाओ एयंमि पगरणे जीवट्ठाणगुणट्ठाणान्याश्रित्य अत्थमंत्ताओ थोवाओ गाहाओ कहेमि[4] ताओ सुणह त्ति संवज्झइ । स्वेच्छाकहणपरिहरणत्थं सत्थगौरवत्थं च सत्थसंबंधं भणामि-दिट्ठिवायाओ' त्ति आयरियपायमूले विणएण सिक्खियाओ दिट्ठिवायाओ कहेमि ।।१।।

[10]किं परिकम्म-सुत्त-पढमाणुओग-पुव्वगयचूलिगामइयातो सव्वाओ दिट्ठिवायाओ कहेसि ? नेत्युच्यते, पुव्वगयाओ । किं उप्पायपुव्व-अग्गेणियं जाव लोगबिन्दुसाराओ त्ति एयाओ चोद्दसविहाओ सव्वाओ

(१०) 'किं परिकम्मे' त्यादि । इह सूत्रादिग्रहणयोग्यतासम्पादनसमर्थानि परिकर्माणि । गणित परिकर्मवता सर्वद्रव्यपर्यायनयापूर्वसूचनार्थं सूत्राणि, ऋजुसूत्रादीनि द्वाविंशतिः[5]।प्रथमानुयोगस्तीर्थंकरादीनां पूर्वभवाद्यनुयोगः, तद्ग्रहणेन कुलकरादिगंडिकानुयोगोऽपि गृहीतव्य उपलक्षणत्वादस्य, अन्यत्र[6]द्वयोरप्यनयोर्दृष्टिवादैकस्थानत्वेन पठितत्वात् । सर्वश्रुतपूर्वकरणात् पूर्वाणि । पूर्वगतस्यैव उक्तार्थसंग्रहात्मिकाश्चूडाः ।

1 'परिसमाप्यते' इति मु. । 2 'थोवयाओ' इति जे. । 3 'स्तस्यामिति' मु. । 4 'करेहिमि' इति जे. ।

5 उक्तं च नन्दीसूत्रागमे "से किं तं सुत्ताइं ? सुत्ताइं बावीसं पण्णत्ताइं, तं जहा-उज्जुसुत्तं १, परिणयापरिणयं २, बहुभंगियं ३, विजयचरियं ४, अणंतरं ५, परंपरं ६ मासाणं ७, संजूहं ८, संभिण्णं ९, आयच्चायं १०, सोवत्थियावत्तं ११, णंदावत्तं १२, बहुलं १३, पुट्ठापुट्ठं १४, वेयावच्चं, १५, एवंभूयं १६, भूयावत्तं १७, वत्तमाणुप्पयं १८, समभिरूढं १९, सव्वओभद्दं २०, पणामं २१, दुप्पडिग्गहं २२, इच्चेयाइं बावीसं सुत्ताइं छिण्णच्छेयणइयाइं ससमयसुत्तपरिवाडिए सुत्ताइं"......... इत्यादि । [प्रा. ग्र प. प्रकाशिते पृ. ७४]

6 उक्तं च नन्दीसूत्रे-"अणुओगे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-मूलपढमाणुओगे य गंडियाणुओगे य । [प्रा. ग्र. प. प्रकाशिते पृ. ७६]

पुव्वगयाओ कहेसि ? नेत्युच्यते, [1]'अग्गेणियातो वीयाओ पुव्वातो । किं [1]अट्ठवत्थुपरिमाणाओ अग्गेणियपुव्वातो सव्वातो कहेसि ? नेत्युच्यते, पुव्वंते अवरंते [2]धुवे अधुवे एत्थ [3]वयणलद्धीणामपंचमं वत्थु ततो पंचमातो वत्थुतो कहेमि । किं सव्वातो वीसइपाहुडपमाणमेत्तातो कहेसि ? नेत्युच्यते, तस्स पंचमस्स वत्थुस्स चउत्थं पाहुडं कम्मपगडिनामधेज्जं ततो कहेमि । तस्स चउव्वीसं अणुयोगदाराइं भवन्ति । तंजहा–

---

(११) अग्गेणीयाउ' त्ति सर्वद्रव्याणां पर्यवाणां जीवविशेषाणां चाऽग्रस्य परिमाणस(स्य)-वर्णनाद्विभक्तिवशादग्रेणीयम् । इहाग्रेणीयस्य यदष्टवस्तुपरिणामा(माणा)भिधानं सोऽपपाठ इव लक्ष्यते, [4]नन्दीकर्म्मप्रकृतिप्राभृतयोश्चतुर्दशानां वस्तूनां च तत्राभिधानात् । उक्तं च,

(१) पूर्वान्तं ह्यपरान्तं,(२)ध्रुवा(३)ऽध्रुव(४)च्यवनलब्धि(५)नामानि ।
अध्रुवसप्रणिधानं, (६) कल्पं (७) भौमावयाद्यं (८) च ॥ १ ॥
सर्वार्थकल्पनीयं (९)ज्ञान-(१०)मतीतं (११)ह्यनागतं (१२)चैव ।
सिद्ध(१३)मुपाध्यं (१४)च चतु-र्दशवस्तूनि द्वितीयस्य ॥ २ ॥[5]

[ ]

चूर्णौ चोलिङ्गना एवं दृश्या, "पुव्वंते अवरन्ते धुवे [अधुवे] एत्थ वयणलद्धीनाम पचमं वत्थु'"।

---

1 अत्र 'चोद्दस वत्थुपरीमाणाओ' इति पाठः सङ्गच्छते, 'अट्ठवत्थुपरिमाणाओ' इति पाठो न शुद्धः, किन्तु जे. खं. मु. प्रमुखसर्वप्रतिषु स एवोपलभ्यते, टीप्पनकारश्रीमन्मुनिचन्द्रसूरीश्वरैरपि टीप्पनकेऽस्य पाठस्याऽपपाठरूपेणोल्लेख कृतोऽतो ज्ञायते यत्तेषां समक्षेऽप्ययमशुद्ध पाठ एवासीदिति । वस्तुतोऽष्टवस्तुपरिमाणं न तु द्वितीयस्याऽग्रेणीयपूर्वस्य वर्तते किन्तु तृतीयस्य वीर्यपूर्वस्य 'वीरियस्स णं पुव्वस्स अट्ठवत्थू अट्ठचूलवत्थू पण्णत्ता' इति । नन्दीसूत्रवचनात् । 2 जे. प्रतावत्र 'इत्थ धुवालद्धी अधुवलद्धी अधुवस्स पणिहि नव्वं नाम पंचमं वत्थु' इतिपाठो दृश्यते स तु न सङ्गच्छते । 3 मु. 'वणलद्धीणामपचम' इत्यपि पाठः ।

4 श्रीनन्दीसूत्रपाठश्चैवम्–'अग्गेणीयस्स णं पुव्वस्स चोद्दस वत्थू दुवालस चूलवत्थू पण्णत्ता ।' [उक्त. पृ. ७४] तथा च षटखंडागमनाम्ना वर्तमानकाले प्रसिद्धग्रन्थस्य धवलाटीकायाम्–"अग्गेणियं णाम पुव्वं चोद्दसण्हं वत्थूणं.........' इत्यादिपाठः [मु. सस्करण भा. १ पृ. ११५]

5 प्रस्तुतगाथायुगलेन सदृशप्रायं गाथायुगलं दशभक्तिग्रन्थेऽपि वर्तते, तद्यथा–"पूर्वान्तं ह्यपरान्तं, ध्रुवमध्रुवच्यवनलब्धिनामानि । अध्रुवसप्रणिधि चाप्यर्थं भौमावयाद्य च ॥१॥ सर्वार्थकल्पनीयं ज्ञानमतीतं त्वनागतं कालं सिद्धिमुपाध्यं च तथा, चतुर्दशवस्तूनि द्वितीयस्य ॥२॥ [पृ. ८-९] । तथा च षट्खण्डागमस्य धवलाटीकायाम्-"पुव्वते अवरंते धुवे अद्धुवे चयणलद्धी अद्धुवसंपणिधाणे कप्पे अट्ठे भोम्मावयादीए सव्वट्ठे कप्पणिज्जाणे तीदाणागयकाले सिज्भए बुज्भए त्ति" । इति पाठः (मुद्रित संस्करण भा० ९ पृ. २२६) दृश्यते । पुनश्च तस्यामेव धवलाटीकायामन्यत्र [मु. सं. भा. १ पृ. १२३] 'पुव्वते अवरंते धुवे अधुवे चयणलद्धी अद्धुवमं पणिधिकप्पे अट्ठे भोम्मावयादीए सव्वट्ठे कप्पणिज्जाणे तीदे अणागय-काले सिज्भए बुज्भए त्ति चोद्दस वत्थूणि 'इति दर्शितम् ।

[12]"कइ [13]वेदणा य [14]फासे [15]कम्मं [16]पगडि य [17]बंधण [18]णिबंधे ।

---

(१२) 'कइवेयणा य' इत्यादि रूपकत्रयं । 'कइ' त्ति कृतिः करणं तच्च त्रेधा संघातकरणं, परिशाटकरणं, संघातपरिशाटकरणं चेति । एतत् त्रिविधमपि औदारिक-वैक्रिय-आहारक-तैजस-कार्मणशरीराणां यथायोगं यत्र सप्रपञ्चमुच्यते तत् कृतिरनुयोगद्वारम् ॥१॥

(१३) 'वेयणा' त्ति कर्मपुद्गलानां, वेद्यन्त इति वेदनासंज्ञितानां निक्षेपादिभिरनुयोगद्वारैः प्ररूपणाधिकारात् वेदनानुयोगद्वारम् ।२।

(१४) 'फास' त्ति कर्मपुद्गलानामेव ज्ञानावरणादिविभेदतोऽष्टभेदानां परस्परेणौदारिकादि-शरीरैः जीवेन च सह स्पर्शगुणसंबन्धतः प्राप्तस्पर्शाभिधानानां निक्षेपादिभिरनुयोगद्वारैःप्ररूपणा यत्र क्रियते तत् स्पर्श इत्यनुयोगद्वारम् ।३।

(१५) 'कम्मो' त्ति कर्मपुद्गलानामेव ज्ञानदर्शनावरणादिगुणसद्भावतः प्राप्तकर्मसंज्ञानां कर्म[नि]क्षेपादिभिरनुयोगद्वारैः प्ररूपणा क्रियते यत्र तत् कर्मेत्यनुयोगद्वारम् ।४।

(१६) 'पगडि' त्ति यत्रानुयोगद्वारे कार्मणवर्गणापुद्गलानां, कृतौ प्ररूपितबन्धलक्षणसंघात-भावानां, वेदनाद्वारे निरूपितवस्तुविशेषप्रत्ययविपाकानां, स्पर्शद्वारे निरूपितजीवसंबन्धगुणानां, कर्मद्वारे च निरूपितस्वस्वव्यापाराणां प्रकृतिनिक्षेपादिभिरनुयोगद्वारैः स्वभावभेदरूपप्रकृतिप्ररूपणा क्रियते । यथा पञ्चस्वभावा ज्ञानावरणस्य, मतिज्ञानावरणादयः । नव दर्शनावरणस्येत्यादि, तत्प्रकृति-रनुयोगद्वारम् ।५।

(१७) 'बंधणं' ति । बन्धनाभिधायितया बन्धनाभिधानमनुयोगद्वारम् । तत्र चतुर्विधमभि-धेयं, (१) बन्धो (२) बन्धकाः (३) बन्धनीयं (४) बन्धविधानमिति । तत्र बन्धाधिकारे जीवप्रदेशकर्म-पुद्गलानां सादिरनादिश्च बन्धः प्रबन्धतोऽभिधीयते । बन्धकाधिकारे पुनरष्टविधकर्मसंबन्धका अप-र्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियादयः पर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियावसानाश्चतुर्दशापि जीवप्रकाराः सप्रपञ्चमुच्यन्ते । बन्ध-नीयद्वारे बन्धयोग्यायोग्यद्रव्यविचारोऽधिक्रियते । बन्धविधानाधिकारे च प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबन्धाः प्रत्येकं सप्रबन्धाः प्रतिपाद्यन्ते ।६।

(१८) 'णिबंध' त्ति । निबन्धनं निबन्धो विषयनियम इत्यर्थः । तत्र यस्मिंश्चक्षुरादीनामिव रूपादिषु प्रकृतीनां निबन्ध उच्यते । यथा सकलरूपिद्रव्यविषयज्ञाननिराकरण एव व्यापारवदवधिज्ञाना-वरणं, गुरुलघुकानं[त]प्रदेशिकरूपिद्रव्यगोचरदर्शनावारकं चक्षुर्दर्शनावरणं । यथा वा शरीराङ्गो-पाङ्गादिपुद्गलविपाकिप्रकृतयो गृहीतौदारिकादिपुद्गलदलिकविशेषसम्पादनविषयव्यापारनियतास्तद-नुयोगद्वारमिति ।७।

(१९) 'पक्कमो' त्ति । प्रक्रमो बन्धकाल एव क्रमो दलिकप्रमाणपरिपाटिरूपः प्रक्रमः । तत्र यस्मिन्नकर्मस्वरूपेण स्थितानां कार्मणवर्गणास्कन्धानां जीवप्रयोगतो मूलोत्तरप्रकृतिस्वरूपेण परिणमतां प्रकृतिस्थित्यनुभागविशेषेण विशिष्टानां प्रमाणक्रमप्ररूपणा यथाष्टविधबन्धकस्य मूलप्रकृतीनामायुर्भाग-स्तोको नामगोत्रयोस्तुल्यस्ततो विशेषाधिक इत्यादि, तदनुयोगद्वारं प्रक्रमः । एवं विशेषानुयोगद्वाराणा-मप्यभिधेयानुसारतोऽभिधाननिर्देशो द्रष्टव्य इति । यच्च 'पक्कइइ' त्ति आदर्शपुस्तकेषु पाठो न स कर्म-प्रकृतिप्राभृते दृश्यते । तत्र 'पक्कमु [वक्कमु] दये' त्ति पाठस्यानेकश उपलम्भाद् बुध्यते आसाविति ।८।

[19]वक्कम-[20]मुवक्कमु-[21]दय [22]मोक्खो पुण [23]संकमे [24]लेसा ॥ १ ॥

(२० 'उवक्कमे' त्ति । उपक्रमणं उपक्रमः कर्मणां प्राच्यस्वरूपपरित्यागेन स्वरूपान्तरापादनं, स बन्धनोदीरणोपशमनाविपरिणाममेवाच्चतुर्धा[1] । तत्र बन्धनोपक्रमो बद्धानां कर्मणां प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशरूपतया निधत्तिनिकाचनाकरणाभ्यां दृढतरबन्धसम्पादनमिति, यश्चाऽकर्मस्वभावपुद्गलानां जीवव्यापारतः कर्मभावभवनेन बन्धनोपक्रमः स इह नाधिकृतः, कृतिद्वारावतारितत्वात् तस्य । अप्राप्तफलकालानां कर्मणां करणविशेषतः वेद्यमानकर्मभिः सहोदय-क्षयप्रवेशनमुदीरणोपक्रमः । उपशमनैवोपक्रम उपशमनोपक्रमः स च देशसर्वभेदादुपशमनायाः द्विविधस्तत्र देशोपशमना उद्वर्तनाऽपवर्तनासंक्रमव्यतिरिक्तकरणाऽयोग्यतया कर्मणो व्यवस्थापनं, सर्वोपशमना तु सर्वसकरणाविकरणाविषयतयेति । विरुद्धः कर्मणामकर्मरूपताभवनेन परिणामो विपरिणामो निर्जरेत्यर्थः । स च प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशानां देशतः सर्वतश्च भवति, तत्र सर्वतः शैलेश्यादौ स्वस्वसर्वक्षयकालो(ले) शेषकाले च देशतः । स एवोपक्रमो विपरिणामोपक्रमः ॥९॥

(२१) 'उदये' त्ति; उदयो विपाकोऽनुभव इत्यर्थः स च मूलोत्तराणां प्रकृतीनां प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदादनेकधा अवि(भि)धानीयः । आह–वेदनोदययोः कः प्रतिविशेषः येनोदयः पृथगुच्यते।त ? उच्यते, स्वपरविपाकानपेक्षं पुद्गलदलिकानुभवनं वेदना, उदयस्तु स्वविपाकापेक्षं कर्मानुभवनमिति।१०।

(२२) 'मोक्खो' त्ति । मोक्षोऽपगमः कर्मणो विनाश इत्यर्थः । सोऽपि प्रकृत्यादिभेदस्य कर्मणो भणनीयः । आह–विपरिणामोपक्रमोऽपि एवंलक्षण एवातः किमस्य पृथगुपन्यासः ? इति । सत्यं, किन्तु विपरिणामोपक्रमो देशसर्वनिर्जराभ्यां कर्ममोक्षलक्षणः । मोक्षः पुनरधःस्थितिगलनाऽन्यप्रकृतिसंक्रमोद्वर्तनादिभिः विवक्षितकर्मस्वरूपाभावलक्षण इत्यनयोर्विशेषः ॥११॥

(२३) 'पुणसंकमे' त्ति । पुनरिति बन्धोत्तरकाले संक्रमणं-संक्रमः पुनःसंक्रमः । यत्प्राग्बद्धकर्मणो बध्यमानस्वजातीयकर्मणि करणविशेषतस्तत्स्वभावताकरणेन निक्षेपणं स च मूलप्रकृतिषु स्थित्यनुभागयोरुत्तरप्रकृतिषु प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशानामनेकप्रकार इति ।१२।

(२४ लेस' त्ति । लिप्यते श्लिष्यते आभिर्जीवः कर्मणेति लेश्यास्ताश्च द्रव्यभावभेदाद् द्विभेदास्तत्र द्रव्यलेश्या यानि(नि)किल द्रव्याण्याश्रित्य जीवस्य स्फटिकमणेरिव कृष्णादिलेश्यापरिणामः प्रवर्तते तानि वर्णभेदतो भिद्यमानानि द्रव्यलेश्या इति । तत्र भ्रमराङ्गारकाककोकिलादिसमानवर्णा कृष्णलेश्या शेषास्तु नीली-कापोती-तैजसी-पद्मा-शुक्लाभिधाना लेश्याः यथाक्रमं कदलीदल-कपोतच्छद-जपाकुसुम-कमलकेसर-हंससदृशप्रकाशा विज्ञेया इति । यथोक्तम्—

"किण्हा भमरसवण्णा, नीला पुण गवलगुलि(नीलगुणि)यसंकासा ।
काऊ कवोयवन्ना, तेऊ तवणिज्ज बन्नाभा ॥
पम्हा पउमसवण्णा, सुक्का पुण कासकुसुमसंकासा" । इति

[ ][2]

1 उक्तं च श्रीस्थानांगसूत्रे–'चउव्विहे उवक्कमे पण्णत्ते, तं जहा बंधणोवक्कमे, उदीरणोवक्कमे, उवसामणोवक्कमे, विपरिणामणोवक्कमे । [श्री स्था. अध्य. ४ उद्दे. २]

2 षट्खंडागमस्य धवलाटीकायां लेश्यानुयोगप्ररूपणाया[मुद्रित भा. १६ पृ. ४८५]मपीदमेवावतरणं 'वुत्तं च' इत्यादि कथनपूर्वकं टीकाकारेणान्यग्रन्थादुद्धृतं दृश्यते ।

[२५]लेसाकम्मे [२६]लेसापरिणामे तह य [२७]सायमस्साते ।

भावलेश्या पुनर्द्रव्यलेश्याजनितो जीवपरिणामो मिथ्यात्वाऽसंयमकषायानुरक्तयोगप्रवृत्तिरूपः कर्मपुद्गलादानहेतु । एवं च 'योगपरिणामो लेश्या' [1]इत्यपि युक्तमुक्तं, योगपरिणामस्य प्राधान्येन लेश्यात्वात् । मिथ्यात्वादीनां विशेषणत्वेनाऽप्रधानत्वात्तदभावेऽपि क्वचित् केवलस्यैव तस्य लेश्यात्वाभिधानात्, '[2]शुक्ललेश्यः सयोगकेवली' ति वचनप्रामाण्यादिति ।१३।

(२५) *लेसाकम्मे*' त्ति । लेश्यानां कृष्णादीनां कर्म फलं कार्यमित्यर्थः, लेश्याकर्म तद्यथा-

कृष्णलेश्याऽन्वितो जीवः, निर्दयः कलहप्रियः ।
रौद्रानुबद्धवैरश्च, चौरोऽलीकव्रचोरतः ॥ १ ॥
मन्दो बुद्धिविहीनश्च, मानी विषयऽालसः ।
निद्रालुरलसो मायी, नीललेश्याऽन्वितो सु(पु)मान् ॥ २ ॥
कापोतीसंगतोऽन्येभ्यः, क्रुध्यत्यात्मप्रशंसकः ।
न प्रत्येति परं जातु, स्तूयमाने च तुष्यति ॥ ३ ॥
दयादानरतो नित्यं, कृत्याकृत्यं च वेत्त्यसौ ।
प्रेक्षति च समं सर्वं, तैजसीमाश्रितः पुमान् ॥ ४ ॥
त्यागी चोक्षः क्षमाशीलः, साधुपूजापरायणः ।
अवक्रकर्मसंयुक्तः, पद्मलेश्यानुभावतः ॥ ५ ॥
अपक्षपाती सर्वत्र, न निदानविधायकः ।
रागद्वेषविहीनश्च, शुक्ललेश्यो भवेदिति ॥ ६ ॥ [ ][3]

(२६) *लेश्या(सा)परिणामे*' त्ति । लेश्यानां गुणगुणिनोरभेदोपचारात् लेश्यावतां जीवानां परिणामोऽपरापरपर्यायान्तरगमन लेश्यापरिणामः । तत्र कृष्णलेश्यावान् संक्लिश्यमानस्तामेव कृष्णलेश्यां षट्स्थानपतित संक्रामति विशुध्यमानश्च षट्स्थानहान्या तां वा प्राप्नोति अनन्तगुणशुद्धतया नीललेश्यां चेति । एवं नीलादिलेश्यावतामपि संक्लेशतो विशुद्धितश्च परिणामो ज्ञेयः । परं संक्लिश्यमाना नीललेश्यादयः षट्स्थानानुगतस्वस्थानपरिणामाः स्युरनन्तगुणानन्तरलेश्यास्थानपरिणताविति, विशुद्धयन्तश्च षट्स्थानविशुद्धयो वा अनन्तगुणविशुद्धोत्तरलेश्यास्थानविशुद्धयो वा भवेयुरिति । शुक्ललेश्यस्तु विशुद्धयन् स्वस्थानविशुद्धिरेव ।१५।

---

1 'योगपरिणामश्च लेश्या' इत्युक्तं श्रीप्रज्ञापनासूत्रप्रदेशव्याख्यायां श्रीहरिभद्रसूरीश्वरैः ।

2 उक्तं च श्रीमद्देवेन्द्रसूरिभिः स्वोपज्ञवृत्तियुते चतुर्थकर्मग्रन्थे-'छसु सुक्का'.........'षट्सु' अपूर्वकरणानिवृत्तिबादरसूक्ष्मसंपरायोपशान्तमोहक्षीणमोहसयोगिकेवलिलक्षणेसु गुणस्थानकेषु शुक्ललेश्या भवति न शेषाः पञ्च । [चतुर्थकर्मग्रन्थे गा. ५०]

3 प्रस्तुतश्लोकषट्कप्रतिपादितार्थसदृशभावार्थप्रदर्शिकाः नवगाथाः षट्खंडागमस्य धवलाटीकायां [मुद्रित भा. १६ पृ. ४९०-४९१-४९२] दृश्यन्ते, जिज्ञासुभिस्तास्ततस्स्वयमवलोकनीयाः ।

[२८]दीहे हस्से [२९]भवधारणीय तह [३०]पोग्गलाअत्ता ॥२॥
[३१]णिहत्तमणिहत्तं [३२]णिक्काइयमणिकाइयं य [३३]कम्मट्ठिती।
[३४]पच्छिमखन्धे [य तहा] [३५]अप्पाबहुगं च सव्वत्थ ॥३॥[1]'त्ति

(२७) 'सायमसाय' त्ति सदेव स्वार्थिकाण्प्रत्ययात् सातं सद्वेद्यं कर्म। तद्विपरितमसातमसद्वेद्यं कर्म तदेकैकमेकान्तानेकान्तप्रभेदतो द्विरूपं तत्रैकान्ततः सातमसातं वा यद्रूपतया बद्धं तत् तद्रूपतयैव-प्रकृत्यन्तरासंकान्तम्। अगतिसङ्क्रान्तं वा वेद्यमानमेएत (मेत) द्विपरितमने(ने)का न्तत इति ।१६।

(२८) 'दीहे हस्से' त्ति। दीर्घं नाम बहु तद्विपर्ययात् ह्रस्वं तवं (दे) कैकं प्रकृतिस्थित्यनुभाग-प्रदेशभेदाच्चतुर्विधम् तत्र बन्धं प्रतीत्य मूलप्रकृतिषु सप्तविधबन्धापेक्षयाऽविधबन्धः प्रकृतिदीर्घम्। षड्विधबन्धात् सप्तविध इति। एवमुदयोदीरणासत्तासु। तथोत्तरप्रकृतीनां च धादिषु स्थित्यादिषु च सर्वं चदीर्घं विज्ञाय वक्तव्यम्। ह्रस्वं तु तद्विपर्ययतो योजनीयं तद्यथा-षड्विधः सप्तविधव धाद् ह्रस्वः, सोऽप्यष्टविधब धादित्यादि ।१७।

(२९) 'भवधारणीय' त्ति। भवन्ति कर्मवशिनो जीवा अनेन परिणामेनेति भव। स च त्रिधा ओघ्य घ भवः, आदेशभवो भवग्रहणभवश्च। तत्रौघभा (म) व कर्माष्टकोदयजनितजनितजीवपरिणामः[2] संसारित्वमित्यर्थः। आदेशभवो गतिनामकर्मोदयोत्पादितो नारकादिशब्दाभिधाननिब धनजीवपरि-णामविशेष। भवग्रहणभव पुन. प्राक्शरीरपरित्यागेन शरीरान्तरारम्भलमवा(व)स्तत्र भवग्रहण-लक्षणे भवे धार्यते जीवो येन तत् भवधारणीयं कर्म तच्चायुरेवेति ।१८।

(३०) 'तह पोग्गला अत्ता' तथेति समुच्चयार्थ.। पुद्गलाः रुपिद्रव्याणि अत्ता गृहीता जीवेनेति शेषः। ते च षोढा, तद्यथा-१, ग्रहणत आत्ता हस्तादिगृहीतदण्डादिव[त्]। [3], २ परिणामत आत्ता मिथ्यात्वादिपरिणामगृहीतपुद्गलादिवत्। ३. उपभोगत आत्ता य उपभोगार्थं गृहीता पुद्गला गन्धतम्बोलादिवत्। ४, आहारत आत्ता ये आहारार्थं गृहीता, अशनपानादिवत्। ५. ममत्वत आत्ता येऽनुरागतो गृहीताः, वनितादिवत्। ६, परिग्रहत आत्ता [...][3] परिग्रहतः स्वायत्तीकृतवनादिवत्।१६।

(३१) 'णिहत्तमणिहत्तं' त्ति। निधत्त(त्तं) नाम उद्वर्तन(ना)पवर्तनातिरिक्तकरणायोग्य तया कर्म म)णः करणं, तद्विपरितमनिधत्तं।२०।

(३२) 'णिकाइयमणिकाइयं' ति। निकाचितं नाम बन्धोत्तरकाल कषायोदयविशेषात् संक्रमादिकरणकलापागोचरतया कर्मणो विधानम्। एतद्विपरितमनिकाचितमिति।२१।

(३३) 'कम्मट्ठिइ' त्ति। कर्मणां ज्ञानावरणादीनां बन्धक्षणप्रभृति आनिर्जराक्षणं जीवप्रदेशैः सम्बन्धपरिणामः स्थितिः। सा च मूलोत्तरप्रकृतिभेदतो जघन्यादिभेदतश्चानेकवि धेति।२२।

(३४) 'पच्छिमखंधे' त्ति। इह त्रिधा प्रागुक्तभवमाव ओघभवादिर्भवस्तत्र भवग्रहणभवेनात्रा-धिकारः, ततश्च पश्चिमेऽधिकारात् भवग्रहणे स्कन्धः प्रक्रमात् कर्मपुद्गलसमुदायः पश्चिमस्कन्धः। तत्र बन्धोदयोदीरणासंक्रमसत्ताः प्रतीत्य कर्मणां ज्ञानावरणादीनां प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशानां मार्गणं मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानेषु विधीयत इति।२३।

(३५) 'अप्पाबहुयं च सव्वत्थे' त्ति। अल्पबहुत्वं च सर्वत्र कृतिवेदनादिद्वारेषु यथायोगमुन्ने-

1 णिहत्तमणिहत्तं च णिक्काइयमणिक्काइयं कम्मट्ठिति। पच्छिमखधे अप्पाबहुग च सव्वत्थमो ॥३॥ इति पाठो मुद्रितप्रतौ। 2 अत्र 'कर्माष्टकोदयजनितो जीवपरिणामः' इतिपाठ उचितः।

3 [........] कोष्ठकान्तर्गतः पाठः आदर्शे नास्ति किन्तु पूर्वापरार्थानुसंधानमालोच्यास्माभिर्ग्रन्थान्तर [मुद्रित-धवला भा. १५ पृ- ५१४,५१५] गत प्रस्तुतविषयमवलोक्य तदनुसारेणात्र परिपूरितः।

किं सव्वतो चउवीसाणुओगदारमइयातो कहेसि ? नेत्युच्यते, तस्स छट्ठमणुओगदारं बंधणं ति ततो कहेमि। तस्स चत्तारि भेदा। तंजहा-बंधो, बंधगो, बंधणीयं, बंधविहाणं ति। किं सव्वातो चउव्विहाणुओगदारातो कहेसि ? नेत्युच्यते, बंधविहाणं ति चउत्थमणुओगदारं, ततो कहेमि। तस्स चत्तारि विभागा। तंजहा-पगइबंधो, ठिइबंधो, अणुभागबंधो, पदेसबंधो त्ति मूलुत्तरपगइभेयभिन्नो, ततो चउव्विहातोवि किंचि २ समुद्धरिय २ भणामि। सत्थसंबंधो भणितो।

पुव्विं जीवट्ठाणगुणट्ठाणेसु सारजुत्ताओ गाहाओ भणामि त्ति भणियं, ताओ केरिसत्था[1]हिगाराओ त्ति तासिं अन्थाहिकारणिरूवणत्थं दो दारगाहाओ–

[2]उवयोगाजोगविही जेसु य ठाणेसु जत्तिया अत्थि।
अप्पबहुओ बंधो होइ जहा जेसु ठाणेसु ॥२॥
बंधं उदयमुदीरणविहिं च तिण्हंपि तेसि संजोगं।
बंधविहाणे य तहा किंचि समासं पवक्खामि ॥३॥

व्याख्या- [3]'उवयोगाजोगविही जेसु य ठाणेसु जत्तिया अत्थि' त्ति, [4]'आसन्नो योगो उपयोगो, उवजुज्जति त्ति वा उवओगो, अविरहियजोगो वा उवयोगो। संसारत्थाणं णिव्वुयाणं च जीवाण सव्वकालं तेण जोगो त्ति काउं उवओगो वुच्चति। किं कारणं ? जीवस्वभावत्वात् तव्विरहिओ जीवो ण भवइ त्ति। सो दुविहो–सागारोवओगो अणागारोवओगो य। सागारोवओगो सरूवावहारणं रूवाइविसेसविन्नाणमित्यर्थः। तेसिं चेव सामन्नात्थावबोहो खंधावारोपयोगवत् सो अणागारोवओगो। पंचविहं णाणं अन्नाणतिगं च सागारोवयोगो। चक्खुआइचउव्विहं दंसणं अणागारोवओगो। तत्थ पंचविहं णाणं आभिणिबोहियाइ। तत्थ पंचण्हमिंदियाणं मणो छट्ठाणं उग्गहादयो चत्तारि भेया, [5][......] तेहिं य [36]'सुयाणुसारेण घडपडसंखाइविन्नाणं संपयकालीयं तं आभिणिबोहियं। इंदिय मणोणिमित्तं अतीतादिसु अत्थेसु सुयाणुसारेण जं णाणं उपज्जइ तं सुयणाणं, आभिणि-

---

तव्यमिति।२४।
एषां च कृत्याद्यनुयोगद्वाराणां चतुर्विंशतेरपि विस्तरार्थः 'कर्मप्रकृतिप्राभृतादधिगमनीयः। अत्र चूर्णिकारकृतद्वारोल्लिङ्गनाश्रुतकृत्यादिपदाभिधि(धे)यनिर्देशमात्रस्य प्रस्तुतत्वादिति॥
(३६) 'तेहिं य सुयाणुसारेण' त्ति। अभिधानप्लावितार्थग्रहणप्रत्ययो लब्धिविशेषः श्रुतम्। उक्तं च,

---

1 मु प्रतौ 'केरिसि ? सत्थाहिगाराओ' इति पाठः। 2 'उवयोगजोगविही' इति मु.। 3 'उवओगविही' इति मु.। 4 मु प्रतौ आसन्नो .....' इति व्युत्पत्तेः पूर्वं 'उपयुज्यत इति उपयोगः' इत्येवं व्युत्पत्तिः, सा च जे. प्रतौ न दृश्यते। 5 खे. प्रतावत्र [.........] कोष्ठकस्थाने 'चक्खुमणोवज्जाणं तु वंजणावग्गहो चउहा' इतिपाठोऽधिकः।

बोहियंपि तत्थत्थि जेग तं पालिज्जइ। इंदियमणोणिरवेक्खं अणावरियजीवपएसखयोवसमणिमित्तं साक्षात् ज्ञेयग्राहि तदवधिज्ञानं, प्रदीपज्वालाकटकान्तरविनिर्गतप्रकाशघटादिप्रकाशवत्। मणत्तेणं गहेऊणं पोग्गले जाणइ जीवो जेहिं ते मणो भणंति. तेसिं पोग्गलाणं पज्जाया मणोपज्जाया तेसु णाणं मणपज्जवनाणं। [37]तहेव सुद्धा जीवपदेसा परिछिंदन्ति त्ति ते पोग्गले णिमित्तं काउणऽतीताणागयवट्टमाणे भावे पलिओवमासंखेज्जइभागे पच्छाकडे पुरेकडे खओवसमाओ माणुसखेत्ते वट्टमाणे जाणइ ण परतो तं मणपज्जवणाणं। केवलं सकलं संपूर्णं जीवस्स णिस्सेसावरणखयसंभूयं, [38]अहवा सव्वदव्वपज्जायमकलावबोहणेण वा केवलं अच्चंतखाइयं केवलणाणं। मूलिल्लेसु तिसु णाणेसु अण्णाणभावो वि होज्जा, मिच्छत्तोदया,पित्तोदयव्याकुलीकृतचित्तस्य शुक्लरूपविपर्ययात् पीतावभासिरूपवत्। [39]मतिश्रुतावधयश्च विपर्यासं गच्छन्ति। [40]कथं ? कटुकालाबुगद्रव्ये [1]प्रक्षिप्तक्षीरसर्क-

---

जे अक्खराणुसारेण मइविसेसा तयं सुयं सव्वं।
जे पुण सुयणिरवेक्खा सुद्धं चिय तं मइन्नाणं ॥१॥

[श्रीविशेषावश्यकभाष्ये गा. १४४]

तच्च शब्दात् गम्यार्थाविनाभूतार्थान्तराद्वा स्यात्। यदुक्तम्-

'दुविहं सुयनाणं सद्दलिंगय असद्दलिंगयं च' त्ति। तस्यानुसारोऽनुगमो निश्रेत्यर्थः। अयं चास्य श्रुतस्य प्राक्श्रुतसंस्कृतमतेः संप्रति अभ्यासातिशयात् श्रुतव्यापारनिरपेक्षधियोऽनु...विहीनस्यैव प्रमातुर्ज्ञानप्रवृत्ताविति। यदुक्तम्-

पुव्वं सुयपरिकम्मियमइस्स जं संपयं सुयाईयं।
तं निस्सियमियरं (मियरं) पुण अणिस्सियं मइचउक्कं तं ॥

[श्रीविशेषावश्यकभाष्ये, गा. १६९]

मतिचतुष्कमौत्पत्तिक्यादि। इदं च म[ति]ज्ञानं श्रुतनिश्रितं बाहुल्यमपेक्ष्योच्यते, अन्यथा तन्निश्रामन्तरेणापि एकेन्द्रियादिषु तस्य संभवात्।

(३७) 'तहेवे' त्यादि। तथैव अवधिज्ञान इव शुद्धाः संजाततदावरणक्षयोपशमाः। द्रव्यव(त)स्तान् मनस्त्वपरिणतान् निमित्तीकृत्य गोचरतया लवे(ऽवलम्ब्ये)त्यर्थः। भावतस्ती(तोऽती)तानागतवर्तमानान् भावान् बाह्यावस्थालोचनान् गुणान् तत्पर्यायान्, कालतम्ती(तोऽती)तानागतयोः पल्योपमासङ्ख्येयभागयोर्यथाक्रमं पश्चात्कृतपुरस्कृतान् क्षयोपशमनियमात्, क्षेत्रतो मनुष्यक्षेत्रगतान् जानातीति।

(३८) 'अहवे' त्यादि। अथवेति भेदान्तरोपक्षेपार्थः। सर्वेषां द्रव्याणां तत्पर्यायाणां च सकलक्षेत्रकालाद्यनुवेधानुसरणात् सपूर्णमवबोधनं परिच्छेदनं सर्वद्रव्यपर्यायसकलावबोधनं तेन वा केवलं, एतेन विषयसाकल्यतो विषयिणो ज्ञानस्यापि साकल्यमभिहितमिति।

(३९) 'मतिश्रुते' त्यादि। अत्र चकारो मङ्गचन्तरभणनार्थम्। एषां हि अज्ञानभावो विपर्यासाभिहितो। विपर्यासश्च मिथ्यात्वानुरक्तत्वेन आत्मनः।

1-द्रव्योपक्षिप्त-इति मु.।

रादिद्रव्यविपर्यासवत् । [४१]भाजनविशुद्धितश्च दव्वाणमविणासो दिट्ठो जहा सुपरिसुद्धालाबुद-[1]व्वोवक्खित्तखीरादिदव्वाविवत्तिवत् तथा च तत्त्वार्थश्रद्धानम् । अहवा विससम्मीसओसहसंपर्कवत् मइघातोववूहणं च । एते अट्ठ सागारोवओगा । अणागारोवओगो चउव्विहो चक्खुदंसणाइ । चक्खिंदियसामन्नत्थावबोहो चक्खुदंसणं । सेसिंदियमणोसामन्नत्थावबोहो अचक्खुदंसणं । ओहिणाणेणं [2]सामन्नत्थावगाहणं ओहिदंसणं । केवलनाणेण सामन्नग्गहणं केवलदंसणं । एवमेते बारस उवयोगा परूविया । 'जोगो' त्ति,

"जोगो विरियं थामो उच्छाहपरक्कमो तहा चेट्ठा । सत्ती सामत्थं चिय जोगस्स हवंति पज्जाया ॥१॥"

[3]वीरियंतराइखयोवसमजणिएण पज्जाएण जुज्जइ जीवो अणेणेति योगो, अहवा जुंजइ जीवो वीरियंतराइखयोवसमजणियपज्जायमिति जोगो ।

"मणसा वाया काएण वावि जुत्तस्स विरियपरिणामो । जीवस्स अप्पणिज्जो स जोगसन्नो जिणक्खाओ ॥१॥
तेजोजोगेण जहा रत्तत्ताइ घडस्स परिणामो । जीवकरणप्पओगे विरियमवि तहप्पपरिणामो ॥२॥

सो मणजोगाई तिविहो दुब्बलस्स यष्टिकादिद्रव्यवत् उवट्ठंभकरो, अहवा जोगो वावारो सो मणआइणं । मणजोगो चउव्विहो-सच्चमणजोगो जाव असच्चामोसमणजोगो । मणजोगस्स सच्चत्तं मोसत्तं सच्चमोसत्तं असच्चामोसत्तं वा णत्थि, किं तु [४२]णोइंदियावरणखयोवसमेण मणणाणपरिणयस्स जीवस्स [4]बलाधारभूयस्स जोगस्स सहचरियत्तातो सच्चादिववदेसो, जहा बालस्स बलाधाणकारणं अन्नं पाणा इति । अहवा जोगस्सेव पाहन्नविवक्खया सच्चासच्चाइपरिणामो, [४३]जहा बाहिरकारणनिरवेक्खो नाणपरिणामो तच्चातच्चववएसो भवति [5]तहा जोगस्स वि तच्चातच्चपरिणामो भवति । एवं वायाकरणेण जोगो वइजोगो । वइजोगोवि चउव्विहो तहा चेव । सच्चमोसत्तं

(४०) कथमित्याह-'कटुकालाबुके' त्यादि दृष्टान्तः । आह किं यथा आश्रयःऽशुद्धेराश्रयिणोऽप्यशुद्धिस्तथा तद्विशुद्धावविनाश इत्याह ।

(४१) 'भाजने' त्यादि । तथेति दार्ष्टान्तिकोपनयनार्थम् । यथा किल विशुद्धाधारवशात् दुग्धादिद्रव्याविपर्यासस्तथा मिथ्यात्वोदयवैकल्यतो मत्याद्यविपर्यासलक्षणं तत्त्वार्थश्रद्धानमाविरस्तीत्यर्थः ।

(४२) किन्तु 'नोइन्द्रिये' त्यादि । अत्रायमभिप्रायः सत्यत्वादयो ज्ञानधर्मास्ते च मनोज्ञानप्रवृत्तिनिमित्तभूतमनोद्रव्यसमुत्थजीवप्रयत्नात्मकमनोयोगकार्यगुणोपचाराद्यु(द)दृष्टा इति । इदमत्रायमर्थः-यथा बालस्य बलाधानकारणमन्नं प्राणहेतुरपि प्राणा इति ।

(४३) 'यथे' त्यादि । यथा च बाह्यकारणनिरपेक्ष उपचारहेतुनिरपेक्षः स्वत एव ज्ञेयानुगुणातया ज्ञानपरिणामः सत्यादिव्यपदेशभाक् तथा तदुपष्टम्भकः प्रयत्नात्मयोगोऽपि साद्गुण्यादित एव तथा व्यपदिश्यते ।

1 दव्वोपक्षिप्त इति मु. । 2 'सामन्नत्थावगाहणं' इति मु. । 'सामन्नपत्थसाहणं' इति खं. । 3 'वीरियंतराइय-खयखयोवसमजणिएण' इति जे. । 4 'बलाहाणभूयस्स' इति जे. । 5 'तहा जोगस्स वि तच्चातच्चपरिणामो भवति' इति पाठः मु. प्रतौ नास्ति ।

कहमिति चेत् ? भन्नति, तंजहा–असोगवणं चंपयवणमिति । अन्नेसुवि रुक्खेसु विज्जमाणेसु असोगवणं चंपयवणमेवेति णाणं ववहारो वा तस्स बलाधाणकारणभूतो जोगोवि तव्ववदेसभागी भवति । कायजोगो सत्तविहो, तंजहा–ओरालियकायजोगो, ओरालियमिस्सकायजोगो, वेउव्विय, वेउव्वियमिस्सओ, आहारगो, आहारगमिस्सओ, कम्मइगकायजोग इति । तत्थ ओरालियमिति ओरालं उरलं महत् बृहच्चेति एगट्ठं । उरालमेव ओरालियं; ओराले भवं वा ओरालियं । कहमुदारत्वं ? भन्नइ–[44]पदेसतो असंखेज्जगुणहीणत्तातो ओगाहणातो असंखेज्जगुणब्भहियमिति । ओरालियकाएण जोगो ओरालियकायजोगो । ओरालियमिस्सकायजोगो त्ति मिस्समिति अप्पडिपुन्नं, जहा गुडमिस्सं अन्नदव्वं गुडमिति ण ववदिस्सति, अन्नमिति च न ववइस्सइ, गुडेतरदव्वेण अप्पडिपुन्नत्ताओ; एवमिहावि ओरालियकम्मइगसरीरद्रव्यमिश्रत्वात् मिश्रव्यपदेशः । अथवा सरीरकज्जपर्याय· णाकरणाओ मिस्सं, अपरिनिष्ठितघटवत् । जहा अपरिनिट्ठितो घडो जलधारणादिसु असमत्थो घडोवि घडववदेसं न लभते, एवमिहावि अपडिपुन्नत्तातो अपरिणिट्ठितो त्ति मिस्समिति ववदिस्सते, एवं सव्वत्थ मिस्सविही । विविहइड्ढिगुणजुत्तमिति वेउव्वियं, अहवा विविहा क्रिया विक्रिया, विक्रिया एव वैक्रियं विक्रियायां वा भवं वैक्रियं, वेउव्वियकाएण जोगो वेउव्वियकायजोगो । मिश्रं पूर्ववत् । णिपुणाणं वा णिद्धाणं वा सुहमाणं वा आहारगदव्वाणं सुहुमतरमिति आहारकं, आहारेइ अणेण सुहुमे अत्थे इति वा आहारगं, आहारगकाएण जोगो आहारगकायजोगो । मिश्रं पूर्ववत् । कम्ममेवेति कम्मइगं, कम्मणि भवं वा कम्मइगं । कम्मकम्मइगाणमणाणत्तमितिचेत् ? तन्न, कम्मइगस्स [1]कम्मइयसरीरणामोदयनिप्पन्नत्वात् , किंतु कम्मइगसरीरपोग्गलाणं कम्मपोग्गलाणं च सरिसवग्गणत्तातो तंमि चेव तस्स ववदेसो । सव्वकम्मप्परोहणुप्पायगं सुहदुक्खाण बीयभूयं कम्मइगसरीरं, तेण जोगो कम्मइगकायजोगो । एवमेते पन्नरसजोगा परूविया ।

'उवओगजोगविहो' त्ति । विधिसद्दो पत्तेयं पत्तेयं संबज्झइ उवओगविही जोगविही, विही विहाणं भेदो विगप्पो । 'जेसु य ठाणेसु' त्ति जीवट्ठाणगुणट्ठाणेसु 'जत्तिया अत्थि' त्ति जावतिया अत्थि अमुगंमि जीवट्ठाणगुणट्ठाणंमि य जत्तिया उवओगा जोगाय संभवंति त्ति

(४४) 'पएसतो' इत्यादि । इह कश्चिदाह–औदारिकशरीरमुत्कर्षतोऽपि योजनसहस्रप्रमाणं वैक्रियं च योजनलक्षप्रमाणमिति वैक्रियमौदारिकात् संख्येयगुणावगाहं । कथमुच्यते 'ओगाहणाउ असंखेज्जगुणब्भहियं' औदारिकं वैक्रियादिति ? उच्यते–प्रदेशापेक्षमेतद् , तथाहि–वैक्रियशरीरप्रदेशा· दौदारिकशरीरप्रदेशः सर्वोऽपि अवगाहतो असंख्येयगुणः । इत्यत्यन्तमल्पे(मल्पा)पि ते योजनसहस्रादिप्रमाणपूरकाः, अन्यथा यदि ते वैक्रियशरीरप्रदेशावगाहा भवेयुस्ततस्तद्वैक्रियादसंख्येयगुणहीनमेव भवेदिति ।

1 'कम्मशरीर-इति खे. ।

एयंमि पगरणे एयं भणति । 'जपच्चइओ बंधो' त्ति, पच्चयो हेउ कारणं णिमित्तं ति एगट्ठं, पच्चयो चउव्विहो मिच्छत्तं असंजमो कसाया जोगा इति । अमुगंमि गुणट्ठाणे अमुगपच्चइगं कम्मं बज्झइ त्ति एयंपि एत्थ भण्णइ । 'होइ जहा' इति णाणावरणादीणं कम्माणं बंधो जहा होइ त्ति [1]विसेसपच्चओ वुइओ, एयंपि भण्णइ 'जेसु ठाणेसु' त्ति, उवरिल्लपएण समं संबज्झइ । जेसु गुणट्ठाणेसु बंधोदयो जत्तिया अत्थि त्ति एयंपि एत्थ वुच्चइ ।। २ ।।

'बंध उदयं उदीरणाविधिं च' त्ति, विधिसद्दो पत्तेयं पत्तेयं संबज्झइ । बंधविगप्पो उदयविगप्पो उदीरणाविगप्पो य, ते जेसु ठाणेसु जत्तिया संभवंति तं भण्णति । बंधो त्ति सुहुमबायरेहिं पोग्गलेहिं घटधूमवत् णिरंतरं निचिते लोके कम्मजोग्गे पोग्गले [2]घेत्तुं सामन्नविसेसपच्चएण जीवपएसेसु कम्मत्ताते परिणामणं बंधो वुच्चइ । उक्तं च-

"[45]जीवपरिणामहेउं कम्मतया पोग्गला परिणमंति । पोग्गलकम्मणिमित्तं जीवोवि तहेव परिणमइ ॥१॥"

तस्सेव बंधावलियातीतस्स विवागपत्तस्स अणुभवणं उदयो । उदयावलियातीताणं अकालपत्ताणं ठीईणं उदीरिय उदीरिय उदयावलियाए पक्खिविय दलियं पयोगेणं उदयपत्तठिइए सह अणुभवणं उदीरणा । 'तिण्हंपि तेसि संजोगं' ति बंधोदओदीरणाणमेव संवेहो संजोगो सो अमुगंमि ठाणे अमुको संभवइ त्ति तं भण्णइ । 'बंधविहाणे' त्ति बंधस्स विहाणं बंधविहाणं बंधभेद इत्यर्थः । बंधो चउव्विहो, पगइबंधो, ठिइबंधो, अणुभागबंधो पएसबंधो य । चउण्ह वि बंधाणं मोयगदिट्ठंतो । जहा-कोइ मोयगो समितिगुडघृतकडुहंडादि [3]दव्वसंबद्धो, कोइ वायहरो, कोइ पित्तहरो, कोइ कफहरो, [4]कोइ निरोगो, कोइ मारगो, कोइ [5]बलकरो, कोइ बुद्धिकरो, कोइ वामोहकरो, एवं कम्माणं प्रकृतिः-स्वभावः कोइ णाणमावरेइ, कोइ दंसणं, कोइ

---

(४५) 'जीवपरिणामे' त्यादि । जीवस्य परिणामो योगकषायात्मकः, जीवपरिणामः । स एव हेतुर्निमित्त जीवपरिणामहेतुः, तस्मात् कमतया पुद्गला -कार्मणवर्गणान्तर्गताः परिणमन्ति भवन्तीत्यर्थः । 'जोगा पयडिपएसं ठिइअणुभाग कसायतो कुणइ त्ति (बन्धशतक.गा.९)वचनात् । पाठान्तरो 'जीवपरिणामहेउं' ति जीवपरिणामो हेतुर्यत्र परिणमते तथेति क्रियाविशेषणत्वेन नेयमिति । अहोऽवबुद्धमेतद्यज्जीवपरिणामतः पुद्गलानां कर्मभावः, परं जीवस्यापि किन्निमित्तस्तथा परिणामो यतः पुद्गलाः कर्मतया परिणमन्ति ? निर्हेतुकत्वे मुक्तानामपि तथा परिणतौ कर्मबन्धाद्यापत्तेरित्याह-पुद्गलकर्मनिमित्तं जीवोऽपि तथैव परिणमति । पुद्गलाः कायादयः, कर्माणि कषायाः, तन्निमित्त तद्धेतुकं यथा भवति तथैव कर्मबन्धानुगुण्येन परिणमति । एतदुक्त भवति-योगकषायपरिणामो बन्धहेतुस्तत्र कायादिपुद्गलनिबन्धनो योगः, कषायः कर्महेतुकश्च कषायपरिणाम इति । सिद्धानां तदभावान्न कर्मबन्धाद्यापत्तिरिति न दोषः ।

---

1 'विसेसपच्चाओ' इति मु. । 2 'घेत्तु' इति पदं जे प्रतौ न दृश्यते । 3 'दव्वसबंधो' इति मु. । 4 'कोइ निरोगो' इति जे. प्रतौ नास्ति । 5 'कोइ बलकरो' इति जे. प्रतौ न दृश्यते ।

सुखदुक्खाइवेयणमित्यादि । तस्सेव मोयगस्स कालणियमणं अविनासित्वेन सा ठिई । तस्सेव णिद्धमहुराइणं एगगुणदुगुणाइभागचिंतणं अणुभागो । तस्सेव समियाइदव्वाणं परिमाणचिंतणं पएसो । एवं कम्मस्सवि सभावत्तमत्तचिंतणं पगइबंधो । तस्सेव तब्भावेण कालावट्ठाणचिंतणं ठिइबंधो । तस्सेव सव्वदेसोवघाइअघाइएकदुगतिगचउट्ठाणसुभासुभतिव्वमंदाइचिंतणं अणुभागबंधो । तस्सेव पोग्गलपमाणणिरूवणं पएसबंधो । **'तह'** त्ति, जहा [1]कम्मपगडीए भणियं तहा भणामि **'किंचि समासं पवक्खामि'** त्ति एएसिं पगइठिइअणुभागपएसाण किंचि किंचि संखेवेणं भणामित्ति भणियं भवइ ।।३।।

वक्खाणेयव्वा अत्था उवदिट्ठा । इयाणिं तेसिं विन्नासपओयणं भन्नति । उवओगो जीवस्स लक्खणं, तत्सिद्धौ शेषसिद्धिरिति । तेण उवओगो पढमं वुच्चइ । तारिसलक्खणो जीवो मणोवाक्कायजुत्तो चिट्ठइ त्ति तयणंतरं जोगो । जोगादयो जीवस्स कम्मबंधपच्चयत्ति काउं तदनंतरं सामन्नपच्चओ । सामन्नं विसेसे अवचिट्ठइत्ति, तदणंतरं विसेसपच्चओ । तेहिं पच्चएहिं जीवस्स कम्मबंधो हवइ त्ति तदनंतरं बंधो । बद्धस्स कम्मणो अणुभवणं ण अबद्धस्स इति तदनंतरं उदओ । उदए सति उदीरणा भवइ, णो अणुदिए उईरण त्ति, तदनंतरं उदीरणा । एएसिं तिण्हं पुढो सिद्धाणं समवायचिंतणं ति, तदणंतरं संजोगो । सामन्नभणियस्स बंधस्स पुणो भेदशनार्थं बहुविसयत्ताओ तदधीनत्वाच्च शेषप्रपञ्चस्येति तदनन्तरं बंधविहाणचिंतणं ति । एवं क्रमविन्यासे [2] प्रयोजनम् । पुव्वं जीवट्ठाणगुणट्ठाणेसु त्ति वुत्तं उवदिट्ठक्कमेणेव जीवट्ठाणणिद्देसत्थं भन्नइ—

> **एगंदिएसु चत्तारि हुंति विगलिंदिएसु छच्चेव ।**
> **पंचिंदिएसुवि तहा चत्तारि हवंति ठाणाणि ।। ४ ।।**

व्याख्या—एगिंदिएसु जीवट्ठाणंति किं भणियं भवइ ? भन्नइ, जीवाणं ठाणं जीवट्ठाणं, सव्वे संसारत्था जीवा एएसु चोद्दससु जीवट्ठाणेसु वट्टंति, तब्बाहिरा णत्थि त्ति काउं, जीवट्ठाणं **'एगिंदिएसु चत्तारि होंति'** त्ति, एगिंदिएसु चत्तारि जीवट्ठाणाइं तंजहा—एगिंदिया[3] दुविहा बायरा सुहुमा य । बायरा दुविहा—पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य । सुहुमा दुविहा पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य । एगिंदिया णाम फासिंदियावरणीयस्स [4]कम्मुणो खओवसमे वट्टमाणा एकविन्नाणसंजुत्ता सेसिंदियसव्वावरणोदयमहिया जीवा, सुणमत्तादिमनुष्यवत् । ते दुविहा—बायरा सुहुमा य । बायरणामकम्मोदयाओ बायरा, सुहुमणामकम्मोदयाओ सुहुमा । ण चक्खुग्गहणं पइ बायरत्तं सुहुमत्तं वा किंतु णामकम्माभिणिव्वत्तं जीवपरिणामं पइ, जहा परमाणुरूवं ण हि परमाणुस्स चक्खुरिंदियगेज्झमिति रूवपरि-

---

1 'कम्मपगडिसंगहणीए' इति मु. । 2 'एवं क्रमन्यासे' इति मु. । 3 'एगिंदिया जीवा' इति जे. । 4 'कम्मुणो' इतिपदं जे. प्रतौ नास्ति ।

णामो, किन्तु स्वाभाविको रूवपरिणामो, एवं बायरसुहुमपरिणामो णामकम्मोदयाभिणिव्वत्तो। [४६]अहवा जीवविवागं किंचि कम्मसरीरे वि अभिवंजयति बायरसुहुमत्तं, जहा मोहणीयकम्मपगई कोहो जीवविवागिणेवि सति सरीरे अभिवत्तिं जणयइ, कोहोदए जीवो तप्पज्जायपरिणओ होइ, सरीरमवि तिवलियणिडालं [1]पसिणसुहं भिउडीमभिवंजयइ। ते एक्केक्का दुविहा, पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य। पज्जत्तगअपज्जत्तगत्तं च णामकम्माभिणिव्वत्तं।

[४७]"आहारसरीरिंदिय ऊस्सासवओ मणोभिणिव्वत्ती। होइ जओ दलियाओ करणं पइ सा उ पज्जत्ती ॥१॥"

पज्जत्ती णाम सत्तिविसेसो। सो य दलिओवचयाओ उप्पज्जइ। आहारियस्स दव्वस्स खलरसपरिणामणसत्ती आहारपज्जत्ती। सत्तधातुतया रसस्स परिणामणसत्ती सरीरपज्जत्ती। इन्दिय पज्जत्ती पञ्चण्हमिन्दियाणं जोग्गे पोग्गले विचिणिय तब्भावणयणसत्ती अत्थाववोहसत्ती य इन्दियपज्जत्ती। बाहिरे आणापाणजोग्गे पोग्गले घेत्तूण आणापाणाए[2] परिणामित्ता ऊसासनीसासत्ताए निस्सरणसत्ती आणापाणपज्जत्ती। वइजोगे पोग्गले घेत्तूण भासत्ताए परिणामित्ता वइजोगत्ताए णिस्सरणसत्ती भासापज्जत्ती। मणोजोगे पोग्गले घेत्तूण मणत्ताए परिणामित्ता मणजोगत्ताए णिस्सरणसत्ती मणपज्जत्ती। एयाओ पज्जत्तीओ पज्जत्तगणामकम्मोदएण णिव्वत्तिज्जन्ति। तं जेसिं अत्थि ते पज्जत्तगा। एयाओ चेव पज्जत्तीओ अपज्जत्तगणामकम्मोदएण [3]ण णिव्वत्तिज्जन्ति। तं जेसिं अत्थि ते अपज्जत्तगा। तत्थ मूलिल्लाओ चत्तारि पज्जत्तीओ अपज्जत्तिओ य एगिन्दियाणं भवन्ति। वाया-

(४६) 'अहवा' त्यादि, पक्षान्तरं, जीवविपाकोऽप्येति जीवविपाकं, किञ्चित्सामान्तर्गतं कर्मशरीरेऽपि अपि(भि)व्यञ्जयति बादरसूक्ष्मत्वे। एतदुक्तं भवति–यद्यपि जीवः सूक्ष्मबादरनामोदयतोऽत्यन्ताल्पेतरावगाहनारूपे बादरसूक्ष्मत्वे (सूक्ष्मबादरत्वे) प्रतिपद्यते। तथापि शरीरे तद्भावो द्रष्टव्यः, जीवप्रदेशसकोचाद्यनुरोधित्वात्तस्य।

(४७) 'आहारे' त्यादि। आहारशरीरेन्द्रियोच्छ्वासवचोमनसां षण्णामर्थानामभिनिवृतिस्तत्तद्वर्गणापुद्गलानामेतद्रूपपरिणतिः। आहारशरीरेन्द्रियोच्छ्वासवचोमनोऽभिनिवृत्तिर्भवति जायते यतो हेतुभूताद्दलिकात् पुद्गलरूपात् करणं प्रति करणतः कर्तुः साधकतमतया इत्यर्थः। लब्धिपर्याप्तिव्यवच्छेदार्थमेतत्। सा पर्याप्तिः। तु शब्दो विशेषणार्थो भिन्नक्रमश्च करणतः पुनस्तद्दलिकं पर्याप्तिरित्यर्थः। एतदुक्तं भवति–पर्याप्ति करणं शक्तिविशेष इत्यनर्थान्तरं, स च दलिकोपचयादुत्पद्यते ततस्तद्दलिकमपि कारणे कार्योपचारात् करणपर्याप्तिरित्युच्यते। यथा दात्रे ग लुनातीत्यत्र दात्रजन्यशक्तिविशेषस्य लवितुः साधकतमत्वेन करणत्वेऽपि कारणे कार्योपचारात् दात्रस्य करणत्वं तथा[त्रा]पीत्यर्थः। अन्ये पुनरेवं व्याचक्षते–आहारशरीरेन्द्रियोच्छ्वासवचोमनसामभिनिर्वृतिर्भवति यतो दलिकात्तन्नि[र्व]त्ति योग्यवर्गणारूपासत्य दलिकतया गृहीतस्य स्वस्वविषयेषु परिणमनं प्रति यत् करणं शक्तिरूपा सा पर्याप्तिरुच्यते।

1 'पंसिणसुहं' इति जे.। 2 'उसासनीसासत्ताए' इति जे.। 3 अयं 'ण' कारो मु. प्रतौ नास्ति। जे. प्रतौ विद्यते, स चात्रात्यन्तमावश्यकः।

सहिया ता चेव विगलिन्दियाणं, असन्निपञ्चिन्दियाणं च पञ्च हवन्ति । ता चेव मणोसहियाओ छ पज्जत्तिओ छ अपज्जत्तिओ य सन्निपञ्चिन्दियाणं भवन्ति । **'विगलिन्दिएसु छच्चेव'** त्ति, विगलाइं असंपुन्नाइं इन्दियाइं जेसिं ते विगलिन्दिया, बेइन्दिआइ जाव चउरिन्दिया । फासिन्दियजिब्भिन्दियावरणाणं खओवसमे वट्टमाणा, दुविन्नाणसंजुत्ता, सेसिन्दियावरणसहिया[1] जीवा बेइन्दिया, ते दुविहा पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य । फासिन्दियजिब्भिन्दियघाणिन्दियावरणाणं खओवसमे वट्टमाणा, तिविन्नाणसंजुत्ता, सेसिन्दियसव्वविन्नाणावरणसहिया[2] जीवा तेइन्दिया, ते दुविहा पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य । फासिन्दियजिब्भिन्दियघाणिन्दियचक्खिन्दियावरणाणं खओवसमे वट्टमाणा, चउविन्नाणसंजुत्ता, सेससव्वविन्नाणावरणसहिया जीवा चउरिन्दिया ते दुविहा, पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य । एवं विगलिन्दिएसु वि छ जीवट्ठाणाणि । **'पञ्चिन्दिएसु वि तहा चत्तारि हवन्ति ठाणाणि'** त्ति, पञ्चिन्दिया णाम पञ्चण्हमिन्दियावरणाणं खओवसमे वट्टन्ता, पञ्चविन्नाणसंजुत्ता, जीवा पञ्चिन्दिया ते दुविहा, असन्नी सन्नी य । तत्थ असन्नी णाम मणोविन्नाणरहिया, ईहापोहमग्गणगवेसणा जेसिं[3] जीवाणं णत्थि, ते दुविहा, पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य । सन्निपञ्चिन्दिया णाम मणोविन्नाणसहिया[48] ईहापोहमग्गणगवेसणा य जेसिं जीवाणं अत्थि ते सन्निणो,[4] ते दुविहा पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य । एवं पञ्चिन्दिएसु वि चत्तारि जीवट्ठाणाणि ।।४।। जीवट्ठाणाणं भेओ लक्खणं च परूवियं । इयाणिं ते चेव गइआइएसु मग्गणट्ठाणेसु के कहिं अत्थि त्ति मग्गिज्जन्ति तण्णिरूवणत्थं भन्नइ–

> **तिरियगईए चोद्दस, हवन्ति सेसासु जाण दो दो उ ।**
> **मग्गणठाणेसेवं[5] , नेयाणि समासठाणाणि ।। ५ ।।**
> **[गइइन्दिए य काए, जोए वेए कसाय नाणे य ।**
> **संजमदंसणलेसा, भवसम्मे सन्नि आहारे ।।]** (प्रक्षेप गाथा)

व्याख्या-**'गइ'** त्ति । चउव्विहा गई-णिरयगई, तिरियगई, मणुयगई, देवगई य । तत्थ **तिरियगईए चोद्दस** वि जीवट्ठाणाणि भवन्ति । कम्हा ? जेण एगिन्दियादयो जाव पञ्चिन्दिया सव्वे

(४८) *'ईहापोहे'* त्यादि । ईहा च स्थाणुरयं पुरुषो वेत्येवं सदर्थालोचनाभिमुखा मतिश्चेष्टा । अपोहश्च स्थाणुरेवायमित्यादिरूपो निश्चयः । मार्गणं चेह वल्ल्युत्सर्पणादयः स्थाणुधर्मा एव प्रायो घटन्त इत्याद्यन्वयधर्मालोचनरूपम् । गवेषणा चेह शिरःकण्डूयनादयः पुरुषधर्माः प्रायो न घटन्त इति व्यतिरेकधर्मालोचनरूपा । ईहापोहमार्गणगवेषणाः ।

1 'सेसिंदियसव्वावरणसहिया' इति जे. । 2 'सेसिंदियसव्वावरणसहिया' इति जे. । 3 'तेसिं' इति मु. । 4 'सन्निया' इति मु. । 5 'मग्गणठाणे एवं' इति मु. ।

तिरिय त्ति काउं । 'सेसासु जाण दो दो उ' [४९]णिरयगइमणुयगइदेवगईसु दो दो जीवट्ठाणाणि, सन्निपञ्चिन्दियपज्जत्तगा अपज्जत्तगा य। देवणेरइएसु करणपज्जत्तीए अपज्जत्तगो, न लद्धीए, लद्धीए पज्जत्तगा एव, जो करणपज्जत्तीए अपज्जत्तगो सो अपज्जत्तगगहणेणं गहिओ, लद्धिअपज्जत्तगो तेसु णत्थि। मणुस्सेसु दोत्ति। 'मग्गठाणेसेवं नेयाणि समासठाणाणि' त्ति, मग्गणट्ठाणेसु एएणेव विहिणा समासट्ठाणाणि–जीवट्ठाणाणि णायव्वाणि । [५०]'गइ इन्दिय [1]जोग-णाण दंसणाणि अहिगयाणि सुत्ते । सेसेसु भण्णइ–'काये' त्ति, काओ छव्विहो–पुढविकाइयाइ, तत्थ पुढविआइसु वणस्सइपज्जन्तेसु चत्तारि जीवट्ठाणाणि भवन्ति एगिन्दियाणं। तसकाइएसु दस जीवट्ठाणाणि भवन्ति, बेइन्दियाऽपज्जत्तगाइ[2] जाव सन्निपज्जत्तगो त्ति । 'वेए' त्ति वेओ तिविहो–इत्थिवेओ, पुरिसवेओ, णपुंसगवेओ य । णपुंसगवेए चोद्दसवि जीवट्ठाणाणि भवन्ति । इत्थिपुरिसवेएसु चत्तारि जीवट्ठाणाणि भवन्ति, असन्निसन्निपज्जत्तगा अपज्जत्तगा य, करणपज्जत्तीए अपज्जत्तगा गहिया, जओ लद्धिपज्जत्तीए अपज्जत्तगा सव्वे णपुंसगा । अवेयगेसु सन्निपज्जत्तगो होज्जा बायरसंपराइ जाव अजोगिकेवलि त्ति । 'कसाय' त्ति, कसाया चउव्विहा, कोहाइचउसु वि कमाएसु चोद्दस जीवट्ठाणाणि भवन्ति । अकसाएसु वि सन्निपज्जत्तगो होज्जा । 'संजमे' त्ति, संजया पञ्चविहा सामाइगाइसंजया, संजयासंजया य असंजया य । पञ्चसु संजएसु संजयासंजएसु य एक्केक्कं जीवट्ठाणं सन्निपञ्चिन्दियपज्जत्तगो लब्भइ, असंजएसु चोद्दस जीवट्ठाणाणि लब्भन्ति। 'लेस' त्ति, लेसा छव्विहा-किण्हाइ । किण्हनीलकाऊलेसासु चोद्दसजीवट्ठाणाणि लब्भन्ति, तेउ-[५१]पम्हसुक्कलेसासु सन्निपञ्चिदियपज्जत्तगो अपज्जत्तगो य लब्भइ, करणअपज्जत्तगो गहिओ, लद्धिअपज्जत्तगस्स हेट्ठिल्ला तिन्नि लेसा भवन्ति । 'भव्वं' ति, भव्वाभव्वाण वि दोण्ह वि चोद्दस वि । 'समत्ते' त्ति, सम्मद्दिट्ठी खइग-वेयग-उवसम-सासण-सम्मामिच्छ-मिच्छद्दिट्ठी य, तत्थ वेय-

(४९) 'णिरयगइमणुयगइदेवगईसु दो दो जीवट्ठाणाणि' त्ति । अत्र मनुष्यगतौ सम्मूर्च्छनजाऽपर्याप्तकमनुष्यभावेन जीवस्थानकत्रयभावेऽपि यदत्र द्वयाभिधानं तत्तृतीयजीवस्थानकस्य तिर्यक्कल्पत्वात्तिर्यग्गतावेव विवक्षितमिति ।

(५०) 'गइइंदियजोगनाणदंसणाणि अहिगयाणि सुत्ते' त्ति । गतिः 'तिरियगईए' इत्यादौ, इन्द्रियाणि 'एगिंदियेसु' इत्यादौ, योगा 'नवसु चउक्के' त्यादौ, ज्ञानदर्शनानि (दर्शनयो) रूपयोगरूपत्वात् 'एकारसेस्वि' त्यादौ, सूत्रेऽधिकृतानीति न स्वयं तन्मार्गणां चकार चूर्णिकारः, किन्तु सूत्रव्याख्यानद्वारेणैवेति ।

(५१) तत्र ['तेउ] पम्हसुक्कलेसासु सन्निपंचिदियपज्जत्तगो अपज्जत्तगो य लब्भइ' त्ति । अत्र बादरपृथिव्य[प्]प्रत्येकवनस्पतिषु तेजोलेस्यावद्देवोत्पत्त्या तेजोलेश्यामार्गणासंभवेऽपि यत् संज्ञिपञ्चेन्द्रियेष्वेव तद्विधिषु तस्याः प्रतिपादनं तत् संज्ञिमात्रोपार्जितत्वेन पृथिव्यादिष्वपि गतस्य जन्तोः संज्ञिपञ्चेन्द्रियसम्बन्धिन्येवेति विवक्षावशादिति ।

1 'गइइन्दिए य कहियं भवइ । जोगणाणदंसणाणि अहिगयाणि' इति मु. । 2 'बेइन्दियपज्जत्तगाइ' इति मु. ।

ग-उवसम-खइयसम्मद्दिट्ठीसु दो दो जीवट्ठाणाणि सन्निपज्जत्तअपज्जत्तगाणि, अपज्जत्तगो[1] त्ति करणअपज्जत्तगो, सम्मामिच्छद्दिट्ठी सन्निपज्जत्तगो [2]एव, सासणसम्मद्दिट्ठी बायरएगिन्दिय-बेइन्दिय-तेइन्दिय-चउरिन्दिय-असन्निपञ्चिन्दियलद्धिएपज्जत्तगेसु करणअपज्जत्तगेसु सीअपज्जत्ताऽ-पज्जत्तगेसु[3] य, मिच्छद्दिट्ठिस्स चोद्दसवि। 'सन्नि' त्ति सन्नि असन्नी य, सन्निपञ्चिन्दिए मोत्तूण सेसा बारसवि असन्निणो, सन्निपञ्चिन्दिएसु दो जीवट्ठाणाणि। 'आहारगे'त्ति, आहारगा अणाहारगा य, तत्थ आहारगेसु चोद्दसवि, अणाहारगेसु सत्त वि अपज्जत्तगा सन्निपज्जत्तगो य लब्भइ, केवलिसमुग्घाए तिचउत्थपञ्चमसमएसु अणाहारगो लब्भइ ॥ ५ ॥

जीवट्ठाणाणि मग्गट्ठाणेसु मग्गियाणि, इयाणिं तेसु उवओगणिरूवणत्थं भण्णइ—

एक्कारसेसु तिय तिय दोसु चउक्कं च बारसेगम्मि ।
जीवसमासेसेवं[4] उवओगविही मुणेयव्वा ॥ ६ ॥

व्याख्या–'**एक्कारसेसु तिय तिय**' त्ति। एक्कारसेसु जीवट्ठाणेसु, एगिन्दिया चत्तारि, बेइन्दिय-तेइन्दियपज्जत्तगा अपज्जत्तगा, चउरिन्दियअसन्निसन्निअपज्जत्तगा य, एए एक्कारस, एएसु एक्कारससु पत्तेयं पत्तेयं तिन्नि तिन्नि उवओगा भवन्ति, तं जहा–मइअन्नाणं सुयअन्नाणं अचक्खुदंसणं ति। '**दोसु चउक्कं**' ति, दोसु जीवट्ठाणेसु चउरिन्दियपज्जत्तगेसु असन्निपज्जत्तगेसु य पत्तेयं पत्तेयं चत्तारि उवओगा भवन्ति, तंजहा–पुव्वुत्ताणि तिन्नि चक्खुदंसणं च, पेक्खन्ति[5] त्ति काउं। '**बारसेगम्मि**'त्ति, सन्निपज्जत्तगम्मि पुव्वुत्ता बारसवि उवओगा भवन्ति। केवलणाणीण सन्नित्तं कहं? इति चेत्? उच्यते–दव्वमणसहितत्वात् सन्नि त्ति वुच्चइ। एत्थ अपज्जत्तगगहणेण लद्धिअपज्जत्तगो गहिओ, करणअपज्जत्तो पज्जत्तगगहणेणं गहिओ। '**जीवसमासेसेवं**[6] **उवओगविही मुणेयव्वे**' त्ति कण्ठ्यम् ॥ ६ ॥

उवओगा जीवसमासेसु भणिया, इयाणिं जोगा भन्नंति—

णवसु चउक्के एक्के जोगा एक्को य दोन्नि पन्नरस ।
तब्भवगएसु एए भवन्तरगएसु काओगो ॥ ७ ॥

व्याख्या–'**णवसु चउक्के एक्के जोगा एक्को य दोन्नि पन्नरस**' त्ति। णवसु चउसु एक्कम्मि जीवट्ठाणेसु जहासंखेण जोगा एक्को दोन्नि पन्नरस त्ति, एगिन्दिया चत्तारि सेसअपज्जत्तगा य पञ्च, एएसु णवसु एक्केक्को जोगो–सामन्नेणं [7]एक्को कायजोगो, विसेसेणं सुहुमबायरपज्जत्तगाणं ओरालियकायजोगो, तेसिं चेव करणअपज्जत्तगाणं ओरालियमिस्सकायजोगो,

1 'अपज्जत्तगो' इति पदं जे. प्रतौ न दृश्यते। 2 'य' इति जे.। 3 सन्निपज्जत्तापज्जत्तगेसु' इति मु.। 4 'जीवसमासे एव' इति मु.। 5 'पिक्खन्ति' इति मु.। 6 'जीवसमासे एवं' इति मु.। 7 'एक्को' इति जे प्रतौ नास्ति।

बायरएगिन्दियपज्जत्तगस्स वेउव्विकायजोगो वेउव्वियमिस्सकायजोगो य, वाउं पडुच्च। लद्धिए करणेण य अपज्जत्तगाणं सव्वेसिं ओरालियमिस्सकायजोगो चेव। चउसु जीवट्ठाणेसु बेइन्दिय-तेइन्दिय-चउरिन्दिय असन्निपज्जत्तगेसु दो दो जोगा पत्तेयं भवन्ति, ओरालियकायजोगो असच्चमोसवइजोगो य, करणपज्जत्तगा गहिया। एक्कम्मि सन्निपज्जत्तगम्मि पन्नरसवि योगा भवन्ति, मणजोग(गा)४वइजोग(गा)४-ओरालियवेउव्वियआहारककायजोगा पसिद्धा, ओरालियमिस्सकायजोगो कम्मइगकायजोगो य सयोगिकेवलिं पडुच्च समुग्घायकाले[1] लब्भन्ति, वेउव्वियमिस्सकायजोगो आहारकमिस्सकायजोगो य [2]वेउव्वियआहारगे विउव्वयन्ते आहारयन्ते य पडुच्च, ते पज्जत्तगा चेव। '**लब्भगएसु एए**' त्ति, तम्मि भवे गया अप्पप्पणो सरीरे वट्टन्ताणं एए भणिया। '**भवन्तरगएसु कायजोगो**' त्ति, भवादन्यो भवो भवान्तरं, तम्मि गया भवांतरगया विग्रहगतानामित्यर्थः, सव्वेसिं भवान्तरगताणं कम्मइगकायजोगो चेव ॥ ७ ॥

उवओगाजोगविही जीवसमासेसु वन्निया एवं ।
एत्तो गुणेहि सह [3]परिगयाणि ठाणाणि मे सुणह ॥८॥

व्याख्या–'उवयोग' त्ति, गाहाए पुव्वद्धं कण्ठ्यम्। जीवट्ठाणेसु उवओगा जोगा य भणिया। '**एत्तो गुणेहि सह [4]परिगयाणि ठाणाणि मे सुणह**' त्ति, एत्तो गुणसंजुत्ताणि ठाणाणि सुणह भणामि त्ति भणियं भवइ ॥ ८ ॥

इयाणिं उवदिट्ठकमागयाणं गुणट्ठाणाणं णिद्देसं करेइ—

मिच्छद्दिट्ठीसासणमिस्से अजए य देसविरए य ।
नव संजएसु एवं चउदस गुणनामठाणाणि ॥९॥

व्याख्या–'**मिच्छद्दिट्ठि**' त्ति, मिच्छादिट्ठी, '**सासण**' त्ति, सासणसम्मद्दिट्ठी, '**मिस्स**' त्ति, सम्मामिच्छदिट्ठी, '**अजए**' त्ति, असंजयसम्मद्दिट्ठी, '**देसविरए**' त्ति, संजयासंजओ, '**णव संजएसु**' त्ति, संजएसु णव ठाणाणि। तं० पमत्तसंजओ, अपमत्तसंजओ, अपुव्वकरणपविट्ठेसु उवसामगा खवगा य, एवं अनियट्टिबायरसम्परायपविट्ठेसु उवसामगा खवगा य, सुहुमसंपराइयपविट्ठेसु उवसामगा खवगा य, उवसन्तकसायवीयरागछउमत्थो, खीणकसायवीयरागछउमत्थो, सजोगिकेवलि, अजोगिकेवलि चेति ॥

तत्थ 'मिच्छद्दिट्ठि' त्ति, मिच्छा अलियं अतथ्यं दृष्टिर्दर्शनं मिच्छद्दिट्ठी जेसि जीवाणं ते मिच्छद्दिट्ठी विवरीयदिट्ठी। अण्णहाट्ठियमत्थं अण्णहा विचिन्तेति मिच्छत्तस्स उदएणं।

1 **जे**· 'प्रतौ समुग्घायकाले लब्भन्ति' इति पाठो न दृश्यते, केवलं 'समुग्घाए।' इति पाठः। 2 'वेउव्विय-आहारगे' इति पदं **जे**. प्रतौ न दृश्यते। 3 'संगयाणि' इति **मु**.। 4 'परिसंगयाणि' इति **मु**.।

यथा–मद्यपीतहृत्पूरकभक्षितपित्तोदयव्याकुलीकृतपुरुषज्ञानवत्, मिच्छत्तं यथार्थावस्थितरुचिप्रतिघातकारणं। उक्तं च–

"मिच्छत्ततिमिरपच्छाइयदिट्ठी रागदोससंजुत्ता। धम्मं जिणपन्नत्तं भव्वावि नरा ण रोचेन्ति ॥१॥
मिच्छादिट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहइ। सद्दहइ असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥२॥
पयमक्खरं व एक्कंपि जो ण रोचेइ सुत्तणिद्दिट्ठं। सेसं रोएन्तोवि हु मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो ॥३॥
सुत्तं गणहरकहियं[1] तहेव पत्तेयबुद्धकहियं[1] च। सुयकेवलिणा रइयं अभिन्नदसपुव्विणा कहियं[1] ॥४॥
अहवा–
तं मिच्छत्तं जमसद्दहणं तच्चाण जाण अत्थाणं। संसइयमभिग्गहियं अणभिग्गहियं च्चतं तिविहं ॥५॥"

'सासणसम्मद्दिट्ठि' त्ति, आसाइज्जइ अणेण सम्मत्तमिति आसायणं, सम्मा दिट्ठी सम्मदिट्ठी, सह आसायणेण वट्टन्त इति सासायणा, सासायणसम्मदिट्ठी जेसिं ते भवन्ति सासायणसम्मादिट्ठी। उवसमसम्मत्तद्धाए वट्टमाणो जीवो अणंताणुबन्धिउदएण सासणभावं गच्छइ। जहा कोइ पुरिसो दमगो अणेगगुणसंपन्नं पायसं भोत्तूण धातुवैषम्यात् तस्सोवरि व्यलिकचित्तो भवइ, ण ताव छड्डेहि, णियमा छड्डेहि, त्ति, एवं सम्मत्ते व्यलिकचित्तो ण ताव छड्डेइ, णियमा छड्डेहि त्ति, सो सासाणो उक्तं च—

"[४२]उवसामगो उ सव्वो णिव्वाघाएण तह णिरासाणो। उवसन्ते सासाणो णिरसाणो होइ खीणम्मि ॥१॥
एसो सासणसम्मो सम्मत्ताद्धाए वट्टमाणो उ। आसायणाए सहिओ सासणसम्मो त्ति णायव्वो ॥२॥"

'सम्मामिच्छादिट्ठि' त्ति, सम्मं च मिच्छा च सम्मामिच्छा, सम्ममिच्छादिट्ठी जेसिं जीवाणं ते भवन्ति सम्मामिच्छदिट्ठी मिस्सदिट्ठि, विरताविरतवत्। पढमं सम्मत्तं उप्पाएन्तो तिन्नि करणाणि करेत्ता उवसमसम्मत्तं पडिवन्नो पढमसमए [2]अंतरकरणस्स मिच्छत्तदलियं तिपुञ्जी करेइ, सुद्धं

(४२) 'उवसामगे' त्यादि गाथा। उपशमकः सर्वश्चतुर्गतिकोऽपि, मिथ्यात्वमोहनीयस्येति प्रक्रमाद् गम्यते। अन्यच्च तदुपशमाधिकारोऽस्याः पाठात् निर्व्याघातेन व्याघाताभावेन भवति। एतदुक्तं भवति–प्रथमसम्यक्त्वमुत्पिपादयिषुरशेषोऽपि चतुर्गतिको यथाप्रवृत्तापूर्वकरणकालोत्तरभाव्यनिवृत्तिकरणबलविहितमिथ्यात्वमोहनीयस्थित्यन्तरकरणः, तदनन्तरमेव प्रारब्धद्वितीयस्थितिगतमिथ्यात्वमोहोपशमः, प्रथमस्थितिगतं च मिथ्यात्वं वेदयन् गुणान्तरभवान्तरप्रतिपत्तिलक्षणव्याघातवर्जितो भवतीति तथा निरासादनश्च विगतसासादनभावश्च भवति, तस्यान्तरकरणप्रवेशसमकालभाव्यौपशमिकसम्यक्त्वाद्धोत्तरभागभावित्वात्। अत एव आह–उपशान्ते मिथ्यात्वमोहनीये सासादनो भवति। आह–यथौपशमिकसम्यक्त्वाद्धायां जीवः सासादनभावं प्रतिपद्यते। किं तथा क्षायिकावस्थायामपि उभयत्र मिथ्यात्वाऽनुदयाऽविशेषादित्याह–निरासादनो विगतसासादनभावो भवति, क्षीणे प्रलयमुपगते मिथ्यात्वे इति शेषः। एतदुक्तं भवति–अनन्तानुबन्ध्युदयात् सासादनो भवति, [..................][3] मिथ्यात्वक्षयश्चानन्तानुबन्धिक्षयनान्तरीयकोऽतः कारणाभावान्न मिथ्यात्वक्षये सासादनभाव इति।

1 'रइयं' इति वा। 2 'पढमसमए अन्तरकरणस्स' इतिपाठो मु. प्रतौ नास्ति, जे. प्रतौ विद्यते।
3 आदर्शेऽत्र [...........]कोष्ठकस्थाने 'आह–यथोपशमिक' इति पाठो दृश्यते, तस्य चाऽप्रस्तुतत्वान्नेह गृहीतः।

मिस्सं असुद्धं[1] चेति । जहा मयणकोद्दवा णिव्वलिया मिस्सा अणिव्वलिया य । णिव्वलियसरिसं सम्मत्तं, अणिव्वलियसरिसं मिच्छत्तं, मिस्ससरिसं सम्मामिच्छत्तं सद्दहणासद्दहणलक्खणं, सुद्धासुद्धमिस्सकोद्दवोदणभोजिपुरिसपरिणामवत् । सुद्धवेई सम्माहिट्ठी हवइ, जहा सुद्धकोद्दवोदणभोजिपुरिसो स्वच्छेन्द्रियज्ञानावबोधो भवति । उक्तं च—

"सम्मत्तगुणेण तओ विसोहई कम्ममेस मिच्छत्तं । सुज्झन्ति कोद्दवा जह मयणा ते ओसहेणेव ॥१॥
जं सव्वहा विसुद्धं तं चेव य भवइ कम्म सम्मत्तं । मिस्सं अद्धविसुद्धं भवे असुद्धं च मिच्छत्तं ॥२॥
तिव्वाणुभावजोगो[2] भवइ हु मिच्छत्तवेयणिज्जस्स । सम्मत्ते अइमन्दो मिस्से मिस्साणुभावो य । ३॥
मयण[3]कोद्दवभोजी अणप्पवसय णरो जहा जाइ । (५३)सुद्धाई उ ण मुज्झइ मिस्सगुणा वा वि मिस्साइ ॥४॥
सद्दहणासद्दहणं जस्स य जीवस्स होइ तच्चेसु । विरयाविरएण समो सम्मामिच्छो त्ति णायव्वो ॥६॥"

'असंजयसम्मद्दिट्ठि' त्ति, ण संजओ असंजओ, सम्मा दिट्ठी जेसिं ते भवन्ति सम्मद्दिट्ठी । असंजओ य सो सम्मद्दिट्ठी य सो असंजयसम्मद्दिट्ठी । अपच्चक्खाणावरणाणं उदए वट्टमाणो विरइं ण लहइ ।

"अप्पच्चक्खाणाणं उदए णियमा चउक्कसायाणं । सम्मद्दिट्ठी वि णरा विरयाविरइं ण पावेन्ति ॥१॥"

दंसणमोहणिज्जस्स कम्मस्स खयखओवसमोवसमे वट्टमाणो असंजयसम्मद्दिट्ठी भवइ । उक्तं च–

"सद्दहिऊण य तच्चे इच्छन्तो णेव्वुइं परमसोक्खं । घेत्तूण णवपयाइं अरिहाइसु णिच्च भत्तिजुओ ॥१॥"
बन्धं अविरइहेउं जाणन्तो रागदोसदुक्खं य । विरइसुहं इच्छन्तो विरइं काउं च असमत्थो ॥२॥
एस असंजयसम्मो णिन्दन्तो पावकम्मकरणं च । अभिगयजीवाजीवो अचलियदिट्ठी [4]चलियमोहो ॥३॥

'संजयासंजओ' त्ति, संजओ य सो असंजओ य सो संजयासंजओ, अद्धाओ असंजमाओ विरओ अद्धाओ अविरओ त्ति, अपच्चक्खाणावरणाणं उदयक्खए पच्चक्खाणावरणाणं च उदए वट्टमाणे संजयासंजओ भवइ ।

"आवरयन्ति य पच्चक्खाणं अप्पमवि जेण जीअस्स[5] । तेणाऽपच्चक्खाणावरणा णणु होइ अप्पत्थे ॥१॥
सव्वं पच्चक्खाणं जेणावरयन्ति अभिलसन्तस्स । तेण उ पच्चक्खाणावरणा भणिया णिरुत्तीहिं ॥२॥
सम्मदंसणसहिओ गेण्हन्तो विरइमप्पमत्तीए । एगव्वयाइ चरिमो अणुमइमेत्तो त्ति देसजई ॥३॥
परिमियमुवसेवन्ता अपरिमियमणन्तयं परिहरन्तो । पावइ परम्मि लोए अपरिमियमणन्तयं सोक्खं ॥४॥"

'पमत्तसंजओ' त्ति, पमत्तो य सो संजओ य सो पमत्तसंजओ, [6]पच्चक्खाणावरणोदयरहिओ, संजलणाणं उदए वट्टमाणो, पमायसहिओ पमत्तसंजओ ।

---

(५३) 'सुद्धाइ' इति । शुद्धादी शुद्धभोजी ।

---

1 अविशुद्धं' इति मु. । 2 'तिव्वाणुभागयोगो' इति जे. । 3 मयणवकोद्दवभोजी' इति जे. । 4 'विलियमोहो' इति जे. । 5 जीवाणं' इति जे. । '6 अपच्चक्खाणावरणोदयरहिओ' इति मु. ।

"विकहा कसाय विकडे इन्दियणिद्दापमायपञ्चविहो । एए सामभतरे जुत्तो विरओऽवि हु पमत्तो ॥१॥
जह रागेण पमत्तो ण सुणइ दोसं गुणं च बहुयपि । गुत्तीसमिइपमत्तो पमत्तविरओ त्ति णायव्वो ॥२॥"

'अप्पमत्तसंजओ' त्ति, अप्पमत्तो य सो संजओ य सो अप्पमत्तसंजओ सर्वप्रमादरहित इत्यर्थः।

"विकहाइयो पमाया तम्मद्दियो सो पमत्तविरओ उ। सव्वप्पमायरहिओ विरओ सो अप्पमत्तो उ ॥१॥"

अपुव्वकरणपविट्ठेसु अत्थि उवसमगा खवग त्ति, पुव्वं करणं पुव्वकरणं, ण पुव्वकरणं अपुव्वकरणं, अपुव्वकरणं पविट्ठा अपुव्वकरणपविट्ठा, तेसु अपुव्वकरणपविट्ठेसु अत्थि उवसामगा खवगा य। बिइयं नामं नियट्टीणो त्ति, परोप्परं परिणामं णियट्टि त्ति नियट्टिणो जातो तेसिं समए समए असङ्खेज्जलोगागासपएसमेत्ताणि विसोही ठाणाणि भवन्ति, तत्थ पढमसमए यदि वट्टन्ता विसरिसपरिणामा 卐 वि भवन्ति, एवं बिइयासु जाव चरिमसमयो ताव विसरिसपरिणामा वि भवंति, तेण ते नियट्टिणो त्ति 卐 किं अपुव्वकरणं? कहं वा पवेसो भवइ त्ति, तं भण्णइ–अपुव्वकरणट्ठाणाणि असंखेज्जलोगागासपएसमेत्ताणि विसोहिट्ठाणाणि, तं जहा–अपुव्वकरणस्स पढमसमए विसोहिट्ठाणाणि सव्वथोवाणि। बिइयसमए वि विसोहिठाणाणि विसेसाहिगाणि। तइयसमए विसेसाहिगाणि। एवं विसेसाहिगाणि विसेसाहिगाणि ताव जाव अपुव्वकरणस्स चरिमसमओ त्ति। अपुव्वकरणस्स पढमसमए जहन्निया विसोही थोवा, तस्सेवुक्कोसिया विसोहि अणन्तगुणा। बिइयसमए जहन्निया विसोही अणन्तगुणा, तस्सेवुक्कोसिया विसोही अणन्तगुणा। तइयसमए जहन्निया विसोहि अणन्तगुणा, तस्सेवुक्कोसिया विसोहि अणन्तगुणा एवं [1]अणन्तगुणा सेढीए [2]णायव्वं जाव अपुव्वकरणस्स चरिमसमओ त्ति। अपुव्वकरणस्स पढमसमए जाणि विसोहिट्ठाणाणि बिइयसमए ततो अपुव्वाणि त्ति, तम्हा विसोहीपरिणामट्ठाणाणि अपुव्वाणि त्ति वुच्चन्ति। ताणि अपुव्वाणि विसोहिपरिणामट्ठाणाणि पविट्ठा अपुव्वकरणपविट्ठा, तेसु अपुव्वकरणपविट्ठेसु अत्थि उवसामगा खवगा य, उवसामइस्सन्ति त्ति उवसामगा। खवइस्सन्ति त्ति खवगा। ण इयाणि उवसामयन्ति त्ति, खवयन्ति त्ति वा, किंतु अभिमुहभावेण यमभिहिय, निल्लेवणयाए पयडिं न खवयन्ति, ठिइघायं पुण करिं[3]ति त्ति। उक्तं च–

"सो[५४] अणुभागठिईणं घायमपुव्वं करेइ ठिइबंधं। अणुभागं च विसोहिं उदीरणाउदयगुणसेढी ॥१॥

(५४) 'सो अणुभागे' त्यादि। सोऽपूर्वकरणस्थो जीवः, अनुभागस्थित्योः प्राग्बद्धायाः घातं विनाशं 'अपूर्वं' ति, अपूर्वं प्राग्गुणस्थानकेषु (केभ्यः) अनन्तं (अत्यन्त) बहुतरमित्यर्थः। 'स्थितिबन्धनं' च प्रत्यन्तर्मुहूर्तं पल्योपमसंख्येयका(भा)गहीनं। 'अनुभागं' च शुभाशुभरूपं प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्धिहानिभ्याम्। 'विशोधि' कर्ममलापगमलक्षणाम्। 'उदीरणा' अपक्ष(क्व)पाचनम्। 'उदयो'ऽनुभवः। 'गुणश्रेणिः' अनन्त(अन्त)र्मुहूर्तादुदयलक्षणप्रभृति-असंख्यगुणदलिकनिक्षेपो। यत उक्तम्–

उपरिष्टादसंख्येयगुणश्रेण्योदयक्षणात्। चलत्यासंमुहूर्त्तातः (र्तान्तः) गुणश्रेणिः प्रचक्षते ॥१॥

[ ]

1 'अणन्तगुणाए सेढीए' इति जे.। 2 'णेयव्व' इति जे.। 3 'करोति' इति मु.।

卐 ....卐 स्वस्तिकद्वयान्तर्गतः पाठो मु. प्रतौ न दृश्यतेऽत्र तु जे. प्रत्यनुसारेण गृहीतः।

तम्हा अपुव्वकरणो नियओ [55]संधम्ममाणमयरागो[1] । सो उवसामगखवगो दुविहो उवसमणखवणरिहो॥२॥
जहा रायारिहो कुमारो राया इति ।

"[56]अत्थं[2] जहा वदंसी विणियट्टियइन्दियत्थविसयगणो । सुविसुद्धभावलेसो सुक्कज्झाणो णिरुद्धतणू ॥१॥
ण य उवसमेइ कम्मं खवेइ तम्मि य अपुव्वकरणम्मि । करिहिइ उवसमखवणं जह घयकुम्भो तहा सोवि॥२॥"

अणियट्टिबायरसंपराइगपविट्ठेसु अत्थि उवसामगा खवग त्ति, ण णियट्टेति त्ति अणियट्टिपरिणामो, ❀ अओ तेसिं पढमसमए सव्वेसिं सरिससुद्धी, एवं बीयाइसमएसु वि जाव चरिमसमओ त्ति । उक्तं च—

"इयरेयरपरिणामं, ण य अइवट्टन्ति बायरकसाया । सव्वेवि एगसमए तम्हा अणियट्टिनामा ते ॥१॥"

अहवा ण अस्स णियट्टणमत्थि त्ति अणियट्टी, अबद्धाउयस्स, बद्धाउ पुण दियलोए कालं करेइ । अथवा प्रकृष्टापकृष्टपरिणामाभावओ वा अणियट्टी, ❀ उक्तं च—

"एक्केक्को परिणामो, उक्कोस जहन्नओ जओ णत्थि ।
तम्हा णत्थि णियट्टणमओवि अणियट्टिणामा ते ॥ १ ॥"

बायरो संपराओ जस्स सो बायरसंपरायगो, संपरायसद्दो सव्वकम्मेसु वट्टमाणो अहिकारवसाओ कसायवाई परिग्गहिओ । बायरकसाए वेएमाणो बायरसंपरायगो त्ति वुच्चइ, अणियट्टी य सो बायरसंपरायगो, य सो अणियट्टिबायरसंपरायगो, अणियट्टिबायरसंपरायं पविट्ठा अणियट्टिबायरसंपरायपविट्ठा, तेसु अणियट्टिबायरसम्परायपविट्ठेसु अत्थि उवसमगा खवगा य ।

"भावं न णियट्टेई विसुद्धलेसो णिरुद्धमयरागो । किट्टीकरणपरिणओ बायररागो मुणेयव्वो ॥१॥
सो [57]पुव्वफड्डगाणं हेट्ठा अपणाणि फड्डगाइं तु । पकरेइ अपुव्वाइं अणन्तगुणहीयमाणाइं[3] ॥२॥

ततश्च पदत्रयस्य द्वन्द्वे समासे उदीरणोदयगुणश्रेणयस्ताः करोतीयं च क्रिया । अपूर्वपदं च सर्व[त्र] सम्बन्धनीयम् ।

(५५) 'संधम्ममाणमयरागो' त्ति । सम्यग् ध्यायमानो ध्यानानलाद्दह्यमानो मदरागौ यस्य स तथा । मद आत्मोत्कर्षाध्यवसायः । रागोऽभिष्वङ्गलक्षणः ।

(५६) 'अत्थं जहा वे (वदंसी)' त्यादि । अर्थो जीवादिकस्तं यथावदवैपरीत्येन 'दर्शी' (दंसी) अवश्यं पश्यन्नित्यर्थः । 'विनिवर्तितः' स्वकार्याक्षमीकृतेन्द्रियार्थः सामान्येनेन्द्रियप्रयोजनो विषयगणः इन्द्रियग्रामो येन सः तथा । 'सुविसुद्ध' त्यादि पश्चार्द्धं कण्ठ्यम् ।

1 'सद्धम्ममाणमयरागो' इति मु. । 'उवसन्तमाणमयरागो' इति मु. पाठान्तरम् । 2 'जहा वयसी' इति मु । ❀ ....❀ पुष्पद्वयान्तर्गतः पाठो जे. प्रतौ विद्यते । मु. प्रतौ च स पाठः किञ्चिद्भिन्नरूपेण मुद्रितो दृश्यते, तद्यथा—'अहवा ण अस्स णियट्टणमत्थि त्ति अणियट्टी, अओ तेसिं पढमसमए सव्वेसिं सरिससुद्धी, एवं बीयाइसमएसु वि जाव चरिमसमओ त्ति । उक्तं च—"इतरेतरपरिणाम ण य अइवट्टन्ति बायरकसाया । सव्वेवि एग समए तम्हा अणियट्टिनामा ते ॥१॥" अथवा प्रकृष्टा उत्कृष्टपरिणामा भावओ वा अणियट्टी ।' मुद्रितप्रतिगतपाठापेक्षया जे. प्रतिगतः पाठोऽधिकसङ्गतः शुद्धश्च प्रतिभात्यतः स एव गृहीतः । 3 'हायमाणाइं' इति जे. ।

(५७) 'सो पुव्वफड्डगाण' मित्यादि गाथात्रयं सुगमाक्षरार्थं परं पुव्वाउ' त्ति वचनव्यत्ययाच्चकारस्य च भिन्नक्रमत्वात् पूर्वेभ्योऽपूर्वेभ्यश्च प्रक्रमात् स(स्प)र्द्धकेभ्योऽपकृष्य दलिक किट्टीः करोतीति सम्बन्धः । भावार्थ पुनरय-इह जीवः समुल्लसितविशुद्धाध्यवसायोऽविरतसम्यग्दृष्ट्यादिगुणस्थानकाक्रमेण क्रमेण यथासभवं क्षपितानन्तानुबन्ध्यादि-पुरुषवेदावसानमोहजालः, अनिवृत्तिबादरसपरायगुणस्थानकस्थः, सज्वलनकषायांश्चतुरोऽपि क्रमेण क्षपयितुमारभमाणः, प्रथमतस्तेषां पूर्वस्पर्द्धकानामधस्तादनन्तये(दानयेदि) त्ययं । अपूर्वस्पर्द्धकानि करोति, सामान्येन स्पर्द्धकलक्षणं चेदं-इह जीवो मिथ्यात्वादिभिर्बन्धहेतुभिर्बद्धानां कर्मपुद्गलानां सर्वजीवानन्तगुणान् प्रतिपरमाणुरसाविभागान् जनयति । यथोक्तम्-

"गहणसमयम्मि जीवो, उप्पाएई गुणे सपच्चयओ ।
सव्वजिआणंतगुणे, कम्मपएसेसु सव्वेसु ॥१॥"

(कर्मप्रकृतिः, बन्धनक. गा. २९)

तत्र सर्वजघन्यरसकर्माणुसमूहलक्षणादिवर्गणात् तत्प्रभृति-एकैकरसाविभागोत्तरा यथोत्तरं विशेषहीमानन्तकर्मपरमाणुप्रचयरूपा गणनया सिद्धराशेरनन्तभागप्रमाणा वर्गणा स्पर्द्धकमुच्यते । उक्तं च-

"सव्वप्पगुणा ते पढमवग्गणा सेसिया विसेसूणा ।
अविभागुत्तरिया[1] ता सिद्धाणमणंतभागसमा ॥

(कर्मप्रकृतिः, बन्धनक. गा. ३०)

फड्डगनि । इवं च प्रथमं, एतस्मादूर्ध्वं षट्स्थानवृद्धानि एवं रूपाणि प्रतिकर्म सर्वजीवानामनन्तानन्तानि, अनुभागबन्धाध्यवसायेभ्यो भूतानि, असख्यकालसकलितान्यन्यानि सन्ति । एतेषु पुन प्रतिप्रकृति उद्वर्तनापवर्तनकरणवशादेकैकमनेकरूपतां प्रतिपद्यते । पूर्वाणि चैतान्यनेकशो वृत्तपूर्वत्वात् । अपूर्वाणि पुनस्तान्येवाक्षपकजन्तुसर्वजघन्यदेशघातिस्पर्द्धकादिवर्गणातोऽप्यनन्तगुणहीमतया विशुद्धिगुणात् । तदानेनैव कृतानि भवन्ति, तत्कालमन्तरेणान्यदाऽभूतपूर्वत्वात् । ततोऽसाव तमुहूर्तमनुसमयविहितापूर्वापूर्वस्पर्धकसमूहः प्रतिसज्वलनकषायं संग्रहनयाभिप्रायतस्तिस्रस्तस्र इति द्वादशकिट्टीः करोति । तुल्यान्तराणामनन्तानामप्येकतया गणनाद् अयक्तित. पुनरेकैकाऽनन्तश इति । किट्टयो नाम एकैकरसविभागोत्तरपरमाणुप्रचयरूपवर्गणासमूहस्वभावानां कषायरसस्पर्धकानां दलिकस्यापवर्तनया त्याजितस्पर्धकरूपस्य परस्परमनन्तगुणरसान्तरतया विभागास्तथाहि-लोभस्य पूर्वस्पर्धकानां प्राग्विहिताऽपूर्वस्पर्धकानां च दलिकमादाय सबजघन्यापूर्वस्पर्धकादिवर्गणातोऽनन्तगुणहीनां तुल्यरसदलिकसचयात्मिकां प्रथमकिट्टीं करोति । एवमतोऽपि अनन्तगुणरसान्तरां द्वितीयां ततोऽपि तृतीयामेव यावत् प्रथमत्रिभागान्त्यकिट्टीमिति । एताश्च कथंचित् तुल्यान्तरगुणकारतयाऽनन्ता अप्येकैवेति । यथा लोभस्य तिस्रः, एवं प्रथमविभागान्त्यकिट्टीतोऽनन्तगुणवृद्धरसा बभागां यथोत्तरमनन्तगुणाभ्यधिकानन्तान्तरालकिट्टीसमूहस्वभावां द्वितीयामेवं तृतीयां च करोति । यथा लोभस्य तिस्रोऽनन्ता वा, तथा प्रत्येकं पश्चानुपूर्व्या मायादीनामपि । पर द्वादशाऽपि संग्रहकिट्ट्यः स्वस्थानसदृशावान्तरकिट्टीगुणकारा उत्तरोत्तरतश्च स्वस्थानाबनन्तगुणवृद्धान्तरालास्तथाहि-द्वादशानां संग्रहकिट्टीनामेकादशान्तराणि । एकादश चान्तरगुणकारास्तत्र लोभस्य प्रथमसंग्रहकिट्ट्याश्चरमकिट्टी यदनन्तराशिगुणिता तस्यैव द्वितीयसंग्रहकिट्ट्याः प्रथमकिट्टी भवति स प्रथमः । अयं च सर्वासामपि संग्रहकिट्टीनां स्वस्थानकिट्टीगुणकारेभ्योऽनन्तगुणः । एवमस्या एव

1 'प्रविभागुत्तरियाओ' इति पाठान्तरम् ।

तत्तो अपुव्वफड्डगहेट्ठा बहुगा करेइ किट्टीओ । पुव्वाओ य अपुव्वेहिंतो ओकड्ढिय पएसे ॥३॥
तो बायरकिट्टीओ वेएमाणो करेइ सुहुमाओ । बायरकिट्टीहेट्ठा किट्टीओ सुहुलेसाओ ॥४॥

संग्रहकिट्टया यदनन्तराशिगुणिता चरमकिट्टी एतत्तृतीयकिट्टयादिकिट्टी भवति स द्वितीयः । एष च प्राग्-गुणकारादनन्तगुणः, एवं तृतीयादयोऽपि यथोत्तरमनन्तगुणास्तावन्नेया यावदेकादश्याः संग्रहकिट्टयाः क्रोध-द्वितीयायाश्चरमकिट्टीगुणकार एकादश इति । ये तु सर्वास्वपि संग्रहकिट्टीषु स्वस्थानेऽवान्तरकिट्टीनां यथोत्तरमनन्तगुणा अपि गुणकारास्ते सर्वेऽपि प्रथमद्वितीयकिट्टयन्तरगुणकारादपि अनन्तगुणहीनाः अत एव सामान्यतः प्रथमात् संग्रहकिट्टयन्तरगुणकारादनन्तगुणहीनेन एकेन गुणकारेण गुणिततया वृद्धिभावात् सदृशान्तरतायामनन्तानामपि संग्रहाभिप्रायतोऽवान्तरकिट्टीनामेकत्वम् । यश्च संग्रहकिट्टीनां परस्परं विशेष्यः (षः) सोऽन्यस्मादनन्तरगुणकारादेकादशभेदादिति । पुनरपि स्फुटतरावबोधाय असद्भावकल्पनया किञ्चिदुच्यते । किल द्वादशस्वपि संग्रहकिट्टीष्वनन्ता अपि अवान्तरकिट्टयस्तिस्रस्तिस्र इति षट्-त्रिंशत् । अत्र च प्रथमकिट्टी अनन्तरसा अपि किल दशरसाविभागा, एतद्द्विगुणाविभागा द्वितीया, तच्चतुर्गुणाविभागा तृतीया, एवं यथोत्तरमनन्तगुणा अपि अवान्तरकिट्टयः पूर्वपूर्वद्विगुणगुणकार-गुणिततया द्वितीयादीनां संग्रहकिट्टीनां प्रथमकिट्टे रेकादशापि परिहृत्य तावन्नेया यावच्चरमावान्तर-किट्टीति । एताः पुनरेकादशापि संग्रहकिट्टयन्तरगुणकारैरनन्तानन्तरूपैरपि कोटिदशकादिकैर्यथोत्तरमनन्तगुणैरपि दशगुणैः कोटीकोटिसहस्रदशकपर्यन्तैरेकादशभिरादितोऽपि चरमाउ(द)वान्तरकिट्टी-गुणकारादनन्तगुणैरपि साधिकपञ्चगुणैः प्राच्यचरमकिट्टीनां गुणनेन भवन्ति । अत्र च गुणकारसंदृष्टिः-

१०/२०	८० कोटयः १०	कोटि ८०० ८	कोटि ६४०० १६

एवं द्विगुणद्विगुणगुणकारगुणिततयाऽनन्तरानन्तरा च संग्रहकिट्टयन्तरगुणकारानुगता यावत्—

सोलस दोतिसयाइं, सत्तेतरी हुंति तह सहस्साइं । सत्तहिलक्खेहिं, समग्गला एगकोडी य ॥
[ ]

इत्यन्तिमः पञ्चत्(त्रिं)शत्तमो द्विचरमावान्तरकिट्टीगुणकारस्तावत् स्वयमभ्यूह्य गुणितफलानुगता सुधिया वाच्येति ।

एताश्च द्वादश कोपसंज्वलनोदयेन क्षपकश्रेणिमारोहतो भवन्ति । मानसंज्वलनोदयेन क्षपितसंज्वलनकोपस्य शेषमानादित्रयस्य नव । मायोदयेन क्षीणाद्यद्वयस्य षट् । लोभोदयेन चाद्यत्रयक्षये केवल-लोभस्य तिस्रः । तदुक्तम्–

"बारस-नव-छ-तिन्नि य, किट्टीओ होंति अहवणंताओ ।
एक्केक्कम्मि कसाये, तिगतिगमहवा अणंताओ ॥"

[कषायप्राभृत. गा. १६३]

तदनन्तरं बादरसंज्वलनलोभक्षयकाले उदिततदीयबादरकिट्टीकृतदलिकः स एवाऽनुदिततच्छेषद-लिकस्य ताभ्य एव बादराभ्योऽनन्तगुणहीनरसाः सूक्ष्मसंपरायाद्धावेदनयोग्याः सूक्ष्मा किट्टीः करोतीति । अयं च सूक्ष्मकिट्टीकरणरूपोऽर्थः 'सम्मं मायपरायणे' त्यादिनाऽनन्तरगुणस्थानके सप्रसङ्गो वक्ष्यत इति गाथात्रयार्थः ।

वेएइ बायराओ किट्टीओ तेण बायरो णाम। कम्माणि उवसमन्तो उवसमगो खवणओ खवगो ॥५॥
जासेइ तओ खवओ लोभं मोत्तूण मोहवीसमवि। अह थीणगिद्धितिगमवि [५८]तेरस णामावि पत्थेव॥६॥"

उवसामगस्स अत्थो इमो–

[५९]सो[1]ऽपुव्वफड्डुगाण तु सुहुमा ओकड्ढिऊण किट्टीओ।
पकरेइ य उवसमओ [६०]उवसमयति[2]मोहवीसमवि ॥७॥
[६१]उवसन्तं जं कम्मं णय ओकड्डइ[3]ण देइ उदएवि। ण य गमयइ परपगइं ण चेव ओकड्ढते तं तु ॥८॥"

(५८) 'तेरसणामा वि' त्ति। त्रयोदशनामा[नि] नरकद्विक-तिर्यग्द्विक-एकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजाति-आतपोद्योत-स्थावर-साधारण-सूक्ष्मलक्षणमि(णानी)ति।

(५९) 'सोऽपुव्वफड्डगाण' मित्यादि। स इत्युपशमकः, अपूर्वस्पर्द्धकानि उक्तरूपाणि, एतानि चेह लोभ(भ)संज्वलनस्यैव तेषां दलिकं रसतोऽपकृष्य किट्टीस्तद्विभागरूपाः सूक्ष्माः अतितन्वीः प्रकरोति-कर्तुमारभते। एतदुक्तं भवति–उपशमकोऽनिवृत्तिगुणस्थानकस्थो यौगपद्येन विहितनपुंसकवेदाद्येकविंशतिमोहप्रकृत्यन्तरकरणस्तत उपशमश्रेणिक्रमेण नपुंसकवेदाद्याः सञ्ज्वलनमायापर्यवसाना अन्तरकरणोपरितनस्थितिगता अष्टादशप्रकृतीरुपशमय्य द्वितीयतृतीयलोभौ बादरसंज्वलनलोभं चोपशमयितुकाम उदयप्राप्तबादरसंज्वलनलोभान्तरकरणाधस्तनस्थितिक्षयेऽन्तरकरणोपरिस्थितसंज्वलनलोभस्थितिदलिकमपवर्तनाकरणेनाधः किञ्चिदवतार्य इतःप्रभृति लोभवेदनकालस्याद्यत्रिभागद्वयमानामेकाराकारधारिणीमन्तरकरणान्तर्गुणश्रेणिमारचयति। लोभवेदनकालस्य चाद्यत्रिभागोऽश्वकरणाद्धा यथा ह्यश्वकर्णो मूले बहुश्र(बहुविस्त)तः क्रमेणापकर्षतो यावदन्तेऽतीवतनुरूपस्तथावस्थितस्योपशमकस्योपरितनस्थितेः पूर्वस्पर्द्धकानामपूर्वतया विधानेन तदाकृतिभावादनुभागोऽश्वकरण इवाश्वकरणस्तस्य करणाद्धेति। द्वितीयः किट्टीकरणाद्धा तेषामेव तथाविहितानामत्र सूक्ष्मकिट्टीकरणात्। अत्र हि ताः प्रतिक्षणं विशुद्धिवशाद् बहुबहुतरबहुतमास्तदन्त्यसमयं यावत् करोति। तृतीय. पुनस्त्रिभागः सूक्ष्मकिट्टीवेदनारूपः, स च सूक्ष्मसंपरायकाल इति। अत्र च द्वितीयत्(त्रि)भागे किट्टीकरणाद्धारूपे द्वितीयतृतीयलोभौ बादरसञ्ज्वलनलोभं च सर्वथोपशमयति।

(६०) एव चासावुपशान्तमोहविंशतिरत एवाह–'उवसमइय(यइ)मोहवीसमवि'। दर्शनसप्तकस्य प्रागुपशमात्, क्षयाद्वा लोभस्य चोपर्युपशमयिष्यमाणत्वाच्छेषां मोहविंशतिमत्र गुणस्थानक उपशमयतीति।

(६१) 'उवसं[त]' मित्यादि। इह प्रक्रमात् सर्वोपशान्तमधिक्रियते तच्च मोहकर्मैव, 'सव्वोवसमो मोहस्सेविति' वचनात्। ततश्च यत्कर्म मिथ्यात्वाद्युपशान्तं न तदपकर्षति, न स्थितिरसाभ्यां हीनं करोति। अपिशब्दस्य भिन्नक्रमत्वान्नाप्युदये सविपाकाविपाकलक्षणे 'उदओ सविवाग अविवागो' इति वचनाद्ददाति नियुङ्क्ते, कृतान्तरकरणस्यैवोपशमनात्। तदभावात्तदविनाभाविन्यामुदीरणायामपि। नैव गमयति संक्रमयति परप्रकृतिं बध्यमानसजातीयरूपां न चोत्कर्षति वृद्धिं नयति स्थितिरसाभ्यां तत्कर्म। निधत्तिनिकाच[न]योस्तु प्रागपूर्वकरणकाल एवानुपशान्तस्यापि निवृत्तत्वान्नेह तल्लक्षणया तन्निषेधः इह च दर्शनत्रिकस्योपशान्तस्यापि सङ्क्रमकरणं प्रवर्तते, यदुक्तं—

'करणाय नोवसंतं मोत्तूणं संकमं च दिट्ठितिगे' त्ति [4]।

संक्रमश्चोद्वर्तनापवर्तनापरप्रकृतिनयनामीति।

1 'सो पुव्वफड्डगाण' इति मु.। 2 'उवसमिय' इति जे.। 3 'ओवट्टइ' इति जे.। 4 'करणाय नोवसंतं, संकमोवट्टणं तु दिट्ठितिगं। मोत्तूण ....।' इत्यादिरूपा गाथा पञ्चसंग्रहे, उपशमनाकरणे (गा. नं. ८५) दृश्यते।

सुहुमसंपरायगपविट्ठेसु अत्थि उवसामगा खवगा' त्ति,सुहुमो सम्परराओ जस्स सो सुहुमसम्पराओ, सुहुमसम्परायं पविट्ठा सुहुमसम्परायपविट्ठा, तेसु सुहुमसम्परायपविट्ठेसु अत्थि उवसामगा खवगा य, बायररागेण कयाओ किट्टीओ सुहुमो वेएइ जतो । आह एत्थ गाहाओ–

"[62]सम्मं भावपरायणगुणेण किट्टीपकिट्टिकरणेण । [1]मोहस्सेक्कारसमी बारसमी बावि जा किट्टी ॥१॥
[63]बारसमी जा किट्टी सुद्धा किट्टी करेइ सुहुमाओ । एक्कारसमीअ ठिओ कड्ढिय सुहुमाउ किट्टीओ ॥२॥
बायररागेण कया सुहुमो वेएइ सुहुमकिट्टीओ । तम्हा सुहुमकसाओ सुहुमो सुद्धप्पयोगप्पा ॥३॥
उवसमगो उवसमयइ खवगो णासेइ सुहुमकिट्टीओ । ते पुण विसुद्धभावा जन्ति दुवे दुविहसेढीओ॥४॥

'उवसन्तकसायवीयरायछउमत्थे' त्ति, उवसन्ता कसाया जेसिं ते भवन्ति उवसन्तकसाया, वीओ रागो जेसिं ते भवन्ति वीयरागा, उवसन्तकसाया य ते वीयरागा य ते उवसन्तकसायवीयरागा, उवसन्तकसाया इति सिद्धे वीयरायवयणं अनर्थकमिति चेत् ? न, हेतुहेतुमद्वचनात्, को हेतुः ? किं वा हेतुमत् ? उवसन्तकसायत्तं हेऊ, वीयरागत्तं हेतुमं, तम्हा उवसन्तकसायवीयरागा इति, "[64]छउमं आवरणं छउमत्थणाणसहचरियत्ताओ छउमत्थवएसो, तम्मि वा चिट्ठइ त्ति छउमत्थो, उवसन्तकसायवीयरागा य ते छउमत्था य उवसन्तकसायवीयरायछउमत्था ।

"[65]'खीणकसायवीयरायछउमत्थ' त्ति, खीणा कसाया जेसिं ते भवन्ति खीणकसाया, वीओ

(६२) 'सम्मं भावपरायणे' त्यादि । सम्यगऽशुद्धिविपर्ययतो यथारूपो भावो मनःपरिणामः सम्यग्भाव, तत्परायणस्तत्परवृत्तिस्तस्य भावः सम्यग्भावपरायणता भावप्रत्ययलि(लु)प्तनिर्देशात् । सैव गुणो धर्मस्तेन करणभूतेन किमित्याह 'किट्टीपकिट्टिकरणेण' किट्टयो बादराः, प्रकिट्टयस्ता एव मनाक् सूक्ष्मास्तत्त्वतो बादरकिट्टीरूपा एव, तासां करणं विधानं तेन लक्षणात्तृतीयेयं, तद्विशिष्टा इत्यर्थः । मोहस्य सञ्ज्वलनलक्षणस्य एकादशीं द्वादशीं च किट्टीं यावत् संज्वलनयो(लो)भस्य द्वितीयतृतीयेऽवशिष्टे यावदित्यर्थः तावन्तं कालं स्थित्वेति शेषः । ततः किमित्याह–

(६३) 'बारसमी' इत्यादि । द्वादशी च या किट्टी लोभस्य तृतीयायास्तस्याः 'कड्ढिय' त्ति आकृष्य तद्विलक्षणतामानीय सूक्ष्मा किट्टीप्रकिट्टीरित्यर्थः । किमित्याह–शुद्धा निवृत्तप्रायरसाः किट्टीः करोति । किं विशिष्टाः ? सूक्ष्माः अतिप्रतन्वी । किं विशिष्ट इत्याह–एकादश्यां स्थितस्तामनुभवन्नित्यर्थः । एतदुक्तं भवति–क्षपकोऽनिवृत्तिबादरसंपरायगुणानकस्थो निर्मूल एव क्रोधमानमायासु किट्टीप्रकिट्टिकरणव्यतिकरेणानुभवसंक्रमाभ्यां क्षपितासु लोभप्रथमकिट्टयां च तस्यैव द्वितीयामनुभवंस्तृतीयायां प्रागेव मनाक् सूक्ष्मरसत्वमानीतं दलिकमपवर्त्य पुनरतीव तनुकिट्टीरूपं सूक्ष्मसंपरायाद्धावेदनयोग्यं करोतीति ।

(६४) 'छउमे' त्यादि । छद्मनावरणे तिष्ठति क्षयोपशमिकत्वात्तदविनाभावेन वर्तत इति छद्मस्थज्ञानमित्यादि । चतुष्टयं छद्म थं च तत् ज्ञानं च छद्मस्थज्ञानं, तत्सहचारित्वाज्जीवस्य छद्मस्थव्यपदेशः । 'तम्मि व' त्ति क्वचिद्वा शब्दो न दृश्यते तत्र समुच्चयगमनात् । स च तस्मिन्नावरणे तिष्ठतीति छद्मस्थः ।

(६५) 'खीणकसाये' त्यादि । इह रागोऽभिष्वङ्गरूप उपलक्षणं चैव द्वेषस्य, कषायाः क्रोधादिकर्माणवस्तत्कारणरूपास्ततः क्षीणकषायवचनेन कारणनिवृत्तौ वीतराग इति रागाभावारूपः कार्यनिर्देश इति ।

1 'मोहस्सेक्कारसमी' इति जे. ।

रागो जेसिं ते भवन्ति वीयरागा, खीणकसाय इति सिद्धे वीयरागग्गहणमनर्थकमिति चेत् ? न अनर्थकं, कुतः ? खीणकसायवयणं कारणदव्वविणासोवदंसणत्थं, वीयरागवयणं कज्जोवदंसणत्थ-मिति उभयग्गहणं, अहवा णिमित्तनेमित्तिकववएसत्थं, णिमित्तविणासे नैमित्तिकविणासो भवतीति, छउमत्थणाणसहचरियत्ताओ छउमत्थ इति, जहा कुन्तसहचरिओ कुन्तो, लट्ठिसहचरिओ लट्ठि त्ति, तम्मि वा छउमे चिट्ठइ त्ति छउमत्थो, खीणकसायवीयरागो य सो छउमत्थो य सो खीण-कसायवीयरायछउमत्थो, दोण्हवि लक्खणगाहाओ ।

तम्मि उ कसायभावाभावे सुद्धं भवे अहक्खायं । चारित्तं दोण्हंपि य उवसंतखीणमोहाणं ॥१॥
जलमिव पसन्तकलुसं पसन्तमोहो भवे उ उवसन्तो । गयकलुसं जइ तोयं गयमोहो खीणमोहोवि ॥२॥
ण य रागदोसहेऊ भावा य भवन्ति केइ इह लोगे । ण य खोभयन्ति केई उवसन्ते खीणमोहे य ॥३॥
रागप्पदोसरहिओ झायन्तो झाणमुत्तमं खीणो । पावइ परं पमोयं घाइतिगं णासिऊण ततो ॥४॥

'सजोगि केवलि' त्ति, सह जोगेण वट्टइ त्ति सजोगी; केवलं [1]अमिस्सं संपुन्नं वा, किं तं केवलं ? णाणं, तं जस्स अत्थि सो केवली, सजोगी य सो केवली य सजोगिकेवली 'अजोगि-केवलि' त्ति ण अस्स जोगो अत्थि त्ति अजोगी, एत्थ गाहाओ—

"चित्तं चित्तपडणिभं तिकालविसयं तओ स लोगमिमं । पिक्खइ जुगवं सव्वं सो लोगं सव्वभावन्नू ॥१॥
चिरियं णिरन्तरायं भवइ अणतं तया य तस्स सया । मणवयणकायसहिओ केवलणाणी सजोगिजिणो ॥२॥
तो सो जोगणिरोहं करेइ लेसाणिरोहमिच्छन्तो । दुसमयठिइगं बन्धं जोगणिमित्तं स णिरुणद्धि ॥३॥
"समए समए कम्मादाणे सइ सन्तयम्मि ण य मोक्खो । वेइज्जइ कम्मं पुण ठिईखयाओ उ भज्जियं ॥४॥
णो "कम्मेहिं चिरियं जोगइव्वेहिं भवइ जीवस्स । तस्स अवत्थाणेण णु सिद्धो दुसमयठिईबंधो ॥५॥

(६६) 'समये' इत्यादि । आह—प्राग् योगनिरोध उक्तः, तन्निरोधद्वारेण किमित्यसौ तन्निमित्तं द्विसमयस्थितिकं बन्धं निरुणद्धि इत्याह । समये समये क्षणे क्षणे कर्मणः सद्वेद्यस्यादानं ग्रहणं कर्मादानं तस्मिन्सति सततेऽविच्छिन्ने यतो न च (ण य) नैव मोक्षः, सकलबन्धाभावरूपत्वात्तस्य । यद्येवं यथा कर्मणोऽबन्धेन मोक्षस्तथा तत् सत्तायामपि विद्यते चास्य बन्धाभावेऽपि प्रागबद्धं विचित्तं(त्रं) कर्म अतः कथमस्य मोक्ष इत्याह-'वेइज्जइ' इत्यादि । पुनःशब्दो विशेषणार्थो भिन्नक्रमश्च । ततश्चार्जितं प्रागुपात्तं पुनर्वेद्यते, अनुनयते निर्जरायोग्यं क्रियत इत्यर्थः । कर्मसद्वेद्यादिस्थितिक्षयाज्जीवेन सह सम्बन्धस्वभावाप-गमादिति । इदमुक्तं भवति-नवस्य कर्मणोऽनुपादाने चिरन्तनस्य स्थितिक्षयं वेदनेन-निर्जरणे, उपपद्यत एव कृत्स्नकर्मक्षयलक्षणो मोक्ष इति । आह-योगकषायपरिणामप्रत्ययो बन्धः, यदुक्तं—

'जोगा पयडिपएसं ठिइ-अणुभागं कसायओ कुणइ' त्ति [बन्धशतक. गा.९९]

तत्र कषायः कर्मप्रत्ययः कषायपरिणाम इति प्रतीतम् । नास्ति तत्कर्म यन्निमित्तो योगः, इत्यहेतो-र्योगस्याऽभावाच्च स्याद्द्विसामग्रि(यि)को बन्ध इत्याह—

(६७) 'णोकम्म' इत्यादि । अत्र नोशब्दः सहायवचनः यथेन्द्रियसाहचर्यान्नोइन्द्रियं मन इति । ततोऽत्र नोकर्मभिरौदारिकादिकर्मकार्यतया तत्कार्यसहचरैः, निषेधवचनो वा ततो नोकर्मभिः कर्मभिन्न-

1 'केवलमनिस्सं' इति मु. प्रत्युज्झितं पाठान्तरम् ।

बायरतणुए पुव्वं [1]मणोवईबायरे स णिरुणद्धि । [2]"आलम्बणाय करणं दिट्ठमिणं[2] तत्थ विरियवओ ॥६॥
बायरतणुमवि णिरुणद्धि तओ सुहुमेण कायजोगेणं । ण णिरुज्झए उ सुहुमो जोगो सइ बायरे जोगे ॥७॥
सुहुमेण कायजोगेण तओ निरुणद्धि सुहुमवायमणं । भवइ य सुहुमकिरिओ जिणो तया किट्टिकयजोगो ॥८॥
[2]"णासेइ कायजोगं थूलं सोऽपुव्वफड्डगीकिच्चा । सेसस्स कायजोगस्स तया किट्टी य स करेति ॥९॥
तमवि स जोगं सुहुम रुन्धन्तो सव्वपज्जयाणुगयं । झाणं सुहुमकिरियं अप्पडिवायं च वयाइ ॥१०॥
झाणे दढदिए पुण अकिरियाऊ तणू भवइ दिट्ठा । आणापाणु णिमीलुम्मीलविउत्ता अचित्तमिव[3] ॥११॥
जोगाभावाओ पुण दुसमयठिइगो[4] ण कम्मबन्धो त्ति । झाणप्पसंहारा तिभागसंकुचियाणियदेसो ॥१२॥

क्षणः-अथ मंभिरपीति भावः । वीर्यं परिस्पन्दप्रयत्नरूपं । युज्यन्त इति योगा मनोवाक्कायव्यापारास्तेषां द्रव्याणि, तद्धेतुत्वात् कायाविलक्षणान, तैर्भवति प्रवर्तत इति । अयमत्र भावो-यद्यपि कर्मबन्धहेतुर्जीवपरिणामो मिथ्यात्वादिस्तत्कर्मनिबन्धनस्तथाऽपि तत्स्वाभाव्यात्कर्मभ्योऽप्येतेभ्यः स्यो(या)दयमिति । एवं च तस्य योगस्य ऽवस्थाने सत्तायां ननु निश्चितं सिद्धः प्रमाणोपलब्धो द्विसमयस्थिति बन्धोऽविकलकारणस्य स्वकार्यकारित्वात् ।

(६८) 'आलम्बणायकरणं तं दिट्ठं [तत्थ] विरियवओ' त्ति । आलम्बनायोपष्टम्भनाय करणं साधकतमं तद्बादरतनुलक्षणं दृष्टमुपलब्धम् । तत्र निरोधे वीर्यवतः सपरिस्पन्दप्रयत्नवतो निःकरणतया तस्याभावात् ।

(६९) 'नासे' त्यादि । नाशयति-अपनयति काययोगं स्थूलं बादरं सः सयोगकेवली । योगनिरोधप्रवृत्तः, अपूर्वस्पर्द्धकीकृत्य-अपूर्वस्पर्द्धकतया सम्पाद्य शेषस्याऽपूर्वस्पर्द्धकीकृतस्य काययोगस्य, तदा सूक्ष्मकायनिरोधकाले किट्टीश्च स सयोगकेवली करोतीत्यक्षरार्थः । पूर्वाऽपूर्वस्पर्द्धककिट्टीनां च स्वरूपं पुनरित्थमवसेयम्-यः खलु मनोवाक्कायकरणवतो जीवस्य स्वप्रदेशचलनलक्षणो वीर्यान्तरायकर्मक्षयक्षयोपशमाभ्यां शरीरादिपुद्गलादानादिनिबन्धनः स्वको वीर्यपरिणामः, यथोक्तमिहैव—

"मणसा वाया काएण, वा वि जुत्तस्स विरियपरिणामो ।
जीवस्स अप्पणिज्जो, स जोगसन्नो[5] जिणक्खाओ ॥"

[ ]

स च साधारणवनस्पतेः सूक्ष्मनामकर्मोदयवतो लब्ध्यपर्याप्तकस्य तद्भवप्रथमसमयवर्त्ते स्वभावत एवस्तोकवीर्यपरिणते सर्वजघन्यः, अयञ्च प्रज्ञया द्विधा-त्रिधादिविभागतस्तावद्विभज्यते यावदसंख्येयलोकप्रदेशप्रमाणो विभागभागो जात इति, परतो विभागदानाभावात् । एते च योगाऽविभागा असंख्यलोकप्रदेशप्रमाणप्रचयास्तस्य प्रति जीवप्रदेश जघन्योऽपि भवति । तत्र येषां प्रदेशानां समाना अन्यप्रदेशास्तेभ्यश्चाल्पतमा वीर्याऽविभागास्ते श्रेण्यसंख्यभागवर्तिलोकप्रतरप्रदेशप्रमाणाः प्रथमजघन्या वर्गणा, ये चातोऽन्ये(या एतत्प्रमाणाऽविभागा एव, परमेकाऽविभागाधिकास्ते द्वितीया वर्गणा, ये चातोऽप्येकाधिकास्ते तृतीया[6] । एवमेकैकाविभागाऽभ्यधिका जीवप्रदेशश्च यथोत्तरं हीनहीनतराविरूपाः श्रेण्यसंख्यभागसंख्या वर्गणाः प्रथमस्पर्धकं भवति । इत ऊर्ध्वमेकोत्तरवर्गणाया अभावात् प्राप्तैकोत्तराविभागवृद्धीनां च वर्गणानां समुदायस्य स्पर्द्धकत्वात्ततश्चैतच्चरमवर्गणाया उपर्यसंख्यलोकप्रदेशसंख्यामविभागवृद्धिमतिक्रम्य संजातवीर्याविभागप्रमाणजीवप्रदेशाः प्राग्वर्गणाप्रदेशेभ्यश्च किञ्चिदूना वर्गणात्वं प्रतिपद्यन्ते।

1 'वइयमणोबायरे' इति जे. । 2 'तं दिट्ठं तत्थ' इति मु. प्रत्युल्लिखितं पाठान्तरम् । 3 'अचित्तव्व' इति जे. । 4 'दुसमयठीओ' इति मु. । 5 अत्रादर्शे 'स जोगसत्तो त्तिणकाओ' इति पाठ स चाऽशुद्धः । 6 आदर्शे 'ते तृतीया' इति पाठो द्विवारं लिखितोऽस्ति ।

••लेसाकरणणिरोहो जोगणिरोहो य तणुणिरोहेण । अह भणिओ विसेसो बन्धणिरोहो वि य तहेव ॥११॥

एवमतोऽप्येकैकाविभागाधिकाः पूर्वक्रमेणैव श्रेण्यसंख्यांशप्रमाणवर्गणा द्वितीयं स्पर्धकम् । एवमेतानि परस्परमसंख्यलोकप्रदेशप्रमाणाविभागापचयरूपसंपन्नचरमाद्यवर्गणान्तरालान्युत्तरोत्तरक्रमेण पूर्वस्पर्धकन्यायोपचितानि श्रेण्यसंख्यांशपरिमाणानि जघन्ययोगस्थानकं तस्य भवति ।

यथा चैतत्तथान्यान्यपि प्रत्येकं श्रेण्यसंख्यैः परस्परमसंख्यलोकप्रमाणचरमाद्यवर्गणान्तरालैः प्राक्प्रमाणवर्गणासमूहमयैरसंख्यभागवृद्ध्या परस्परं स्पर्द्धन्त इति लब्धयथार्थाभिधानैः स्पर्द्धकैर्यथोत्तरं प्रतियोगस्थानकमङ्गुलासंख्यभागाधिकगणनाप्रमाणैराहितस्वरूपाणि श्रेण्यसंख्यभागप्रमाणानि卐 योगस्थानकाविआउ उत्कृष्टयोगसंज्ञिपर्याप्तक संभवरीनि भवन्ति 卐 यथोक्तम्—

पन्नाछेयणछिन्ना, लोगासंखेज्जगप्पएससमा ।
अविभागा एक्केक्के, हुन्ति पएसे जहन्नेणं ॥१॥
जेसिं पएसा ण समा, अविभागा सव्वतो य थोवतमा ।
ते वग्गणा जहन्ना, अविभागहिआ परंपरओ ॥२॥
सेढिअसंखियमेत्ता, फड्डगमेत्तो अणंतरा णत्थि ।
जाव असंखा लोगा, ते बीआईअ पुव्वसमा ॥३॥
सेढिअसंखियमेत्ताइं फड्डगाइं जहन्नयं ठाणं ।
फड्डगपरिवुड्ढि(अ)ओ, अंगुलभागो असंखतमो ॥४॥

तथा– [कर्मप्रकृतिः, बन्धक. गा. ६-७-८-९]

सेढी असंखेज्जइमे, जोगट्ठाणाणि हुंति सव्वाणि ।

एतेषु च स्थानकेषु सर्वाण्यपि स्पर्धकानि पूर्वाणीत्युच्यन्ते, प्रत्येकं सर्वजीवैरनन्तशः प्राप्तपूर्वकत्वादेतद्योगस्थानकानामिति । अपूर्वाणि पुनरेष एव सयोगकेवली पूर्वस्पर्धकेभ्य एव जीवप्रदेशान् योगाविभागांश्च समाकृष्य तद ्स्यगुणहीनान्येव रूपाण्यन्तर्मुहूर्तं करोति । तदनंतरमन्तर्मुहूर्तमात्रमसंख्यजीवप्रदेशप्रचयात्मिका अपूर्वस्पर्धकादिवर्गणातोऽप्यसंख्यगुणहीनयोगाविभागा यथोत्तरमसंख्यगुणान्तरालाः अपूर्वस्पर्धकजीवप्रदेशानां निरोधप्रयत्नवशात् परित्यक्तस्पर्धकरूपाणां स्वारम्भकप्रदेशेषु संपन्नसमानयोगाविभागा असंख्याताः किट्टीः करोति । ततस्तास्वन्तर्मुहूर्तेन निरुद्धास्वयोगिकेवली भवतीति ।

(७०) 'लेसाकरणनिरोहो' इत्यादि । लेश्या च कर्मपुद्गलोपादानशक्तिः, योगस्यैव कश्चिद्विशिष्टः परिणामो 'योगपरिणामो लेश्ये' ति वचनात् । करणं च सलेश्यजीवकर्तृकः प्रयत्नविशेषो बन्धनकरणादिः । यदुक्तम्—

बंधणसंकमणुव्वट्टणा य अववट्टणा उदीरणया ।
उवसामणा निहत्ती निकायणा च त्ति करणाइं ॥१॥

[कर्मप्रकृतिः, बन्धनक.गा.२]

卐 ....卐 स्वस्तिकद्वयान्तर्गतो पाठोऽक्षरशो यथाऽऽदर्शे विद्यते तथैवात्र संपादितः, किन्तु सोऽशुद्धः प्रतिभाति, न सम्यग्ज्ञायते तस्य भावार्थ इति ।

एसो अजोगिभावो जोगणिरोहेण पत्तगुणणामो । अप्पडिवायण्णाणी[1] सव्वण्णू सव्वदंसी य ॥१४॥
तम्हाण ऊणमेत्तो सुहदुक्खाण जिअ सिवं सात । पावइ अलद्धपुव्वं णिव्वाणमलेस्सणिप्फन्दं ॥१५॥"

चोद्दसण्हं गुणट्ठाणाणं अत्थणिरूवणा कया, इयाणिं ते चेव गइयाइमग्गणट्ठाणेसु मग्गिज्जन्ति-

सुरनारएसु चत्तारि हुंति तिरिएसु जाण पंचेव ।
मणुयगईए वि तहा चोद्दस गुणनामठाणाणि[2] ॥१०॥

व्याख्या-'**सुरनारएसु**' त्ति गई चउव्विहा णिरयाइ '**सुरणारएसु चत्तारि होंति**' त्ति देवणेरइगेसु चत्तारि गुणट्ठाणाणि मूलिल्लाणि भवन्ति, तेसु विरई णत्थि त्ति काउं उवरिल्लाणि ण संभवन्ति । '**तिरिएसु जाण पंचेव**' त्ति तिरियगईए पंचगुणट्ठाणाणि मूलिल्लाणि, तेसु सव्वविरई णत्थि त्ति काउ उवरिल्लाणि ण संभवन्ति । '**मणुयगईए वि तहा चोद्दसगुणनामठाणाणि**' त्ति मणुस्सगईए चोद्दसवि गुणट्ठाणाणि, कहं ? सव्वे भावा मणुएसु संभवन्ति ॥१०॥ एवं मग्गणट्ठाणेसु णेयव्वं असंखित्तंत्ति काउं भण्णइ—

'इंदिए' त्ति, एगिदियाईणि पुव्ववण्णियाणि चोद्दसवि जीवट्ठाणाणि (तेसु) सव्वेसु वि मिच्छद्दिट्ठी लब्भइ । बायरेगिंदिय-बि-ति-चउ-असन्निपंचिंदिएसु लद्धीपज्जत्तगेसु करणेण अपज्जत्तगेसु, सन्निपंचिन्दिएसु करणपज्जत्तीए पज्जत्तगापज्जत्तगेसु सासायणसम्मादिट्ठी लब्भइ, लद्धिअपज्जत्तगेसु, सव्वत्थ णत्थि । सेसा सव्वेवि सन्निपज्जत्तगम्मि करणपज्जत्तिए पज्जत्तगम्मि लब्भन्ति, णवरि असंजयसम्मदिट्ठी करणपज्जत्तापज्जत्तगेसु वि लब्भन्ति ।

'काए' त्ति, पुढविआइ जाव तसकाइओत्ति, मिच्छदिट्ठी सव्वेसु वि, बायरपुढवि आउ पत्तेयवणस्सइकाइगेसु लद्धिपज्जत्तगेसु करणअपज्जत्तगकाले चेव सासणो लब्भइ, तेसु उववज्जति त्ति काउं, तसेसु वि लद्धिए पज्जत्तगेसु करणपज्जत्तगापज्जत्तगेसु लब्भति, तसेसु एवं चेव असंजयसम्मदिट्ठी वि । सेसा सव्वे तसकायपज्जत्तगेसु करणपज्जत्तीए पज्जत्तगेसु चेव लब्भन्ति ।

जोगो अधिकृतः ।

लेश्याकरणे तयोनिरोधो विनाश इति विग्रहः । अत्र चोदीरणापवर्तनाकरणे एवाधिक्रियेते । शेषसङ्क्रमादिकरणपञ्चकस्य प्रागेव निवृत्तत्वात् । बन्धनिरोधेन च बन्धनकरणनिरोधस्य वक्ष्यमाणत्वात्, तदन्यथानुपपत्तत्वात्तन्निरोधस्य । जीवप्रदेशचलनावलम्बनः प्रयत्नविशेषो योगः । तन्निरोधश्च तनुनिरोधेन देहानर्थापारभावसंपादनेनाऽतिभणितपूर्वो विज्ञेयो द्रष्टव्यो । बन्धो जीवकर्म्मणोरविभागेन सम्बन्धपरिणामस्तन्निरोधोऽपि च तथैवातिभणितो ज्ञेयो देहबलालम्बनत्वेन लेश्यादीनां देहनिरोधि कारणाभावात्तेऽपि निरुध्यन्त इति । एव चायोगिकेवली निरुद्धलेश्यो निरुद्धकरण इत्यादि विशेषणो भवतीति ।

---

1 'अप्पडिवायणाणी' इति मु. प्रत्युल्लिखित पाठान्तरम् । 2 गुणनामधिज्जाणि' इति मु. ।
3 गुणनामधेज्जाणि' इति मु. ।

'वेए' त्ति, मिच्छद्दिट्ठीप्पभिइ जाव अणियट्टिअद्धाए संखेज्जतिभागमेत्तं सेसत्ति ताव तिसुवि वेएसु लब्भन्ति; हेट्ठील्ला सव्वे सवेयगा, उवरिल्ला अवेयगा ।

'कसाय' त्ति, मिच्छद्दिट्ठीप्पभिइ जाव अनियट्टिअद्धाए संखेज्जइभागमेत्तं[1] सेसत्ति, हेट्ठिल्ला सव्वेवि कोहमाणमायासु लब्भंति, उवरिल्ला [2]अकसाइणो सव्वे । लोभंमि जाव सुहुमरागस्स चरिमसमओ त्ति ताव हेट्ठिल्ला सव्वेवि लब्भंति, सेसा अकसाइणो ।

णाणाणि अधिकृतानि ।

'संजम' त्ति, मिच्छद्दिट्ठीप्पभिइ जाव असंजयसम्मद्दिट्ठी ताव सव्वे असंजया, संजयासंजयो एक्कंमि चेव संजयासंजयट्ठाणे, सामाइयछेओवट्ठावणसंजमेसु पमत्तसंजमप्पभिई जाव अणियट्टि त्ति सव्वेवि । परिहारविसुद्धिसंजमे पमत्तापमत्तसंजया, सुहुमसंपराइओ एक्कंमि चेव सुहुमसंपराइय-संजमट्ठाणे, उवसताइ जाव अजोगि त्ति सव्वे अहक्खायसंजमट्ठाणे ।

दंसणमधिकृतं ।

'लेसे' त्ति, मिच्छद्दिट्ठीप्पभिई जाव असंजओ त्ति सव्वेवि छसु लेसासु, संजयासंजयपमत्ता-पमत्ता य तेउआइ उवरिल्लतिगलेसासु, केइ भणन्ति संजयासंजयपमत्तविरया य छसु लेसासु वट्टन्ति, अन्ने भणन्ति अच्चंतसंकिलिट्ठस्स वयभावो[3] णत्थि, अन्ने भणन्ति ववहारओ भवइ, अपुव्वकर-णाइ जाव सजोगि त्ति सव्वेवि सुक्कलेसाए वट्टन्ति, अलेसिओ अजोगी पुद्गलव्यापाराभावात् ।

'भव्व' त्ति, मिच्छाइ जाव अजोगि त्ति सव्वे भवसिद्धिकेसु वट्टन्ति, अभविकेसु मिच्छ-द्दिट्ठी वट्टइ, सम्मत्ताइभावा अभविएसु ण संभवन्ति त्ति उवरिल्ला ण वट्टन्ति त्ति ।

'सम्मे' त्ति, सम्मद्दिट्ठी खाइगसम्मद्दिट्ठीसु अविरयादि जाव अजोगी, वेदगसम्मत्तं अवि-रयाई जाव अप्पमत्ते, उवसमसम्मत्ते अविरयाई जाव उवसंतकसाओ, सेसा अप्पप्पणो ठाणे ।

'सन्नि' त्ति, मिच्छादिट्ठियादि जाव खीणकसाओ सव्वेवि सन्निम्मि, मिच्छद्दिट्ठी सासायणा य असन्निम्मि वि वट्टन्ति, सजोगी अजोगी य णो सन्नि णो असन्नि, जओ केवलणाणिणो ।

आहारे त्ति–मिच्छाइ जाव सजोगिकेवलि ताव सव्वे आहारगेसु लब्भन्ति, मिच्छादिट्ठिसा-सण असंजओ सजोगिकेवली य [4]विग्गहे समुग्घाए य अणाहारगेसु वि लब्भंति[4] । अजोगी अणा-हारगो चेव, कहं ? वाक्कायमणोजोगपुग्गलव्यापाररहितत्वात् । गुणट्ठाणाणि मग्गणट्ठाणेसु मग्गि-याणि । इयाणि उवओगा गुणट्ठाणेसु भणन्ति–

दोण्हं पंच उ छच्चेव दोसु एक्कंमि होंति वा मिस्सा ।
सत्तुवओगा सत्तसु दो चेव य दोसु ठाणेसु ॥११॥

1 संखेज्जइभागमेव, इति मु. । 2 'अप्पकसाइणो' इति मु' । 3 'वयपरिणामो' मु. इति, प्रत्युल्लिखितं पाठान्तरम् ।
4 .... 4 'अणाहारगेसु वि लब्भन्ति, विग्गहे समुग्घाए य' इति मु० ।

व्याख्या- '**दोण्हं**' ति दोण्हं गुणट्ठाणाणं मिच्छादिट्ठिसासणाणं पंच पंच उवओगा भवन्ति, तं जहा-मइअन्नाणं, सुयअन्नाणं, विभङ्गणाणं, चक्खुदंसणं, अचक्खुदंसणं ति । अन्ने भणन्ति-ओहिदंसणसहिया छ उवओगा । अन्नाणकारणं पुव्वं वक्खाणियं । ओहिदंसणं चिंत्यं । '**छच्चेव दोसु**' त्ति असंजयसंजयासंजएसु एएसु दोसु छ उवओगा, तं जहा-आभिणिबोहिय-सुय-ओहि-अचक्खु चक्खु ओहिदंसणमिति '**एक्कंमि होंति वा मिस्सा**' त्ति सम्मामिच्छदिट्ठिम्मि वा मिस्सा इति, कहं? भन्नइ, मइअन्नाणं आभिणिबोहियणाणेण मिस्सियं, सुयअन्नाणं सुयणाणेण मिस्सियं, विभंगणाणं ओहिणाणेण मिस्सियं, चक्खुअचक्खुओहिदंसणं ति । मिस्ससद्दो अद्धविसुद्धत्थे, जहा अद्धविसुद्धा कोद्दवा ते भुंजमाणस्स जारिसी सरीरचेट्ठा तारिसं णाणंति नासुद्धं नान्यथं सुद्धं वा '**सत्तुवओगा सत्तसु**'त्ति पमत्तसंजयाइ जाव खीणकसाओ ताव सव्वेसुवि सत्त सत्त उवओगा भवन्ति, असंजयसम्माद्दिट्ठिस्स पुव्वुत्ता छ, ते चेव मणपज्जवणाणसहिया सत्त । '**दो चेव य दोसु ठाणेसु**' त्ति दो चेव उवओगा दोसु-सजोगिअजोगिट्ठाणेसु केवलणाणं केवलदंसणमिति ॥११॥

गुणट्ठाणेसु उवओगा भणिया । इयाणिं जोगा ७१ A वुच्चंति—

[2]**तिसु तेरस एगे दस नवसत्तसिगम्मि हुन्ति एगारा ।**
एगम्मि सत्त जोगा, अजोगिठाणं हवइ एक्कं ॥१२॥

पाठान्तरं **तेरस चउसु दसेगे पंचसु नव दोसु होन्ति एगारा ।**
एगम्मि सत्त जोगा अजोगि ठाणं हवइ एगं ॥१३॥

व्याख्या-'**तिसु तेरस**' त्ति तिसु गुणट्ठाणेसु मिच्छद्दिट्ठीसासणअसंजयसम्मद्दिट्ठीसु तेरस तेरस जोगा भवंति, तं जहा-चत्तारि मणजोगा, चत्तारि वइजोगा, ओरालियकायजोगो ओरालियमिस्स कायजोगो, वेउव्वियकायजोगो वेउव्वियमिस्सकायजोगो, कम्मइगकायजोगो त्ति । कम्मइगजोगो अन्तरगइए वट्टमाणाणं, ओरालियमिस्स वेउव्वियमिस्स य अपज्जत्तगद्धाए, संसा सभावत्थस्स चउगइके पडुच्च । '**एगे दस**' त्ति सम्मामिच्छदिट्ठिम्मि दस जोगा, मीसदुग-कम्मइगवज्जिया ते चेव, मरणभावो तब्भावेण णत्थि त्ति तओ एए तिन्निवि न संभवन्ति । '**णव सत्तसु**'त्ति, संजयासंजयअप्पमत्तअपुव्वकरणाइ जाव खीणकसाओ एएसु सत्तसु णव-णव जोगा

७१ A, गुणस्थानकेषु योगसंख्यामार्गणागाथायाश्चूर्ण्यनुसारी प्रथमपाठ एवं द्रष्टव्यः—
तिसु तेरस एगे दस, नवसत्तसिगंमि हुंति एगारा ।
एगंमि सत्तजोगा, अजोगिठाणं हवइ एक्कं ॥
द्वितीयः सुप्रतीत एव ।

1 'जेरिसी' इति मु० । 2 तिसु तेरस एगे दस नवजोगा होंति सत्तसु गुणेसु । एक्कारस य पमत्ते (एकम्मि हुन्ति एक्कारस) सत्त सजोगे अजोगेक्कं ॥१२॥ इति मु० ।

भवन्ति, सम्मामिच्छादिट्ठिस्स जे दस ते चेव वेउव्विकायजोगरहिया णव भवन्ति, वेउव्वियं एए ण करेन्ति त्ति वेउव्वियकाओगो णत्थि। '**एक्कम्मि दु त्ति एक्कारस**'त्ति एक्कंमि पमत्तसंजयम्मि एक्कारस जोगा, पुव्वुत्ता णव आहारककायजोगआहारकमिस्सकायजोगसहिया एक्कारस भवन्ति, आहारगकाओगो आहारगमिस्सकायजोगो य आहारगलद्धिसहियस्स संजयस्स आहारगसरीरं उप्पाएन्तस्स पमत्तो उप्पाएइ, न अप्पमत्तो त्ति,तम्हा एक्कारस । एत्थ देसविरयप्पमत्ताणं केसिंचि वेउव्वियकायजोगो अत्थि त्ति ते पुण एवं पढन्ति '**तेरस चउसु दसेगे पंचसु णव दोसु होन्ति एक्कारस**' त्ति । '**तेरस चउसु**' त्ति, पुव्वं तिण्हं तेरस तेरस जोगा भणिया, चउत्थो पमत्तसंजओ, एक्कारस ते चेव वेउव्विय[1]दुगसहिया तेरस पमत्तसंजयस्स भवन्ति, । '**दसेगे**'त्ति, भणियं, '**पंचसु णव**' त्ति, देसविरयअप्पमत्ते मोत्तूण सेसा पंच तेसु पुव्वुत्ता णव । '**दोसु होन्ति एक्कारस**'त्ति, देसविरयअप्पमत्ताणं एक्कारस, पुव्वुत्ता णव वेउव्वियदुगसहिया एक्कारस देसविरयस्स, ते चेव वेउव्वियआहारगकायसहिया एक्कारस अपमत्तस्स, कहं ? वेउव्विआहारगअन्तकाले पमत्तो अप्पमत्तभावं लभति त्ति काउं '**एक्कम्मि सत्त जोग**' त्ति, एक्कम्मि सजोगिकेवलिम्मि सत्तजोगा, सच्चमणजोगो, असच्चमोसमणजोगो, एवं वायावि, ओरालियकायजोगो, ओरालियमिस्सकाओगो कम्मइगकाओग इति । मणवाया मोसजुत्ता ण संभवन्ति '**अजोगिट्ठाणं हवइ एक्कं**' ति, जोगविरहियं ठाणं एक्कं अजोगिट्ठाणमेव, मनोवाक्कायव्यापाररहितत्वात्[2] ॥१२ १३॥

उवओगा जोगविही य जीवट्ठाणगुणट्ठाणेसु भणिया, इयाणिं जप्पच्चइओ बन्धो जेसु ठाणेसु तं भण्णइ—

चउपच्चइओ बन्धो पढमे उवरिमतिगे तिपच्चइओ ।
मीसग बीओ उवरिम दुगं च देसिक्कदेसम्मि ॥१४॥

व्याख्या—'**चउपच्चइओ**' त्ति, चत्तारि पच्चया, तंजहा—मिच्छत्तपच्चओ, असंजमपच्चओ कसायपच्चओ, जोगपच्चओ इति । मिच्छत्तं सामन्नेणं एगप्पगारं, विभागओ अणेगविहं [71 B]एगंतमिच्छत्तं, वेणइतमिच्छत्तं संसइयमिच्छत्तं, मूढमिच्छत्तं, विवरीयमिच्छत्तमिति । अहवा

(७१ B) 'एगंत मिच्छत्त' मित्यादि । एकान्तोऽनेकधर्मणो वस्तुन एकनयाध्यवसायावधारणं, यथा–अस्त्ये [व] नास्त्येव वा जीवादिरर्थ इति, स एव मिथ्यात्वम् , समग्रनयग्रामस्यैव सम्यक्त्वात् । ऐहिकामुष्मिकसुखानि विनयवानेवाप्नोति न ज्ञानदर्शनोपवासप्रभृतिक्लेशवानित्यभिनिविष्टो वैनयिकमिथ्यात्वम् । समिति सर्वात्मना, अनेकस्मिन् विषयेऽनिश्चायकतया शेत इव बोधविशेषः संशयः उक्तं च—

1 'वेउव्विय (आहारग)दुगसहिया' इति मु० । 2 'मनोवाक्कायरहितत्वात्' इति मु० ।

[७२] किरियावाओ, अकिरियावाओ, वेणइयवाओ, अन्नाणवाओ य ।

"असियसयं किरियाणं अकिरियवाईण जाण चुलसीई । अन्नाणि य सत्तट्ठी वेणइयाणं च बत्तीसं ॥१॥

जे(ज)मणेगत्थालंबण-मपज्जुदासपरिकुंठियं चित्तं ।
सेय इव सव्वपयओ, तं संसयरूवमन्नाण ॥

[विशेषावश्यकभाष्ये, गा. १८३]

स एव मिथ्यात्वम् । यथा किममी मन्मनोविभ्रमं बिभ्राणाः प्रवचनप्रणिताः प्राणिप्रभृतयः पदार्था स्तथाऽन्यथा वा भवेयुरिति संशयमिथ्यात्वम् । मूढानामतिगहननयमतानुसारिनित्यानित्यादिपर्याया-ऽऽलोचनासु व्याकुलितमतीनां सर्वमज्ञानं ज्ञानं नास्तीत्यभिनिवेशो मिथ्यात्वं मूढमिथ्यात्वम् । विपरीतो विपर्यस्तवस्तुस्वभावाध्यवसायी मिथ्यात्वाऽज्ञानहिंसाऽनृतस्तेयाऽब्रह्मपरिग्रहादीनां स्वभावत एव भव-भ्रमणकारणत्वेऽप्येतेभ्य एव निवृत्तिरित्यभिनिवेशवान् बोधो विपरीतमिथ्यात्वमिति । यदाहुरेमे(ते)-

"प्रियादर्शनमेवास्तु, किमन्यैर्दर्शनान्तरैः ।
प्राप्यते यत्र निर्वाणं, सरागेनापि चेतसा ॥१॥"

[ ]

(७२) 'किरियावाओ' इत्यादि । (१) सन्ति आत्मादयः पदार्थाः, न न सन्तीत्येवंरूपक्रियाया वदनं क्रियावादः । (२) एतद्विपरितः पुनरक्रियावादः (३) विनय एव वैनयिकं, वैनयिकादेव सकलैहि-कामुष्मिकफललाभो न तपः प्रभृतितोऽनुष्ठानादिति वैनयिकस्य वादो वैनयिकवादः । (४) अज्ञान-मेवश्रेयः कः किं यथावदवबोद्धुं क्षमो, न वा किञ्चिद् ज्ञातेन प्रयोजनमित्यज्ञानस्य वादोऽज्ञानवादः । मेवसंख्यास्वरूपं चैतेषामेतदार्याचतुष्टयानुसारेण समधिगम्यमिति ।

"आस्तिकमतमात्माद्या, नित्यानित्यात्मका नवपदार्थाः ।
कालस्वभावनियती-श्वरात्मकृतकाः स्वपरसंस्थाः ॥१॥
* काल-यदृच्छा-नियति-स्वभावे-श्वरात्मभिश्चतुरशीतिः ।
नास्तिकवादिगणमते, न सन्ति भावा स्वपरसंस्थाः ॥२॥ *
वैनयिकमतं विनयश्चेते(तो)वाक्कायदानतः कार्यः ।
सुरनृपतियतिज्ञाति-स्थविराऽधममातृपितृषु सदा ॥३॥
अज्ञानिकवादिमतं, नवजीवादीन् सदादिसप्तविधान् ।
भावोत्पत्तिं सदसद्विता(द्वेधा)ऽवाच्यां च को वेत्ति ॥४॥"

[श्रीसूत्रकृताङ्गसूत्रवृत्तौ, श्रुत.१, अध्य. १२]

सदादयश्च सप्त, सत्वम् १, असत्वम् २, सदसत्वम् ३, अवाच्यत्वम् ४, सदवाच्यत्वम् ५, असदवाच्यत्वम् ६, सदसदवाच्यत्वमिति ७ ।

---

* ....* अत्रादर्शेऽस्या आर्याया यत्पाठो विद्यते सोऽशुद्धस्तद्यथा —

"कालयदृच्छा नियच्छा-नियतीश्वरस्वभावात्मभिश्चतुरशीतिः ।
नास्तिकवादिगणमतं, न सन्ति सप्त स्वपरसंस्थाः ॥ २ ॥"

अहवा-"जावइया णयवाया तावइया चेव होति परसमया। जावइयापरसमया तावइया चेय मिच्छत्ता" ॥२॥

एगंतवाओ मिच्छत्तं ति एए कम्मबंधस्स कारणभूआ। [७३]असंजमो अणेगपगारो हिंसाइ, अहवा चक्खुइंदियविसयाऽभिलासाइ। कसाया पणुवीसइविहा तंजहा–सोलसकसाया, नव नोकसाया इति। जोगा पंचदसप्पगारा पुव्वं वक्खाणिया। एत्थ आहारगदुगवज्जिएहिं चउहिंवि सविगप्पेहिं मिच्छद्दिट्ठिम्मि बंधो। **'उवरिमतिगे तिपच्चइगो'** त्ति, उवरिमतिगं सासाणो सम्मामिच्छो अस्संजयसम्मदिट्ठी त्ति एएसु तिसु मिच्छत्तपच्चयवज्जिएहिं सेसतिगेहिं सविगप्पेहिं आहारगदुगवज्जिएहिं बन्धो भवइ, सव्वेवि तेसु अत्थि त्ति काउं, णवरि [दु]मिस्स कम्मइगजोगो य सम्मामिच्छे णत्थि, अणन्ताणुबन्धिणो उवरिमदुगे णत्थि। **'मीसग बिइओ उवरिमदुगं च देसेक्कदेसम्मि'** त्ति, बिइओ पच्चओ असंजमो सो देसविरइम्मि मिस्सो-अपडिपुन्नो, देसओ विरमणभावाओ, उवरिमदुगं णाम कसायजोगा एए दोन्निवि सविगप्पा देसविरयस्स बन्धकारणाणि, णवरि अप्पच्चक्खाणावरण-ओरालियमिस्स [1]कम्मइगआहारगदुगवज्जियाणि, देसविरए एसिं उदओ णत्थि त्ति काउं, ॥१४॥

उवरिल्लपंचके पुण दु पच्चओ जोगपच्चओ तिण्हं ।
सामन्नपच्चया खलु अट्ठण्हं होन्ति कम्माणं ॥१५॥

व्याख्या–**'उवरिल्लपंचके पुण दु पच्चओ'** त्ति, पमत्ताई जाव सुहुमरागो त्ति एएसु पंचसु कसायजोगपच्चइगो बंधो, विसेसोऽत्थ भण्णइ, पमत्तस्स कसाया संजलणा नोकसाया नव एए तेरस, जोगा पुव्वुत्ता तेरस, एएहिं बन्धो। अप्पमत्तस्सवि ते चेव, णवरि वेउव्वियमिस्सआहारयमिस्सवज्जिया एक्कारस जोगा, तेहिं बन्धो। अपुव्वाण वि एए चेव, णवरि वेउव्वाहारगदुगवज्जिया जोगा णव, कसाया (संजलणा नोकसाया नव एए) तेरस, तेहिं बन्धो। अणियट्टिस्स जोगा णव, कसाया चत्तारि संजलणा, तिन्नि य वेया, एतेहिं बन्धो। सुहुमरागस्स जोगा णव, लोभसंजलणो य, एएहिं बन्धो। **'जोगपच्चओ तिण्हं'** ति, उवसन्तखीणकसायसजोगिकेवलिणं एएसिं तिण्ह जोगपच्चइओ बन्धो उवसन्तखीणमोहाणं णव णव जोगा तेहिं बन्धो। सजोगि केवलिस्स सत्त जोगा, तक्कारणो बन्धो। **'सामन्नपच्चया खलु अट्ठण्हं होन्ति कम्माणं'** त्ति एए भणिया अट्ठण्हं कम्माणं सामन्नपच्चया अविसेसपच्चया इत्यर्थः ॥

---

(७३) 'असंयम' इत्यादि। पञ्चाश्रवविरमणादेः संयमस्य विपरीतो हिंसानृतस्तेयादिरनेकधा। हिंसादीनां कतिपयत्वेऽपि प्रभेदानामनेकत्वात्। अथवा द्वादशविधः, चक्षुरादीनामिन्द्रियाणां मनःषष्ठानां स्वविषयाभिलाषः, तथा पृथिव्यादीनां त्रसान्तानां षण्णां कायानां वधाविरमणं। यदुक्तं–'छक्कायवहो मणइंदियाण अजमो असंजमो भणिओ' त्ति। अयमेव चोत्तरगाथासङ्ग्रहे उपयोक्ष्या-(क्ष्य)त इति।

[1] '(वेउव्विय) वेउव्वियमिस्स' मुद्रितप्रतौ विद्यते।

[74]पणपन्न-पन्न-तियछहियचत्त-गुणचत्त-छक्कचउसहिया ।
दुजुया य वीस सोलस दस-नव-नव-सत्तहेऊओ ॥ १ ॥

इदाणीं विसेसपच्चयणिरूवणत्थं भण्णइ—

पडिणीयअन्तराइयउवघाए तप्पओसनिन्हवणे ।
आवरणदुगं भूओ बन्धइ अच्चासणाए य ॥१६॥

व्याख्या—'**पडिणीय**' त्ति, णाणस्स, णाणिस्स, णाणसाहणस्स, पडिणीयत्तणं करेइ पडिकूलया । '**अन्तराइयं**' ति विग्घं, '**उवघाओ**' त्ति मूलाओ विणासकरणं, '**तप्पओस**' त्ति, मणेण तेसिं दूसणया, '**णिण्हवणं**' ति आयरियणिण्हवणं, सत्थणिण्हवणं, वा, अन्नं च णाणिसंदूसणयाए, आयरियपडिणीययाए, उवज्झायपडिणीययाए, अकालसज्झायकरणेण य कालसज्झायाकरणेण य, '**आवरणदुगं भूओ बन्धइ**' त्ति णाणदंसणावरणाणि एएहिं बन्धइ '**भूयो**' त्ति भृशं तीव्रं, '**अच्चासणाए य**' त्ति हीलणयाए णाणं अच्चासेइ, आयरियउवज्झाए य अच्चासाएइ, पाणवहाईहिं य णाणावरणं कम्मं बन्धइ । दंसणावरणस्सवि एए चेव, णवरि अलसयाए, सोविरयाए, णिद्दावहुमन्नणयाए दरिसणप्पओसेण, दरिसणपडीणीकयाए, दरिसणन्तराइगेण दिट्ठीसंदूसणयाए चक्खुविग्घायणयाए पाणवहाईहिं य दंसणावरणं कम्मं बन्धइ ॥१६॥

भूयाणुकम्पवयजोगउज्जुओ खन्तिदाणगुरुभत्तो ।
बन्धइ भूओ सायं विवरीए बन्धए इयरं ॥१७॥

(७४) 卐पणपन्न-पन्न तियछहियचत्त-गुणचत्त-卐छक्कचउसहिया ।
दुजुया य वीस सोलस दस-नव-नव-सत्तहेऊओ ॥१॥

इयं चान्यकर्तृकाऽपि सोपयोगेतीह क्वचिदभिधीयतेऽतो व्याख्यायते । इह च पञ्च-द्वादश-पञ्चविंशति पञ्चदशभेदानां मिथ्यात्वादि प्रत्ययानां समासः [५+१२+२५+१५=५७] सप्तपञ्चाशत् । तत्र मिथ्यादृष्टेराहारकद्विकमपनीय शेषाः पञ्चपञ्चाशद्बन्धहेतव इति । त एवापनीतमिथ्यात्वपञ्चकाः पञ्चाशत् । औदारिकवैक्रियमिश्रकार्मणकाययोगानन्तानुबन्धिष्वपगतेषु त्रिचत्वारिंशत् । से(त एव)औदारिक वैक्रियमिश्रकार्मणेषु परभवसंभविषु प्रक्षिप्तेषु षट्चत्वारिंशत् । औदारिकमिश्रकार्मणत्रसासंयमाऽप्रत्याख्यानावरणचतुष्करहिता एकोनचत्वारिंशत् । अतोऽपि प्रत्याख्यानावरणचतुष्काभावे एकादशाऽसंयमापगमे आहारकद्विकप्रक्षेपे च षड्विंशतिः । ततो वैक्रियाहारकमिश्रयोरपगमे चतुर्विंशतिः । एतयोरेव शुद्धयोरभावे द्वाविंशतिः । षण्णोकषायापगमे च षोडश । वेदत्रयसंज्वलनत्रितयाभावे दश । संज्वलनलोभाभावे नव । चत्वारि मनांसि वचांसि च शुद्धौदारिककाययोगश्चेति नव । पुनरप्येत एव नव द्वितीयतृतीययोर्मनसोर्वचसोश्चाभावे, औदारिकमिश्रकार्मणकाययोगयोगे च त एव सप्तबन्धहेतव इति ।

एते च पञ्चपञ्चाशदादयः सप्तान्ताः क्रमेण मिथ्यादृष्ट्यादिषु सयोगिकेवलिपर्यवसानेषु त्रयोदशसु गुणस्थानकेषु नानाजीवानां समयाऽनपेक्ष्य सम्भवतो बन्धहेतवो द्रष्टव्या इति गाथार्थः । विशेषभावना विस्तरभयान्नलिखितेति ।

卐…………卐 प्रत्यादर्शे 'पणपन्न-पन्न तियहियचत्त-उगचत्त' इति पाठः ।

व्याख्या–'भूयाणु' त्ति भूयाणुकम्पयाए, दयालुकत्ताए, धम्माणुरागेणं, धम्मणिस्सेवणयाए, सीलव्वयपोसहोववासरतीए, अकोहणयाए, तवोगुणणियमरयाणं फासुयदाणेण, बालवुड्ढतवस्सिगिलाणगाईणं वेयावच्चकरणेण, मायापियाधम्मायरियाणं च भत्तीए, सिद्धचेइयाणं पूयाए, सुहपरिणामेणं सायावेयणीयं कम्मं तिव्वं बन्धइ। 'विवरीए बन्धए इयरं' ति, भणियविवरीएहिं, तं जहा–णिरणुकम्पयाए,[1] वाहणविहडणदमणवहबन्धपरियावणयाए, अक्कोसक्कवेयणाइसंकिलेसजणणयाए, सारीरमाणसदुक्खुप्पायणयाए, तिव्वासुभपरिणामेणं णिद्दयत्ताए, पाणवहाईहिं य असायं कम्मं बन्धइ 'इयरं' ति असायावेयणीयं ॥१७॥

इयाणि मोहबन्धस्स कारणं, तत्थ पढमं दंसणमोहस्स भन्नइ—

अरहन्त-सिद्ध-चेइय-तव-सुय-गुरु-साहु-संघ-पडणीओ।
बन्धइ दंसणमोहं अणन्तसंसारिओ जेणं ॥१८॥

व्याख्या–अरहन्ताणं, सिद्धाणं, चेइयाणं, केवलीणं, साहूणं, साहूणीणं, धम्मस्स, धम्मोवएसगस्स, तवस्स सव्वन्नुभासियस्स, सुत्तस्स दुवालसंगस्स गणिपिडगस्स सव्वभावपरूवगस्स अवन्नवाएणं, चाउव्वण्णस्स संघस्स अवन्नवाएणं 'पडिणीओ' त्ति पडिणीओ अवन्नवाई भवइ, अन्नं च उम्मग्गदेसणाए, मग्गविप्पडिवत्तीए, धम्मियजणसंदूसणयाए, असिद्धेसु सिद्धभावणाए, सिद्धेसु असिद्धभावणाए, अदेवेसु देवभावणाए, देवेसु अदेवभावणयाए, असव्वन्नुसु सव्वन्नुभावणयाए, सव्वन्नुसु असव्वन्नुभावणयाए एवमाई विवरीयभावमभिनिवेसणयाए संसारपरिवड्ढणमूलकारणं बन्धइ दंसणमोहं, सम्मदंसणघाइ मिच्छत्तमित्यर्थः। 'अणन्तसंसारिओ जेणं' ति जेणं अणन्तसंसारिको भवइ ॥१८॥

इयाणिं चरित्तमोहकारणं भन्नइ–

तिव्वकसाओ बहुमोहपरिणओ रागदोससंजुत्तो।
बन्धइ चरित्तमोहं दुविहंपि चरित्तगुणघाई ॥ १९॥

व्याख्या–तिव्वकोहपरिणामो कोहवेयणीयं कम्मं बन्धइ। एवं माणमायालोभरागदोसा य वत्तव्वा। 'बहुमोहपरिणओ' त्ति तिव्वमोहपरिणामो मोहवेयणीयं कम्मं बन्धइ विषयगृद्ध इत्यर्थः। तिव्वरागो[2], अइमाणो, ईसालुको, अलियवाई, वङ्को, वङ्कसमायारो, सढो, परदाररइप्पिओ य इत्थिवेयणियं कम्मं बन्धइ। उज्जु, उज्जुसमाचारो, मन्दकोहो, मिउ, मद्दवसम्पन्नो, सदाररइप्पिओ, अणीसालुको, पुरिसवेयणीयं कम्मं बन्धइ। तिव्वकोहो, पिसुणो, पसूणं [3]वहबन्धछेयणताडणणिरओ, इत्थिपुरिसेसु अणंगसेवणसीलो, सीलव्वयगुणधारीसु पासण्डपविट्ठेसु य वभिचारकारी, तिव्वविसयसेवी य, णपुंसगवेयणीयं कम्मं बन्धइ। हसिणो परिहासउल्लाओ, कन्दप्पिओ,

1 'णिराणुकम्पयाए' इति मु०। 2 'तिव्वरोसो' इति वा पाठः। 3 'वहछेयणकोडणणिरओ' इति मु०।

हसावणसीलो य, हासवेयणीयं कम्मं बन्धइ। सोयण-सोयावणसीलो, परदुक्ख-कलह-सोगेसु य अभिणन्दगो, सोगवेयणीयं कम्मं बन्धइ। विविहपरिकीलणाहिं रमण-रमावणसीलो, अकुक्कुपायणो य रइवेयणीयं कम्मं बन्धइ। परस्स रइविग्घकरणाए, अरइउप्पायणयाए पावकम्मसंसग्गीरुइए य अरइवेयणीयं कम्मं बन्धइ। सयं भयन्तो, परस्स य भयउव्वेयं जणयन्तो, भयवेयणीयं कम्मं बन्धइ। साहुजण-[1]दुगुच्छन्तो, परस्स दुगुच्छमुप्पायन्तो, परपरिवायणसीलो दुगुच्छावेयणीयं कम्मं बन्धइ। पत्तेयं पत्तेयं पयडीओ अहिकिच्च बन्धो भणिओ। इयाणिं सामन्नेणं भण्णइ—सीलव्वयसंपन्ने चरणट्ठे धम्मगुणरागिणे सव्वजगवच्छले समणे गरहन्तो, तवसंजमरयाणं परमधम्मिकाणं धम्माभिमुहाणं च धम्मविग्घं करेन्तो, महासत्तीए सीलव्वयकलियाणं देसविरयाणं विरइविग्घं करेन्तो, महुमज्जमंसविरयाणं को एत्थ दोसोत्ति अविरतिं दरिसेन्तो, चरित्तसंदूसणाए अचरित्तसंदेसणाए [2]य परस्स कसाए णोकसाए य संजणन्तो बन्धइ चरित्तमोहं कम्मं। 'दुविहंपि चरित्तगुणघाई' ति कसायणोकसायवेयणीयं दुविहंपि चरित्तगुणं घातति त्ति चरित्तगुणघाई तं चरित्तगुणघाई ॥१९॥

इयाणिं णिरयाउगस्स [3]पच्चओ भण्णइ—

मिच्छद्दिट्ठी महारम्भपरिग्गहो तिव्वलोभनिस्सीलो।
निरयाउयं निबंधइ पावमई रुद्दपरिणामो ॥२०॥

व्याख्या—'**मिच्छद्दिट्ठी**' धम्मस्स परम्मुहो, '**महारम्भपरिग्गहो**' त्ति जम्मि आरम्भे बहूणं जीवाणं घाओ भवइ सो महारम्भो, जम्मि परिग्गहे बहूणं जीवाणं घाओ भवइ सो महापरिग्गहो, '**तिव्वलोभ णिस्सीलो**' त्ति णिम्मेरपच्चक्खाणपोसहोववासो, अग्गिरिव सव्वभक्खी णिरयाउग्गं कम्मं बन्धइ। '**पावमई रुद्दपरिणामो**' त्ति। पावमई असुभचित्तो पत्थरमेयसमाणचित्तो त्ति। रोद्दपरिणामो सव्वकालं मारणाइचित्तो ॥२०॥

इदाणिं तिरियाउग्गस्स भण्णइ—

उम्मग्गदेसओ मग्गनासओ गूढहिययमाइल्लो।
सढसीलो य ससल्लो तिरियाउं बन्धए जीवो ॥२१॥

व्याख्या—'**उम्मग्गदेसओ**' त्ति उम्मग्गं पण्णवेइ, मग्गत्थियाणं णासणं करेइ, '**गूढहिययमाइल्लो**' त्ति मणसा गूढो; किरियाए माइल्लो, '**सढसीलो**' णाम वाचा मधुरो, '**ससल्लो**' त्ति वयसीलेसु अइयारसहिओ मायावी णालोए त्ति, पुढविभेयसरिसरोसो, अप्पारम्भो, तिरियाउयं कम्मं बन्धइ ॥२१॥

इयाणिं मणुआउगस्स भण्णइ—

---

1 साहुजणदुगुंच्छए' इति मु०। 2 'अचरित्तगुणसंदंसणयाए' इति जे०। 3 'इयाणिमाउगस्स' इति मु०।

पयईअ तणुकसायो दाणरओ सीलसंजमविहूणो ।
मज्झिमगुणेहि जुत्तो मणुयाउं बन्धए जीवो ॥२२॥

व्याख्या—'**पयईअ तणुकसायो**' त्ति पगईए अप्पकसाओ, पगईए मद्दगो, पगईए विणीओ, जहिं तहिं वा दाणरओ, वालुकराइसरिसरोसो, सीलसंजमरहिओ, '**मज्झिमगुणेहिजुत्तो**' त्ति णाइसंकिलिट्ठो, ण विसुद्धो, उज्जु, उज्जुकम्मसमाचारो, मणुयाउगं कम्मं बन्धइ ॥२२॥

इयाणिं देवाउअस्स पच्चओ भण्णइ—

अणुवयमहव्वएहि य बालतवाकामनिज्जराए य ।
देवाउयं निबन्धइ सम्मदिट्ठी उ जो जीवो ॥२३॥

व्याख्या—'**अणुवयमहव्वएहि य**' त्ति अणुव्वयगहणेणं पंचणुव्वयधरो, सत्तसिक्खाणिरओ सावगो। महव्वयगहणेण छज्जीवनिकायसंजमरओ, तवणियमबम्भचारी, सरागसंजओ। '**बालतव**' त्ति अणहिगयजीवाजीवा, अणुवलद्धसब्भावा, अन्नाणकयसंजमा, मिच्छद्दिट्ठिणो गहिया। '**अकामणिज्जराए य**' त्ति अकामतण्हाए, अकामच्छुहाए, अकामबंभचेरेणं, अकामसेय जल्लपरियावणयाए, चारगणिरोहबन्धणाईया, दीहकालरोगिणो य, असंकिलिट्ठा, उदगराइसरिसरोसा, तरुवरसिखरणिवाइणो, अणसणजलजलणपवेसिणो य गहिया '**देवाउगं णिबन्धन्ति**' एए सव्वे देवाउगं कम्मं बन्धन्ति। '**सम्मदिट्ठी उ जो जीवो**' त्ति तिरियमणुया अविराहियसम्मदंसणा अविरयावि देवाउगं णिबन्धंति ॥२३॥

इयाणिं णामस्स पच्चया भण्णन्ति—

मणवयणकायवंको माइल्लो गारवेहि पडिबद्धो ।
असुहं बन्धइ कम्मं तप्पडिवक्खेहि सुहनामं ॥२४॥

व्याख्या—'**मण**' त्ति मनोवाक्काएहिं वंको, माई, तिहिं गारवेहिं पडिबद्धो, तं जहा—"वंका[७५]वंकसमायारा, [७६]माइल्ला[७७]नियडिकुडिला, कूडतुलकूडमाणा, [७८]साइ[1]जोगिणो दव्वाणं

---

(७५) 'वंको' इत्यादि। वक्रो मनसा कौटिल्यवान् वक्रसमाचारः कायेन। शठः कार्याशया मधुरवाक्।

(७६) 'माइल' त्ति। मायिनः सामान्येन।

(७७) 'नियडिकुडिल' त्ति। नितरामतिशयेन परस्य वञ्चनार्थमादरादेः कृतिस्तया कुटिला निःकृतिकुटिलाः।

(७८) 'साइजोगिणो दव्वाणं' त्ति। अतिशायिना वर्णाद्यतिशयवता निरतिशयस्य योगः अतियोगः, सहातियोगेन वर्तत इति सातियोगिनः समासाद् इन्। द्रव्याणां कुसुम्भादीनां तत्प्रतिरूपव्यवहारकारिण इत्यर्थः। उक्तं च—

---

1 'माइजोगिणो' इति जे.।

॥१॥" अवन्नाणं च वन्नकरणेणं, वन्नवन्ताणं अवन्नकरणेणं, अगंधाणं गंधकरणेण, वरवंचणसील-याए, सुवन्नमणिरजतादीणं पगइविउव्वणाए, ववहारकरणाईसु विसंवायणसीलयाए, परेसिं अंगोवंग-विणासणाए, परदेहविरूवकरणेणं, वराइयपयाए, पाणवहाईहिं य असुभं णामं बन्धइ । तप्पडिवक्खेहिं सुहणामं' ति तव्विवरीएहिं गुणेहिं जुत्तो उज्जुओ अविसंवायणसीलो य सुह णामं बन्धइ ॥२४॥

इयाणिं गोयस्स पच्चया भण्णन्ति—

अरहन्ताइसु भत्तो सुत्तरुई पयणुमाण-गुणपेही ।
बन्धइ उच्चागोयं विवरीए बन्धए इयरं ॥२५॥

व्याख्या–'अरहन्ताइसु' त्ति अरहंतभत्तीए, सिद्धभत्तीए, चेइयभत्तीए, गुरुमहत्तराणं भत्तीए, पवयणभत्तीए य जुत्तो, सुत्तरुई, सव्वन्नुभासियं सिद्धंतं पढइ पढावेइ य, चिन्तेइ य, वक्खाणेइ त्ति । अहवा सुत्ते वुत्तमत्थं जहा तहा सद्दहइ। 'पयणुमाणो' त्ति जाईए कुलेण वा रूवेण वा, [1]बलसुयलाभआणाइस्सरियतवेण वा जुत्तो वि ण मज्जई "[2]ण परं णिन्दइ, ण परं खिंसइ, ण परं हीलेइ, ण परपरिवायसीलो य 'गुणपेहि' त्ति सव्वेसिं गुणमेव पेक्खइ, किमहं, अन्ने बहवे गुणाहिया सन्तीति ण माणगव्विओ हवइ, गुणाहिकेसु णीयावत्ती, कुसलो 'बन्धइ उच्चागोयं' ति एवं गुण-संपज्जुत्तो उच्चागोयं कम्मं बन्धइ । विवरीए बन्धइ णीयं ति, [2]अरहन्ताइ अभत्तो एवमाइ भणिय-विवरीएहिं गुणेहिं जुत्तो णीयागोयं बन्धइ ॥२५॥

इयाणिमन्तराइयस्स भण्णइ—

पाणवहाईसु रओ जिणपूआमोक्खमग्गविग्घकरो ।
अज्जेइ अन्तरा(इ)यं न लहइ जेणिच्छियं लाभं ॥२६॥

व्याख्या–'पाणवहाईसु रओ' त्ति पाणाइवाएणं जाव महारम्भपरिग्गहेण जुत्तो, 'जिणपूया-मोक्खमग्गविग्घकरो' त्ति जिणपूयाए मोक्खमग्गट्ठियाणं च विग्घकरो । अहवा साहूणं भत्त-

---

सो होइ साइजोगो, दव्वं तं छुहिय अन्नदव्वेसु ।
दोसगुणावेयणेसु य, अत्थविसंवायणं कुणइ ॥ [ ]

'दोसगुणावेयणेसु' त्ति वचनेषु पुनर्यथारुचिर्दोषेष्वपि गुणान् गुणेष्वपि दोषान् क्षिपन्नर्थविसंवादनं करोतीति ।

(७९) 'न पर' मित्यादि । निन्दा परोक्षे परदोषाविष्करणं, तत्समक्षं तु खिंसा, आस्याविमर्दाद्युद्भूतं हीला ।

---

1 'बलसुयमाणाइस्सरियतवे वा' इति मु.। 2 'अरहन्ताइसु भत्तो' इति मु.।
3 'भत्तपाणउवगरणओसहभेसजं' इति मु.।

पाणउवगरणआवसहओसहमेसजं वा दिज्जमाणं पडिसेहेइ, सव्वसत्ताणपि दाणलाभभोगपरिभोगविग्घं करेइ, परस्स विरियमवहरइ, परं [1]बलावन्धणणिरोहाईहिं णिच्चेट्ठं करेइ, कण्णणासजीहछेयणाईहिं इन्द्रियबलणिग्घायकरणेहिं पाणवहाईहिं य 'अज्जेइ अन्तरा(इ)यं ण लहइ जेणिच्छियंलाभं' ति दाणलाभभोगपरिभोगविग्घजणणं बलविरियणिग्घायकरणं च अन्तराइयं कम्मं बन्धइ, जेण इच्छियं लाहं न लभइ ॥२६॥

सामन्नविसेसपच्चया भणिया। इयाणिं जेसु ठाणेसु बंधइ त्ति एवं भण्णइ—

[2]छसु ठाणगेसु सत्तट्ठविहं बन्धन्ति तिसु य सत्तविहं।
छव्विहमेगो तिन्नेगबन्धगाऽबन्धगो एगो ॥२७॥

व्याख्या—छसु ठाणगेसु सत्तट्ठविहं बन्धन्ति' त्ति अट्ठकम्माणि णाणावरणाईणि, छसु ठाणकेसु सत्तविहं अट्ठविहं वा बन्धन्ति, मिच्छादिट्ठी सासणअसंजयसम्मदिट्ठी संजयासंजयपमत्तसंजयअपमत्तसंजया य एएसु छसु ठाणेसु वट्टमाणा आउगबन्धकालं मोत्तूणं सेसं सव्वकालं सत्तविहं बन्धन्ति, आउगबन्धकाले ते चेव अट्ठविहं बन्धंति, सव्वे आउगं बन्धन्ति त्तिकाउं। 'तिसु य सत्तविहं' ति सम्मामिच्छद्दिट्ठी, अपुव्वकरणो, अणियट्टी य, आउगवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ बन्धन्ति। [80]'सम्मामिच्छद्दिट्ठी तेण भावेण ण मरइ त्ति आऊगं ण बन्धन्ति, अपुव्वकरणो, अणियट्टी य अच्चन्तविसुद्ध त्ति काउं। 'छव्विहमेगो' त्ति एगो सुहुमरागो आउगमोहवज्जाओ छ कम्मपगडीओ बन्धइ, बायरकसायाभावातो मोहणीयं न बन्धइ त्ति। [3]आउगस्स वुत्तं। 'तिन्नेगबंधगा' ति तिन्नि उवसन्तखीणसजोगिकेवली य एगविहं बन्धन्ति [4]वेयणियं, सेसाणं कसाओदयाभावात् बन्धो णत्थि, सजोगिणो त्ति काउं वेयणीयस्स बन्धो भवइ। 'अबन्धगो एगो' त्ति अजोगिकेवलिस्स जोगाभावाओ बन्धो णत्थि ॥२७॥

इदाणीं उदओ वुच्चइ—

सत्तट्ठविहछ[विह]बन्धगावि वेएन्ति अट्ठगं नियमा।
एगविहबन्धगा पुण चत्तारि व सत्त वेएन्ति ॥२८॥

व्याख्या—'सत्तट्ठविहछ[विह]बन्धगावि वेयन्ति अट्ठगं णियम'त्ति सत्तविहबन्धगा अट्ठविहबन्धगा छव्विहबन्धका य सव्वे अट्ठविहंपि कम्मं वेएन्ति, कम्हा? सव्वेवि मोहस्स उदए वट्टन्ति

(८०) 'सम्मामिच्छे' त्यादि। अयमभिप्रायो यो यदध्यवसायः सन्नायुर्बध्नाति स तदध्यवसाय एव कालं करोति, मुक्त्वैकमुपशमश्रेणिप्रतिपन्नमिति।

1 'बलाबंधणणिरोहणाईहिं' इति मु.।

2 मु. प्रतौ 'छसुठाणगेसु' इति गाथा पूर्वं 'बंधट्ठाणा चउरो तिन्निय उदयस्स होन्ति ठाणाणि। पंच य उदीणाए संजोगं अउ परं वोच्छं'' इत्येवं रूपा प्रक्षिप्तगाथा दृश्यते, सा च जे. प्रतौ नास्ति।

3 'आउगस्स वुत्तं' इति जे. प्रतौ नास्ति। 4 'बन्धइ' इति मु.।

त्ति काउं। 'एगविहबन्धगा पुण चत्तारि व सत्त वेएन्ति' त्ति एकविहबन्धका तिण्णि, तेसु उवसन्तखीणमोहा य सत्त वेएन्ति त्ति, कम्हा? मोहस्स उदयाभावाओ, तब्भावपरिणामोत्ति काउं। सजोगिकेवली चत्तारि वेएइ, कम्हा? घाइकम्मक्खयाओ केवली जाओ त्ति काउं। वा शब्दात् अबन्धकावि य चत्तारि वेएन्ति ॥२८॥

इदार्णी उदीरण त्ति—

मिच्छद्दिट्ठिप्पभिई अट्ठ उदीरन्ति जा पमत्तो त्ति।
अद्धावलिया सेसे तहेव सत्तेवुदीरन्ति ॥२९॥

व्याख्या-'**मिच्छद्दिट्ठिप्पभइ अट्ठ उदीरन्ति जा पमत्तो**' त्ति मिच्छाइ जाव पमत्तसंजओ सव्वेवि अट्ठविहं उदीरन्ति, कम्हा? तप्पाओगज्झवसाणसहियं त्ति काउं। '**अद्धावलिया सेसे तहेव सत्तेवुदीरन्ति**' त्ति अप्पप्पणो आउगद्धाए आवलिगा सेसे सत्त उदीरेन्ति, कम्हा? आउगं आवलियागतं ण उदीरेन्ति त्ति काउं। एत्थ सम्मामिच्छद्दिट्ठिस्स आउगस्स आवलियपवेसाभावाओ अट्ठविहा चेव उदीरणा, आउगस्स अन्तोमुहुत्तसेसे सम्मामिच्छत्तं छड्डेइ त्ति ॥२९॥

वेयणियाऊवज्जे छकम्म उदीरयन्ति चत्तारि।
अद्धावलिया सेसे सुहुमो उदीरेइ पञ्चेव ॥३०॥

व्याख्या–'**वेयणियाऊवज्जे**' त्ति वेयणीयं आउगं च मोत्तूणं सेसाणि छकम्माणि ताणि चत्तारि [1]जणा उदीरन्ति, अप्पमत्त-अपुव्वकरण-अणियट्टि-सुहुमरागा य, विसुद्धत्वात् वेयणीआउगाणं उदीरणा णत्थि त्ति, तप्पाओगज्झवसाणाभावात्। '**अद्धावलियासेसे सुहुमो उदीरेइ पञ्चेव**' त्ति सुहुमसंपराइगद्धाए आवलियासेसे तहेव मोहवज्जाणि कम्माणि पञ्च उदीरेन्ति, कम्हा? मोहणिज्जं आवलिकापविट्ठं ण उदीरेति त्ति काउं ॥३०॥

वेयणियाउयमोहे वज्ज उदीरेन्ति दोण्णि पंचेव।
अद्धावलियासेसे नामं गोयं च अकसाई ॥३१॥

व्याख्या–'**वेयणियाउग**' त्ति वेयणियाउगमोहवज्जाणि कम्माणि पञ्च, '**दोण्णि**' त्ति उवसन्तखीण कसाया उदीरेन्ति, मोहस्स उदयो णत्थि त्तिकाउं '**अद्धावलियासेसे णामं गोयं च अकसाई**' त्ति खीणकसायद्धाए आवलिकासेसे णामं गोयं च खीणकसाओ उदीरेइ। कम्हा? णाणदंसणावरणन्तराइगाणि आवलिगापविट्ठाणि ण उदीरेन्ति त्ति काउं ॥३१॥

उइरेइ नामगोए छकम्मविवज्जिया सजोगी य।
वट्टन्तो य अजोगी न किञ्चि कम्मं उदीरेइ ॥३२॥

[1] "गुणा" इति मु.।

व्याख्या-'उदीरेइ णामगोए छकम्मविवज्जिया सजोगि' त्ति सजोगीकेवली णामगोत्ताणि चेव उदीरेइ, आउगवेयणिज्जाणं उदीरणाभावाओ, सेसाणं चउण्हं उदयाभावात्। 'वट्टन्तो य अजोगी ण किंचि कम्मं उदीरेइ' त्ति चउण्हं अघाइकम्माणं उदए वट्टमाणोवि ण किञ्चि कम्मं उदीरेइ, जोगाभावाओ ॥३२॥

इयाणिं तिण्हं पि संजोगो त्ति—

अणुईरन्त अजोगी अणुहवइ चउव्विहं गुणविसालो।

इरियावहं न बन्धइ आसन्नपुरक्खडो सन्तो ॥३३॥

व्याख्या-'अणुदीरन्त' त्ति उदीरणाविरहओ अजोगिकेवली चउव्विहं वेएइ अघाइणि, 'इरियावहं ण बंधइ' जोगाभावाओ जोगपच्चइगं ण बंधइ, कम्हा? 'आसन्नपुरक्खडो सन्तो' सन्तो-मोक्खो, सो आसन्नोत्ति काउं ॥३३॥

इरियावहमाउत्ता चत्तारि व सत्त चेव वेदेन्ति।

उईरन्ति दुन्नि पञ्च य संसारगयम्मि भयणिज्जा ॥३४॥

व्याख्या-'इरियावहमाउत्त' त्ति जोगपच्चइगबन्धसहिया तिन्नित्ति 'चत्तारि व सत्त चेव वेदेन्ति' त्ति उवसंतखीणमोहा य सत्त वेएन्ति; सजोगिकेवलि चत्तारि वेएइ। वा सद्दो भेयदरिसणत्थं 'उदीरेन्ति दोन्नि पञ्चेव' त्ति ते चेव जोगपच्चयबन्धसहिया दो उदीरेन्ति सजोगिकेवली, खीणकसायो जाव आवलिकावसेसे ताव पञ्च उदीरेन्ति, आवलिकासेसे दो उदीरेइ। उवसन्तकसाओ सव्वद्धासु पंचेव उदीरेइ। 'संसारगयम्मि भयणिज्ज' त्ति उवसन्तकसाओ संसारम्मि भयणिज्जो त्ति लद्धं बोहिलाभं भयणिज्जो विणासेइ वि ण विणासेइ वि ॥३४॥

छप्पञ्च उदीरन्तो बन्धइ सो छव्विहं तणुकसाओ।

अट्ठविहमणुहवन्तो सुक्कज्झाणा डहइ कम्मं ॥ ३५ ॥

व्याख्या—'छप्पञ्च' त्ति 'तणुकसाओ' सुहुमरागो, सो छव्विहं पञ्चविहं वा उदीरेइ, आवलिकावसेसे पञ्चविहं उदीरेति, सेसकाले छव्विहं। 'अट्ठविहमणुभवन्तो' सव्वद्धासु अट्ठविहं चेव वेएइ 'सुक्कज्झाणा डहति कम्मं' त्ति मोहणिज्जकम्मं 'डहइ' विणासेइ। सुक्कज्झाणग्गहणं किं णिमित्तं इति चेत्? भण्णइ, सेढीए धम्मसुक्कज्झाणाइं सवियप्पाइं अविरुद्धाइं ति तद्बोधनार्थं तु सुक्कज्झाणग्गहणं ॥ ३५ ॥

अट्ठविहं वेयन्ता छव्विहमुईरन्ति सत्त बन्धन्ति।

अनियट्टी य नियट्टी अप्पमत्तजई य ते तिन्नि ॥ ३६ ॥

व्याख्या—'अट्ठविहं वेयन्ता' त्ति अट्ठविहंपि कम्मं वेएन्ति, आउगवेयणियवज्जाणि छकम्माइं उदीरन्ति, आउगवज्जाणि सत्त बन्धन्ति, अणियट्टी य णियट्टी अप्पमत्तजई य ते तिन्नि।

अप्पमत्तो अट्ठविहंपि बन्धइ तं च किं ण भणियं इति चेत् ? भन्नइ, अप्पमत्तो आउगबन्धाढवणं ण करेइ, पमत्तेण आढत्तं [1]अपमत्तो बन्धइ त्ति तस्सूयणत्थं न भणियं ॥ ३६ ॥

अवसेसट्ठविहकरा वेयन्ति उदीरगावि अट्ठण्हं ।
सत्तविहगा वि वेइन्ति अट्ठगमुईरणे भज्जा ।। ३७ ।।

व्याख्या—'अवसेस' त्ति भणियसेसा जे अट्ठविहबन्धका मिच्छाइ जाव पमत्तसंजओ ते सव्वे अट्ठविहं वेएन्ति, अट्ठविहं चेव उदीरेन्ति । कम्हा ? आउगबन्धकाले आवलिकासेसं आउगं ण भवइ त्ति काउं । 'सत्तविहगावि वेइन्ति अट्ठगं' त्ति ते चेव मिच्छादिट्ठिणो पमत्तन्ता सत्तविहबन्धकाले ते सव्वे अट्ठविहं णियमा वेएन्ति । 'उइरणे भज्ज' त्ति उदीरणं पडुच्च सत्तविहं वा उदीरेन्ति, अट्ठविहं वा जाव अप्पप्पणो आउगस्स आवलिकावसेसे ताव अट्ठविहं उदीरन्ति । आवलिकापविट्ठे आउगस्स सत्तविहं, आउगस्स उदीरणाभावात् । एत्थ सम्मामिच्छद्दिट्ठी सत्तविहबन्धगो एव णियमा अट्ठविहं वेएति उईरेइ य, कम्हा ? तेण भावेण न मरइ त्ति काउं, भयणिज्जसद्देण गहिओ । संजोगो भणिओ ।। ३७ ।।

इयाणिं बन्धविहाणे त्ति दारं पत्तं, सो चउव्विहो, पगइबन्धो, ठितिबन्धो, अणुभागबन्धो, पएसबन्धो इति । तत्थ पगइबंधो पुव्वं भन्नइ, तं णिमित्तं मूलुत्तरपगइसमुक्कित्तणा किज्जति तंजहा—

णाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेयणीय मोहणियं ।
आउय नामं गोयं तहंतरायं च पयडीओ ।। ३८ ।।
पञ्च नव दोन्नि अट्ठावीसा चउरो तहेव बायाला ।
दोन्नि य पञ्च य भणिया पयडीओ उत्तरा चेव ।। ३९ ।।

व्याख्या—'नाणस्स' त्ति 'पञ्च' त्ति एयाओ दोवि गाहाओ जुगवं वक्खाणिज्जन्ति । पढमियाए गाहाए मूलपगइणं णिद्देसो । बिइयाए तेसिं चेव उत्तरपगइणिरूवणं भन्नइ । तत्थ पगई दुविहा, मूलपगई उत्तरपगई य । तत्थ मूलपगई अट्ठविहा, णाणावरणिज्जं, दंसणावरिज्जं, वेयणिज्जं, मोहणिज्जं, आउगं, णामं, गोयं, अन्तरायगमिति । जीवो अणेगपज्जायसमुदओ दव्वं, तस्स णाणादंसणसुहदुक्खसद्दहणचारित्तजीवियं देवभवादिउच्चणीयदाणलद्धियादओ अणेगविहा धम्मा पज्जाया । तत्थ अत्थावबोहो णाणं अभिगमो तं आवरेइ त्ति णाणावरणीयं भास्कराभ्राद्यावरणवत् , तस्सावरणभेया पञ्च, तंजहा—आभिणिबोहियणाणावरणिज्जं सुयओहिमणपज्जवकेवलणाणावरणीयमिति । तत्थाभिणिबोहियं-अभि त्ति आभिमुख्ये, निः इति णियमे, बोहो—अवगमो, आभिमुख्येन णियतविसयावबोधो अभिणिबोधो, किं तं अभिमुख्यं ? [81]'जुत्तसन्निकरिसविसयावत्थियाणं रूवाईणमत्थाणं गहणमाभि-

(८१) 'जुत्तं' त्यादि । युक्ताश्च ते ग्रहणयोग्याः, सन्निकर्षविषयावस्थिताश्च समुचितदेशस्था-

1 'अपउगं बंधइ' इति मु. ।

मुल्यं, चक्खुरादिइंदियं पइ णियतविसयाणं ग्रहणमिति णियर्य, अवबोहो अवगमो अभिणिबोहो एगट्ठं, अभिणिबोह एव आभिणिबोहियं, पञ्चिन्दियमणोछट्ठाणं उग्गहादओ चत्तारि चत्तारि अत्था, वंजणावग्गहो चउण्हं इंदियाणं चक्खिदियमणोवज्जाणं, तेहिं य सुयाणुसारेण चउपचसंखाइविण्णाणं। तमाभिणिबोहियं अट्ठावीसइविहं बत्तीसइविहं छत्तीसतिसयविहं वा। कहं? उग्गहाईमेएहिं २८, उप्पादिया वेणइया कम्मिया पारिणामियबुद्धिचक्खेवे ३२, ⁸²बहु-बहुविध-क्षिप्र-निसृत-संदिग्ध ध्रुवैः सेतरैर्गुणनात् ३३६, तं आवरेइ त्ति आभिणिबोहियणाणावरणं, चक्खिन्दियस्सेव पडलाइं। सुयणाणं हि आभिणिबोहियणाणपुव्वगं कहं? आभिणिबोहियणाणेण तमत्थं चक्खुराइकरणसंणि-ज्झेणं अवगम्म तज्जाइयदेसकालविलक्खणमणेगमहसुवलब्भइ त्ति सुयं। श्रोत्रविषयं श्रुतं—

"इंदियमणोणिमित्तं जं विण्णाणं सुयाणुसारेण। णियवत्थु त्ति समत्थं तं भावसुयं मई सेसं॥ १॥"

इंदियमणोणिमित्तं सुयाणुसारेण अणेगभेयं जं विण्णाणमुप्पज्जइ तं सुयणाणं, अहवा संपयकाल-विसयं मइणाणं तिकालविसयं सुयणाणं ति। 卐 धारणे तिकालविसयं सुयणाणं ति 卐 धारणाति-कालविसया इति चेत्? तन्न, अणागए काले अणवबोहाओ, इंदियमणोणिमित्तं सुयक्खराणुसारेण अणेग भेदं जं विण्णाणमुपज्जइ तं सुयनाणं, तं णाणं आवरेइ त्ति सुयणाणावरणीयं। तं वीसतिविहं, तंजहा—

⁸³"पज्जयअक्खरपयसंघाया पडिवत्ति तह य अणुओगो। पाहुडपाहुड पाहुड वत्थू पुव्वा य ससमासा॥१॥

णिमोऽथवा युक्तादचेन्द्रियेण तद्देशस्थितया सन्निकर्षविषयावस्थिताश्चेति द्वन्द्वः, युक्तसन्निकर्षविषयाव-स्थितास्तेषां। तत्र हि चक्षुर्विरहितमिन्द्रियं(य)चतुष्टयमस्पष्टत्वात् स्पृष्टं स्पृष्टबद्धं च विषयमभि-गृह्णाति। चक्षुस्तु स्पष्टत्वाद्वस्तूत्कृष्टतो योजनलक्षस्थितं जघन्यतस्त्वङ्गुलसंख्येयभागस्थापि पश्य-तीति। (८२) 'बहुबहुविधे' त्यादि। बहुविधादिलक्षणमित्थं ज्ञेयम्—

णाणासद्दसमूहं, बहुं पिहं मुणइ भिण्णजाईयं।
बहुविहमणेगभेयं, एक्केक्कं निद्धमहुराइं॥१॥
खिप्पमचिरेण तं चिय, सरूवओ जं अणिस्सियमलिङ्गं।
निच्छियमसंसयं जं, धुवमच्चन्तं न उ कयाइ॥२॥
एत्तो चिय पडिवक्खं, साहेज्जा निस्सिए विसेसो वा।
परधम्मेहि विमिस्सं, निस्सियमविणिस्सियं इयरं॥३॥

[विशेषावश्यकभाष्ये गाथा ३०८, ३०९, ३१०]

(८३ 'पज्जय अक्खर' इत्यादिगाथा। पर्यायश्चाक्षरञ्च पदञ्च संघातश्च पर्यायाक्षरपदसंघाताः। 'पडिवत्ति' त्ति प्रतिपत्तिः विभक्तिलोपश्च प्राकृतत्वात्। तथाऽनुयोगश्चानुयोगद्वारम्। प्राभृतप्राभृतञ्च प्राभृ-तञ्च-[1]वस्तु च पूर्वं च, प्राभृतप्राभृत-प्राभृत-वस्तु-पूर्वाणि। लिङ्गव्यत्ययश्च प्राकृतत्वात्। चकारः समु-च्चये भिन्नक्रमश्च. ततः ससमासानि च पर्यायादीनि। एवञ्च पर्यायः पर्यायसमासो, अक्षर-मक्षरसमासः, पदं पदसमासः इत्येवं योजनया विंशतिधा श्रुतज्ञानं भवतीति गाथाक्षरार्थः। भावार्थः पुनरयम्-लब्ध-

卐 ....卐 स्वस्तिकद्वयान्तर्गतः पाठो जे. प्रतौ नास्ति। 1 आदर्शे 'प्राभृतञ्च' इति द्विरुल्लिखितम्।

पज्जायावरणीयं पज्जायसमासावरणीयं, एवं नेयव्वं, अहवा—

जावन्ति अक्खराइं अक्खरसंजोयजत्तिया लोए। एवइया पगडीओ सुयणाणे होन्ति णायव्वा ॥ १ ॥

लब्ध्यपर्याप्तकसूक्ष्मनिगोदजीवस्य यज्जघन्यं ज्ञानमत्र चैतन्यद्रव्यरूपं तदतिबहुलकर्ममलपटलविलुप्तसकलकेवलोपयोगस्वरूपस्यापि सर्वस्य जन्तोः 'सुट्ठु वि मेहसमुदये होइ पहा चंदसूराणमिति' दृष्टान्तान्नित्यमनावरणमेव, तदावरणे हि स्वल[क्षण]क्षयात्तस्य अजीवत्वमपि स्यात्। ततश्चैतस्मिन्निखिलजीवानन्त्येन विभक्ते यो भागस्तद्भागाधिकं यदपरं विज्ञानमुत्तिष्ठते तत्पर्यायः। ततोऽप्यनन्तरमनन्तभागवृद्धिभाक्पर्यायसमासाभिधानं स्थानमेवमेतद्, तुल्ययोगक्षेममन्यद्। अथ एवमेतानि षट्स्थानकक्रमेणासंख्यलोकप्रमाणानि पर्यायसमासस्थानानि भवन्ति। अत्र चानन्तभागाधिका वृद्धिः पर्यायः। ततश्च यत्र स्थान एकैवासौ प्रथमानन्तभागलक्षणा तत्पर्यायः, येषु च भागद्वयादिकासौ तानि तृतीयादीनि स्थानानि पर्यायसमासः। यदुक्तं—"णाणाविभागपलिच्छेयपक्खेवो पज्जओ नाम, तस्स समासो जेसु णाणठाणेसु अत्थि तेसिं णाणठाणाणं 'पज्जयसमासो' त्ति सन्ना, जत्थ पुणो एक्को चेव पक्खेवो तस्स णाणस्स 'पज्जओ' सन्ना"।

पुनश्चरिमपर्यायसमासज्ञानस्थानादनन्तरमनन्तभागवृद्धमक्षरज्ञानस्थानमुत्पद्यते। एतच्चानन्तलब्ध्यपर्याप्तकसूक्ष्मनिगोदलब्ध्यक्षरप्रमाणं। तत्र सामान्यतस्त्रिविधमक्षरं, लब्धि-निर्वृत्ति-संस्थानाक्षरभेदात्। तत्र सूक्ष्मनिगोदसंवेदनप्रभृतियावदुत्कृष्टश्रुतकेवली तावद्ये श्रुतावरणक्षयोपशमविशेषास्ते लब्ध्यक्षरम्। जीवाजीवप्रयोगतो ध्वनिपरिणामापन्नानि शब्दवर्गणाद्रव्याणि निर्वृत्यक्षरं, व्यक्तमव्यक्तञ्चेति द्विविधमेतत् व्यक्तमकारादिर्व्यक्तमत्। इतरदव्यक्तं। मात्राक्षराऽभेदबुद्धया व्यवस्थापितो म(ब)हिराकारविशेषः संस्थानाक्षरमनेकधा लिपिभेदेन। अत्र तु लब्ध्यक्षरमेवाधिक्रियते न शेषे जडत्वात्। एतच्चेह चतुःषष्टिधा-पञ्चविंशतिर्वर्गाक्षराणि, चत्वार्यन्तस्थाक्षराणि, चत्वार्युष्माक्षराणि, एवं त्रयस्त्रिंशद् व्यञ्जनानि, अ-इ-उ-ऋ-लृकारानां संध्यक्षराणाञ्च ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतभेदेन भिन्नत्वात्, सप्तविंशतिः स्वराः। उक्तं च—

> एकमात्रो भवेद् ह्रस्वो, द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
> त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो, व्यञ्जनञ्चार्धमात्रकम् ॥

चत्वारश्च योगवाहा इति चतुषष्टिरक्षराणि। उक्तं च—

> तेत्तीसवंजणाइं, सत्तावीसं च हुंति सव्वसरा।
> चत्तारि(अ) जोगवहा, एवं चउसट्ठि वण्णाओ ॥

एतेभ्य उत्पद्यमानं ज्ञानमक्षरश्रुतं, द्विप्र[भृ]त्यक्षरसंयोगजमक्षरसमा[स]श्रुतं।संख्याताक्षरं पदम्। त्रिविध चैतदर्थप्रमाणमध्यमपदभेदात्। तत्र 'भ'वदर्थोपलब्धिहेतुपदमेकाक्षरादि, प्रमाणपदमष्टाक्षरं, मध्यपदञ्चाचारादिश्रुतसमस्था[स्ता] धिकृतं बहुश्रुतानुमत्या ज्ञातव्यप्रमाणं। तदुक्तम्—

> तिविहं पयमुद्दिट्ठं, [पमाण]पयमत्थमज्झिमपयं च।
> मज्झिमपएण वुत्ता, पुव्वंगाणं पयविभागा ॥

मध्यमपदमेवेह प्रस्तुतं, इदमेव चैकाक्षरादिवृद्धिक्रमेण प्राप्तापरापरपदसमुदायं पदसमासः। एवं पूर्वपूर्वस्थानसमुदयसम्पाद्यानि संघात-प्रतिपत्ति-अनुयोगद्वार-प्राभृतप्राभृत-प्राभृत-वस्तु-पूर्वाणि सस.

[८४]अवधिर्मर्यादायां तेण नाणं ओहिनाणं तस्स संखा वावारो पोग्गलदव्वेसु, तस्संणिज्झेण [८५]दव्व-खेत्तकालभावाणमुवलद्धि, अहवा [८६]अहोगयपभूयपोग्गलदव्वजाणणासितमज्जायवावारो[1] वा अवही, इंदियमणोणिरवेक्खं अणावरियजीवप्पएसखओवसमणिमित्तं साक्षाज्ज्ञेयग्राहि अवधिज्ञानं, तं आवरेइ त्ति ओहिणाणावरणं, तस्स असंखेज्जलोगागासप्पएसमेत्ताओ पगडीओ, णाणभेयात्ति तत्तिया चेव । मणपज्जवणाणं ति [८७]मणसो पज्जाया मणपज्जाया, कारणे कार्यव्यपदेशः, यथा सालयो भुज्यन्त इति तेसु णाणं मणपज्जवणाणं । तहेव सुद्धा जीवप्पएसा परिछिन्दति, ते पुग्गले णिमित्तं काउण तीयाणागयवट्टमाणे पलिओवमासंखेज्जइभागपच्छापुरेक्खडे भावे जाणइ माणुसं खेत्तंतो वट्टमाणे,

मासानि सप्तश्रुतस्थानान्युत्तरोत्तरक्रमेण ज्ञातव्यानि । परं सम्यग्दर्शनादौ जीवगुणप्ररूपणीये गत्यादि-काया एकस्या मार्गणाया नरकगत्यादिरेकोऽवयवसंघातः सैव परिपूर्णप्रतिपत्तिः, सत्पदप्ररूपणीयादेरनु-योगद्वारस्य गत्यादीनां मार्गणाधिकाराणां पृथक् पृथक् प्रतिपत्तिसंज्ञत्वात् ।

उक्तं च-'अनुयोगदारस्स जे अहिगारा तत्थ एगस्स पडिवत्ति सन्न' त्ति, सत्पदप्ररूपणाद्यनु-योगद्वारम् । प्राभृताधिकारः प्राभृतप्राभृतम् । वस्त्वधिकारः प्राभृतम् । पूर्वाधिकारो वस्तु । सर्व-श्रुत(त्व)ात् पूर्वक्रियमाणत्वेन पूर्वाण्युत्पादादीनीति । विंशतिधा [2]श्रुतज्ञानम् । तदावारकं कर्मा-ऽपि तावद्भेदमेवेति ।

(८४) 'अवधि र्मर्यादाया' मित्यादि । अयमभिप्रायोऽवधिज्ञानमित्यत्रावधिशब्दो मर्यादायां विषयनियमलक्षणायां वर्तते, तामेवाविष्करोति । अवधिज्ञानव्यापारो गोचरग्रहणरूपः पुद्गलद्रव्यस्य परमाण्वादेः सानिध्यं विषयतया संनिहितता पुद्गलद्रव्यसानिध्यं, तेन क्षेत्रकाललक्षणयोर्भावयोरूप-लब्धिर्नपुनस्तदनपेक्षत्वेन स्वप्रधानतया पुद्गलवत् । *

(८५) क्वचित् 'दव्वखेत्तकालभावाणमुवलध्धी' ति दृश्यते । तत्र पुद्गलद्रव्यसानिध्येना-लम्बनीभूतमूर्त्तद्रव्याश्रयेण द्रव्याणां तेषामेव क्षेत्रकालयोस्तद्विशेषणतया वृत्तयोर्भावानां तद्वर्तिपर्याया-णामुपलब्धिरिति मर्यादा । अथवेति विकल्पोपक्षेपार्थः ।

(८६) अधोगतप्रभूतपुद्गलद्रव्याणां 'जाणणा' त्ति, ज्ञानं । सैव मर्यादा तया व्यापारः प्रवृत्तिर-धोगतप्रभूतपुद्गलद्रव्यज्ञानमर्यादाव्यापारः, स चावधिरिति । प्रायेण ह्यवधिज्ञानी स्वक्षेत्रादधःक्षेत्र-स्थं विषयवस्तु वैमानिकवद् बहुपश्यतीति, ततश्चावधिना ज्ञानमवधिज्ञानमिति विग्रहः । 'इंद्रियमणो णिरवेक्ख' मित्यादि तु स्वरूपनिर्देश ।

(८७) 'मणसो पज्जाया' इत्यादि । मनसो मनोनिमित्तद्रव्यस्य पर्याया बाह्यवस्त्वालोचना-द्गुणाः प्रकाराः मनःपर्यायाः । आह कथं मनोहेतुरपि द्रव्यं मन इत्याह-कारणे कार्यव्यपदेशः । यथा हि शालयो भुज्यन्ते, यथा शालिफलमप्योदनो भुज्यमानः 'शालिष्ट एवाटतो' व्यपदिष्टः, शालयो भोजनमित्यर्थः । तथा मनोध्वनिरपि मनोहेतुषु द्रव्येष्विति । यतो मनःपर्यायज्ञानी द्रव्यमन एव मनुते । यथोक्तं--

दव्वमणो पज्जाए, जाणइ पासइ य तग्गएऽणंते ।
तेणावभासिए पुण, जाणइ बज्झेऽणुमाणेणं ।।

[विशेषावश्यभाष्ये, गाथा १८४]

1 अहोगयपभूयदव्वजाणणपोग्गलमज्भाय वावारो' इति जे. प्रतौ । 2 'विंशति विंशतिधा' इति प्रादर्शे ।

* टिप्पनानुसारिचूर्णिपाठोऽत्रैवं प्रत्यान्तरे संभाव्यते, 'पोग्गलदव्वसंनिज्भेण खेत्तकालाणमुवलद्धि'इति ।

ण परओ । तं दुविहं, उज्जुमई, विउलमई य, उज्जुमई ते पोग्गले अवलम्बिया "[88]रिजुरिव मालाबद्धे अत्थे जाणइ, विउलमई एक्काओ चेव बहवो पज्जाया जाणइ, तं आवरेइ त्ति मणपज्जवणाणावरणीयं । तं दुविहं, उज्जुमइमणपज्जवणाणावरणीयं, विउलमइमणपज्जवणाणावरणीयं चेति । केवलणाणं ति केवलं सुद्धं जीवस्स णिस्सेसावरणक्खए, अहवा सव्वदव्वपज्जायसकलावबोधनेन वा केवलं सकलं अणंत-खाइगं केवलणाणं तं आवरेइ त्ति केवलणाणावरणीयं, तं च सव्वघाइ सेसाणि चत्तारि वि देसघाईणि । सामन्नं णाणमिति–जहा मुट्ठी पंचंगुलीसु, रुक्खो वा खन्धसाहाईसु, मोदगो वा घयगुलस-मिदादिसु । णाणावरणं सभेयं भणियं ॥

इयाणिं दंसणावरणीयं दर्शनमाव्रियतेऽनेनेति दर्शनावरणीयं, अक्षिपटलवत् । दंसणावरणीयस्स णव पयडीओ, तंजहा–णिद्दा, णिद्दाणिद्दा, पयला, पयलापयला, थीणगिद्धी पंचमा, चक्खुदंसणावर-णीयं अचक्खुदंसणावरणीयं, ओहिदंसणावरणीयं, केवलदंसणावरणीयमिति । तत्थ मूलिल्लाणि पंच आवरणाणि लद्धाणं दंसणलद्धीणं उवघाए वट्टन्ति, उवरिल्ला चत्तारिवि दंसणलद्धिमेव घायन्ति ।

"सुहपडिबोहा णिद्दा णिद्दाणिद्दा य दुक्खपडिबोहा । पयला होइठियस्स त्ति पयलापयला य चंकमओ ॥१॥
थिणगिद्धी उदयाओ महाबलो केसवद्धवलसरिसो । भवइ य उक्कोसेणं दिणचिन्तियसाहगो पायं ॥२॥

चक्खुणा दंसणं चक्खुदंसणं, चक्खुरिंदिएण करणभूएण जीवो चक्खुदंसणावरणीयकम्मखओवस-मावेक्खो चक्खुदंसणपरिणओ भवइ ।

जं सामन्नग्गहणं भावाणं णेव कट्टु आगारं । अविसेसिऊण अत्थे दंसणमिइ वुच्चए समए ॥१॥"

चक्खिदियसामन्नत्थावबोहो चक्खुदंसणं । सेसिंदियमणो सामन्नपयत्थावबोहो अचक्खुदंसणं । ओहिणाणेण सामन्नपयत्थग्गहणं ओहिदंसणं । केवलणाणेण सामन्नपयत्थग्गहणं केवलदंसणं । चक्खिन्दियलद्धिघाइ चक्खिन्दियावरणं, जेण चउरिन्दियाइसु तं ण वट्टति । एवं सेसिन्दिओवघाइ अचक्खुदंसणावरणीयं, "[89]मणोत्ति जेसिं न सम्भवति तेसिं तहेव, जेसिं चउरिन्दियाइणं णत्थि तेसिंपि विज्जमाणिन्दियसंभ(सम्भा)वेण भावियव्वं ॥

अस्यार्थः–मनःपर्यायज्ञानी द्रव्यमनःपर्यायान् जानाति साक्षात्करोति पश्यति । पुनः सामान्यतो वाऽवगच्छति कानित्याह–तद्गतांश्चिन्तनीयतया द्रव्यमनःपर्यायप्रतिबद्धाननन्तान् बाह्यान् घटादीन् पर्यालोच्यानित्यर्थः । कथमसौ तान् पश्यतीत्याह–तेन द्रव्यमनसोऽवभासितांश्चिन्तितान् जानीते पश्यति । बाह्यान् पर्यालोच्याननुमानात् । इत्थं द्रव्यमनःपरिणतेरन्यथाऽनुपपत्तेस्तममीदृशेन पर्या-लोच्येन भाव्यमित्येवं लक्षणाविति ।

(८८) 'रिजुरिवे' त्यव्युत्पन्न इव पुरुषो मालाबद्धान् सामान्यमात्राश्रितान् जानीत इति ।

(८९) 'मणोत्ति' त्यादि । मनोऽपि येषां लब्धसर्वेन्द्रियलब्धीनां न सम्भवति । एकान्ताभावपरि-हारेण तथैव चक्षुरावरणवत्, अचक्षुरावरणं भणितव्यमित्युत्तरेण सम्बन्धः यथाहि–चक्षुर्लब्धिघाति चक्षुरावरणं, तदुदयाच्च जीवश्चतुरिन्द्रियेषु न वर्तते । तथा मनोलब्धिप्रतिबन्ध्यचक्षुरावरणं, तदुदयाच्च

1 'रज्जुरिव' इति मु० ।

इयाणि वेयणीयं ति [८९]दव्वाइकम्मोदयमभिसमेच्च अणेगभेयभिन्नं सुहदुक्खं अप्पा वेएइ अणेण त्ति वेयणीयं। तं दुविहं, सायवेयणीयं, असायवेयणीयं च। सारीरमाणसं जस्सोदया सुहं वेएइ तं सातं, तव्विवरीयमसायं।

इयाणि मोहणिज्ज त्ति [९१]कारणकम्मोदयावेक्खो जीवो मुज्झइ अणेणेति मोहो। तं दुविहं, दंसणमोहणिज्जं, चरित्तमोहणिज्जं च। दंसणमोहणिज्जं बन्धन्तो एगविहं बन्धइ मिच्छत्तं चेव। सन्तकम्मं पडुच्च तिविहं तंजहा–मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं सम्मत्तमिति। तिण्हंवि अत्थो पुव्वुत्तो। चरित्तमोहणिज्जं दुविहं, कसायवेयणिज्जं, णोकसायवेयणिज्जं च। कसायवेयणिज्जं सोलसविहं, तंजहा-अणन्ताणुबन्धिकोहमाणमायालोभा, एवं अपच्चक्खाणावरणा, एवं पच्चक्खाणावरणावि, कोहसंजलणा, माणसंजलणा, मायासंजलणा, लोभसंजलणा य। णोकसायवेयणिज्जं णवविहं, तंजहा–पुरिसवेओ, इत्थिवेओ, णपुंसगवेओ, हासं, रई, अरई, सोगो, भयं, दुगंच्छा इति। जस्स कम्मस्स उदएण मोहं गच्छइ, यथा–[९२]मद्यपीतहृत्पूरकभक्षितपित्तोदयव्याकुलीकृतज्ञानक्रियापुरुषवत्। दंसणतिगस्स अत्थो पुव्वुत्तो। मिच्छत्तोदिन्नपुरिसस्स मतिश्रुतावधयश्च विपर्ययं गच्छन्ति,

---

सकलेन्द्रियलब्धावपि न संज्ञिषु वर्तत इति * ······ *। एकेन्द्रियादीनां तु सत्यपि चक्षुदर्शनावरणाद्युदये चक्षुदर्शनादिलब्धेरप्यवसराभावान्न तेषु तथावरणोदयेन चक्षुदर्शनादिव्याघातभावना क्रियत इति। क्वचिन्नसम्भव इति दृश्यते, तच्च स्पष्टमेव। येदां चतुरिन्द्रियादीनां नास्त्यचक्षुरावरणमुदये संजातस्पर्शनादीन्द्रियक्षयोपशमत्वात्तेषामपि विद्यमानेन्द्रियसद्भावेन भणितव्यं, नास्त्यचक्षुरावरणमिति। नत्वविशेषेण कस्यापि कियदिन्द्रियावरणादिति।

(९०) 'दव्वाइ' त्यादि। द्रव्यमादिर्येषां ते द्रव्यादयः, द्रव्य-क्षेत्र काल-भावाः तत्र द्रव्यं शीतलजलानिलमलयजादिः। क्षेत्रं चन्दनवन-नाकलोकादिः। काल एकान्तसुषा(सुषमा)दि.। भावः क्षायोपशमिकादि. कर्मण. प्रकृतत्वाद्वेदनीयस्यैवोदयो विपाकः कर्मोदयस्ततो द्रव्यादिभ्यो द्रव्यादिकर्मोदयस्तमभिसमेत्य आश्रित्य, इदमुक्तं भवति- येन करणभूतेन द्रव्यादिनिमित्तं तस्योदयमेव न तु बन्धसंक्रमाद्यपेक्ष्यमाणोऽयमात्मा सुखदुखं वेदयति तद् वेदनीयं कर्म। कृत्यल्युटोऽन्यत्रापीतिवचनात् करणेऽनीयः प्रत्ययः। अत्र यद् दुःखप्रतिकारहेतुद्रव्यसम्पादकं, दुःखोत्पादककर्मद्रव्यशक्तिविनाशकं च कर्म सद्वेद्यम्। जीवस्यसुखस्वभावस्य दुखोत्पादकं, दुःखप्रशमहेतुद्रव्यापसारकं च कर्माऽसद्वेद्यमिति।

(९१) 'कारणे' त्यादि। अनेनेति यत्कारणतया कर्म प्रतिपादित तस्यैव कारणकर्मण उदयमनुभवनं न तु सत्वाद्यपेक्षते, कारणकर्मोदयापेक्ष इति।

(९२) 'मद्यपीते' त्यादि। आहिताग्न्यादिपाठान्निष्ठान्तस्य परनिपातात् मद्यं पीतं येन स मद्यपीत, हृत्पूरको भक्षितो येन स हृत्पूरकभक्षित., पित्तोदयेन व्याकुलीकृतः। मद्यपीतश्च हृत्पूरकभक्षितश्च पित्तोदयव्याकुलीकृतश्चे ति विशेषणसमुच्चयसमासात् मद्यपीतहृत्पूरकभक्षितपित्तोदयव्याकुलीकृतास्ते च ते पुरुषाश्च तेषां ज्ञानं चावबोध. क्रिया गमनागमनादिका ज्ञानक्रिये ते इव। मद्यपीतहृत्पूरभक्षित-

---

*...... * आदर्शे तु वर्तत इत्यनन्तरं 'तथा मनोलब्धिप्रतिबन्ध्यचक्षुरावरणं, तद्वशाच्च जीवश्चतुरिन्द्रियेषु न वर्तते' इदि पाठो दृश्यते, किन्तु तस्यात्राऽघटमानत्वान्न गृहीत।

यथा-विषमिश्रमन्नमौषधं वा । चारित्रं क्रियाप्रवृत्तिलक्षणं तस्य मोहं करोतीति चारित्रमोहनीयं । अणन्ताणि भवाणि अणुबन्धन्ति जीवस्येति अणन्ताणुबन्धिणो, तेसिं उदएणं सम्मत्तंपि ण पडिवज्जइ, किं पुण चारित्तं । पडिवन्नोवि तेसिं उदएण दंसणं चारित्तं च चयइ, मिच्छत्तं चेव गच्छइ । अप्पं पच्चक्खाणं देसविरई, तमप्पमवि पच्चक्खाणं आवरयंति, किं पुण सव्वं ति, तेण अपच्चक्खाणावरणा वुच्चन्ति । तेसिं उदए वट्टमाणो देसविरइं पि ण पडिवज्जइ त्ति, पडिवन्नोवि परिवडइ । पच्चक्खाणं सव्वविरई, तमावरन्ति तेण पच्चक्खाणावरणा वुच्चन्ति, तेसिं उदयाओ सव्वविरतिं ण पडिवज्जइ, पडिवन्नो वि परिवडइ । सव्वपावविरयमवि जइं संज्वलयन्ति त्ति संजलणा वुच्चन्ति, संजलणाणं उदयाओ अहक्खायचारित्तं ण लभति अकषायमित्यर्थः, सुविशुद्धं स्थानं वा न प्राप्नोति, प्राप्तो वा तदुदयात् मलीमसीभवति । णोकसाया कषायैः सह वर्त्तन्ते, नहि तेषां पृथक्सामर्थ्यमस्ति जे कसायोदयं दोषा तेऽपि तद्योगात् तद्दोषा एव, अणन्ताणुबन्धिसहचरिता ते अणन्ताणुबन्धिसहावं पडिवज्जंति, तग्गुणा भवन्ति त्ति भणियं होइ । एवं सेसकसाएहिं वि सह वक्तव्यं पूर्ववत्, संसर्गजाः णोकसाया तदनुवर्त्तिनः तम्हा एएवि चरित्तं मोहेत्ता जहा कसाया तहा चरित्तघाइणो भवन्ति । इत्थियम्मि अभिलासो पुरिसवेदोदएण जहा सिंभोदए अम्बाइसु । इत्थिवेओदएण पुरिसाभिलासो पित्तोदए मधुराभिलाषवत् । नपुंसगवेओदयाओ इत्थिपुरिसदुगमहिलसति धातुद्वयोदीर्णे मज्जिकादिद्रव्याभिलाषिपुरुषवत् । हासोदयाओ सणिमित्तमणिमित्तं वा हसइ रंगगतनटवत् । सोगोदयाओ परिदेवनहननादिं करोति । सो मानसो विकारः । रतिः प्रीतिः, बाह्याभ्यन्तरेषु वस्तुषु विषयेन्द्रियादिषु च । एतेष्वेवाप्रीतिररतिः । भयं त्रासो उद्वेगः । दुगंछा शुभाशुभेषु द्रव्येषु जुगुप्सा विचिकित्सा व्यलीकता । एवमेते सोलस णव य पणवीसं चारित्तमोहणिज्जं । मिच्छत्तेण सह छव्वीसं । सम्मत्तमीसेहिं समं अट्ठावीसं । सम्मत्तसम्मामिच्छाइं मिच्छत्तपगइ चि काउं दंसणमोहणिज्जं भण्णइ ॥

इयाणिं आउगं ति [93]आनीयन्ते शेषप्रकृतिसप्तकविकल्पाः [94]तस्मिन्नुपभोगार्थे जीवस्य, कांस्यपात्र्याधारे [95]शाल्योदनादिव्यञ्जनविकल्पानेकभोज्यवत्, आनीयते वाऽनेनेति तद्भ-

---

पित्तोदयव्याकुलीकृतपुरुषज्ञानक्रियावत् । छान्दसत्वात् पुरुषशब्दस्य परनिपातः । अथवा मद्यपीतादिपुरुषाणामिवाऽसमञ्जसे ये ज्ञानक्रिये, तत्प्रधान पुरुषवदिति व्याख्येयम् ।

(९३) 'आनीयन्ते' इत्यादि । आनीयन्ते स्वोदयनिमित्तैर्द्रव्यादिभिरिति शेषः ।

(९४) 'तस्मिन्नि' त्यायुषि सति ।

(९५) 'शाल्योदनः' शालिकूरं, आदिशब्दात् सूपादिग्रहः । व्यञ्जनविकल्पाः शाकादिशालनकप्रकाराः, शाल्योदनादयश्च व्यञ्जनविकल्पाश्च शाल्योदनव्यञ्जनविकल्पाः । त एवानेकं भोज्यं भोजनं शाल्योदनादिव्यञ्जनविकल्पानेकभोज्यं, तदिवेति ।

वान्तर्भाविप्रकृतिगुणसमुदयः तदेकत्वेन रज्ज्ववबद्धेक्षुयष्टिभारकवत्, शरीरं वा तेनावबद्धमास्ते [९६]यावदायुष्कं णिगलबद्धपुरुषवत्, तेण आउगं भण्णइ त्ति । तं चउव्विहं, तंजहा—णिरयाउगं, तिरियमणुयदेवाउगमिति । णेरइगाणमाउगं णिरयाउगं एवं सर्वत्र ।

इयाणिं णामं ति णामयति परिणामयति णिरयाइभावेणेति णामं, [९७]अहवा णामेइ जं जीवप्रदेशान्तर्भाविपुद्गलद्रव्यविपाकसामर्थ्यात् संज्ञां लभते [९७]तन्नाम कर्म, पदेन वाक्येन वा समाहूयते तत्सम्बन्धात् । नीलशुक्लादिगुणोपेतद्रव्यसमादिग्ध [९८]चित्रपटादिद्रव्यव्यपदेशादिशब्दप्रवृत्तिवत् । णामकम्मस्स [९९]बायालीसं पिंडपगईओ, तंजहा—गइणामं जाइणामं सरीरनामं सरीरसंघायनामं सरीरबंधणनामं सरीरसंठाणनामं, सरीरअंगोवंग-सरीरसंघयणवण्णगंधरसफासआणुपुव्विअगुरुलहुगउवघायपराघायउस्सासआयावुज्जोअविहायगइतसथावरबायरसुहुमपज्जत्तगअपज्जत्तगपत्तेयसाहारणसरीरथिरअथिरसुभअसुभसुभगदुभगसुस्सरदुस्सरआएज्जअणाएज्जजसकित्तिअजसकित्तिणिम्माणतित्थगर—णामं चेति । पिंडपगइ त्ति मूलभेओ । गम्मतीति गति । जति गम्मइ त्ति गई तो जीवेण सव्वे पज्जवा गम्मंते तम्हा सव्वपज्जवाणं गइप्पसंगो ? ण, विसेसियत्ताओ गइपज्जवेण अप्पा तं णामकम्मोदयाभिमुहो परिणमइ गच्छतीति वा गती ।

"णिरयगइतिरियअसुभं विसेसओ मणुयदेवसुभउ त्ति । जीवो उ चाउरन्तं गच्छइ तम्हा गई तेण ॥१॥"

(९६) यावदायुष्कमिति, आयुष्कं जीवितपरिणामः सर्वत्रनिरुक्तानुसरणादायुरिति भवति ।

(९७) *अहवा नामे* त्यादि । नामेति कोऽर्थः ? उच्यते यत्कर्म जीवप्रदेशानामात्मावयवानां तत्स्थितयाऽन्तर्मध्ये भवितुं शीलमस्य जीवप्रदेशान्तर्भावी । तच्च तत् स्वप्रदेशरूपं पुद्गलद्रव्यं च तस्य विपाकसामर्थ्यं स्वकार्यकर्तृसामर्थ्यं तस्मात् संज्ञां नाम लभते । नामनिमित्तीभवतीत्यर्थः । तत्कर्म 'नाम' क (का) रणे कार्योपचारात् । यत. पदेन मनुष्यादिना वाक्येन शोभनः स्वरोऽस्येत्येवमादिना पदसमुदयजेन समाहूयते संशब्दायते, तत् सम्बन्धात् प्राप्तविपाकनामकर्मसम्बन्धात् । इदमुक्तं भवति—नामकर्मोदयाज्जीवस्याने(क)धा द्रव्यगुणपरिणामाभिधायिनी व्यपदेशप्रवृत्तिर्भवति । कथमित्याह नीलशुक्लादिगुणोपेतद्रव्यसमादिग्ध चित्रपटादिद्रव्यव्यपदेशादिशब्दप्रवृत्तिवत् । नीलशुक्लादिगुणोपेतद्रव्येणगुलिकाशङ्खचूर्णादिना समादिग्धं कृतयथास्थानोपलेपं नीलशुक्लादिगुणोपेतद्रव्यसमादिग्धं वस्त्विति गम्यते ।

(९८) *चित्रपटादेः*' द्रव्यस्य व्यपदेशश्चित्रपटोऽयमित्यादिरूपः, चित्रपटादिद्रव्यव्यपदेशः स आदिर्येषां ते चित्रपटादिव्यपदेशादयस्ते च ते शब्दाश्चते । आदिशब्दात् तद्गतप्रतिनियतप्रतिबिम्बव्यपदेशग्रहो यथा सुरनाथः पाथोनाथोऽयमित्यादि । ततो नीलशुक्लादिगुणोपेतद्रव्यसमादिग्धस्य चित्रपटादिद्रव्यव्यपदेशादिशब्दा इति षष्ठिसमासः । तेषां प्रवृत्तिस्तद्वत् । यथा पटादिवस्तु विविधवर्णकद्रव्यव्यतिकरात्प्रमाणाऽव्यपदेशभाक्, तथाऽऽत्मापि समनुष्यगत्यादिविचित्रकर्मोदयादनेकधा नरनारकादितया व्यपदिश्यत इति भावः ।

(९९ '*बायालीसं पिंड [प] गईओ*' त्ति । पिंडो बहुप्रकृति संदोहः, तद्रूपाः प्रकृतयः पिण्डप्रकृतयो गत्यादिवत् । न चैवं त्रसस्थावरादिप्रकृतीनामेकैकत्वेनाऽपिण्डप्रकृतित्वमाशङ्कनीयं, त्रसत्वादिसामान्याऽभेदेऽपि पतङ्ग-भृङ्ग-मातङ्ग-तुरङ्गत्वादीनां तदन्तर्भेदनिबन्धनत्वेन तासामपि पिण्डत्वात् । अन्यथा आसामेकरूपत्वे तन्निमित्तस्य त्रसत्वादेर्भेदो न स्यात् ।

सा चउव्विहा, णिरयगई तिरियगई मणुयगई देवगई । णिरयाणं गई णिरयगई. नारकगई त्ति तत्संज्ञां लभते, तत्सम्बन्धात् । एवं सर्वत्र ।। जातिनामं ति–सव्वेसिं तज्जाइयाणं जं सामन्नं ति सा जाइ वुच्चइ, एगिन्दियत्तं सव्वेगिन्दियाणं सामन्नं जाई । एवं सर्वत्र । अत्राह–फासिन्दियावरणस्स कम्मस्स खओवसमेणं एगिंदिओ भवइ, एत्थ णामं उदईओ भावो त्ति तम्हा एगिंदियत्तं न घडइ ? उच्यते, सच्चं, फासिन्दियावरणस्स खओवसमेणं एगिन्दियलद्धी, जइ तस्स जाइणामं ण होज्जा तो [100]एगिन्दिओ त्ति संज्ञां न लभते, तम्हा संज्ञाकरणं यत्कर्म्म तन्नामोच्यते । तस्स जाइणामस्स कम्मस्स पञ्च पगईओ तं जहा–एगिन्दिय-बेइन्दिय-तेइन्दिय-चउरिन्दिय-पञ्चिन्दियजाइणामं ति ।। सरीरं ति सीर्यत इति सरीरं तस्स उत्तरपगईओ पञ्च, तंजहा–ओरालियवेउव्वियआहारगतेजइगकम्मइगसरीरणामं ति । उदारं बृहदसारं तं णिप्फन्नमौदारिकं, असारथूलदव्ववग्गणाकारणसमारद्धं, ओरालियं तप्पाओग्गपोग्गलग्गहणकारणं जं कम्मं तं ओरालियसरीरणामं, पोग्गलविवागि पोग्गलग्गहणकारणमित्यर्थः । एवं सर्वत्र । विविधगुणरिद्धिसंपउत्तं वेउव्वियं, यैस्तदारब्धं ते पोग्गला विविहगुणरिद्धिशक्तिप्रचितधर्म्माणः विकरणारब्धं वैकुर्विकमिति । [1]शुभतरशुक्लविशुद्धद्रव्यैः शरीरं प्रयोजनाया-ह्रियते इति आहारकं । तेज इत्यग्निः, तेजोगुणापेतद्रव्यसमारब्धं तेजसद्गुणगुणं तमेव जया उत्तरगुणेहिं लद्धी समुप्पज्जइ तदा रोसाविद्धो णिसिरइ, जहा गोसालो, जस्स ण संभवइ लद्धी तस्स सततमुदराई (मोदनाई) आहारपाचकं । कम्मइगं सव्वकम्माधारभूतं जहा कुण्डं बदराईणं, सर्वकर्मप्रसवसमर्थं वा यथा बीजं अंकुरादीनां । एसा उत्तरप्रकृतिः सरीरणामकम्मस्स पृथगेव कर्म्माष्टकसमुदायभूतादिति । पोग्गलरचनाविशेषः संघातः, तेसिं चेव गहियाणं पोग्गलाणं जस्स कम्मस्स उदयाओ सरीररचना भवइ तं संघायणामं । पोग्गलेसु विवागो जस्स सो य पञ्चविहो, तंजहा–ओरालियसरीरसंघायणामं वेउव्वियआहारगतेजसकम्मइगसरीरसंघायणामं, लेप्यकरचनादिविशेषरूपवत् सरीरपञ्चकस्य संघातः । बन्धणं ति–गहियघेप्पमाणाणं पोग्गलाणं

---

(१००) 'तो एगिंदिओ' इत्यादि । अत्र हेतुर्व्यपदेशस्य बाह्येन्द्रियाधीनत्वात्, बाह्येन्द्रियस्य च प्रतिनियतजातिहेतुकत्वात् । तथाहि-बकुलादेः कथञ्चित् सकलेन्द्रियव्यापारेऽपि पञ्चेन्द्रियजातिवैकल्येन बाह्येन्द्रियाभावान्न पञ्चेन्द्रियव्यपदेशः ।

उक्तं च—

पंचिंदिउव्व बउलो, नरोव्व सव्वविसओवलंभाओ ।
तहवि न भण्णइ पंचिंदिउत्ति बज्झिंदियाभावा ।।

[विशेषावश्यकभाष्ये, गा. ३००१]

केवलिनश्च भावेन्द्रियाभावेऽपि 'अनीन्द्रियाः केवलिनः' इतिवचनात् पञ्चेन्द्रियजात्युदयेन-बाह्येन्द्रियभावात् पञ्चेन्द्रियव्यपदेशः । तस्मात्सुष्ठूक्तं संज्ञाकरणं जातिकर्म इति ।

---

1 'शुभतरशुक्ल विशुद्ध द्रव्यैः' इति जे. ।

असमरीरपोग्गलेहिं वा समं बन्धो जस्स कम्मस्स उदएणं भवइ तं बन्धणणामं । सो पञ्चविहो तंजहा–ओरालियवेउव्वियआहारकतेजसकम्मइगशरीरबन्धणणामं ति, विद्यते तत्कर्म यन्निमित्ताद् द्वयादिसंयोगात्तिराविर्भवति यथा काष्ठद्वयभेदैकत्वकरणाय जतुकारणं । एवं जत्तियाणि जत्थ सरीराणि सम्भवन्ति तेसिं बन्धणं भासियव्वं । अबद्धं हि ण संघायमावज्जइ, वालुकापुरुषशरीरवत्, विश्लिष्टतृणादिवद्वा । अहवा बन्धणणामं पञ्चरसविहं तंजहा–ओरालियओरालियसरीरबंधणणामं, ओरालियतेजइकओरालियकम्मइगओरालियतेयकम्मइगसरीरबन्धणणामं । एवं वेउव्विसरीराणं ४ । एवं आहारगसरीराणं ४ । तेजइगतेजइगं तेजइगकम्मइगं कम्मइगकम्मइगं चेति । जेण पुव्वगहियाणं वट्टमाणसमयगहियाणं च सह बन्धणं कज्जइ तं ओरालियओरालियसरीरबन्धणणामं । एवं सर्वत्र ।। संठाणं ति–संस्थानमाकृतिविशेषः, तेसु चेव गहियसंघाइयपविट्ठेसु पोग्गलेसु संस्थानविशेषो यस्य कर्मणः उदयात् भवइ तं संठाणणामं । तं छव्विहं, तंजहा–समचउरंससंठाणणामं णग्गोहसंठाणं साइसंठाणं खुज्जसंठाणं वामणसंठाणं हुण्डसंठाणमिति । मानोन्मानप्रमाणान्यन्यूनातिरिक्तान्यङ्गोपाङ्गानि यस्मिञ्छरीरसंस्थाने तत्संस्थानं समचतुरस्रं, स्वाङ्गुलाष्टशतोच्छ्रयाङ्गोपाङ्गनिर्म्मितलेप्यकवत् । णाभीतो उवरि सव्वावयवा समचउरंसलक्खणा अविसंवादिणो, हेट्ठाओ तदनुरूपं ण भवति तं णग्गोहं । णाभिहेट्ठाओ सव्वायवा समचउरंसलक्खणा अविसंवादिणो उवरि तदणुरूवं ण भवइ [101] तं सादि । गीवाओ उवरि हत्था पाया य आइलक्खणजुत्ता संखित्तविकृतमज्झकोष्ठं कुज्जं । लक्षणयुक्तं कोष्ठं ग्रीवाद्युपरि हस्तपादयोश्चादिन्यूनलक्षणं वामनं । कुब्जमेतद्विपरीतं । हस्तपादाद्यवयवा बहुप्रायाः प्रमाणविसंवादिनो तं हुण्डमिति ।

"तुल्लं वित्थरबहुलं उस्सेहबहुं च मडहकोट्ठं च । हेट्ठिल्लकायमडहं सव्वत्थासंठियं हुडं ॥१॥"

अंगोवंगं ति–अंगाणि उवंगाणि य अंगोवंगाणि जस्स कम्मस्स उदएणं णिव्वत्तन्ते तं अंगोवंगणामं ।

"दो हत्था दो पाया पिट्ठी पेट्टं उरं च सीसं च । एए अट्ठङ्गा खलु अङ्गोवङ्गाणि सेसाणि ॥१।"

यत्कर्म्मोदयादेवंविधा [1]निर्वृत्तिरिति । तं तिविहं उरालियशरीरअङ्गोवङ्गं वेउव्वियशरीरअङ्गोवङ्गं आहारगसरीरअङ्गोवङ्गमिति । एगिंन्दियवज्जेसु सेसेसु सम्भवन्ति ।। संघयणं ति–अत्थिबन्धणं, तं छव्विहं, तंजहा–वज्जरिसहनारायसंघयणं वज्जनाराय-नाराय-अद्धनाराय-कीलिया-असंपत्तच्छेवट्टसंघयणमिति । मर्कटबन्धसंस्थानीयः उभयपार्श्वयोरस्थिबन्धो यस्य तं णारायं, ऋषभं पट्टः, वज्रं कीलिका, वज्रं च ऋषभं च नाराचं च यस्यास्ति तं वज्रर्षभनाराचसंहननं, मर्कटपट्टकीलिकारचनायुक्तं प्रथमं । मर्कटकीलिकायुक्तं द्वितीयं । मर्कटसंयुक्तं तृतीयं । मर्कटकैकदेशबन्धेन

(१०१) 'तं सादि' त्ति । तत्संस्थानं स्वातिः शाल्मलिर्वाल्मिक इत्यपरे, तदाकारत्वात् स्वातिः ।

1 एवंविधानि निर्वर्त्यन्ते' इति जे. ।

द्वितीयपार्श्वे कीलिकासंबद्धं चतुर्थं । अङ्गुल(अस्थि)द्वयसंयुक्तस्य मध्यकीलिका एव दत्ता एतं कीलिकासंहननं । असंपत्तसेवट्टं अस्थीनि चर्माणि निकाचितानि केवलमेवेति । एवंविधाऽस्थि-संघातकारिसंहनननाम औदारिकशरीरविषयमेव संहन्यमानानां कपाटादीनां लोहादिपट्टरचना-विशेषोपकारिद्रव्यवत् संहननं । वण्णणामं ओरालियाइसु सरीरेसु जस्सोदयाओ कालादिपञ्चविहवण्ण-णिप्फत्ती भवइ, जहा चित्तकम्माइसु तव्विधवण्णा समारद्धेसु कारणाणुरूववण्णणिप्फत्तिवत् । तं पञ्चविहं, तंजहा–कण्ह-नील लोहिय हालिद्द-सुक्किल्लणामं चेति । गन्धो त्ति तेसु चेव शरीरेसु सुगन्धया दुगन्धया वा जस्स कम्मस्स उदएणं भवइ तं गन्धणामं । तं दुविधं, सुगन्धिणामं दुगन्धिणामं च । रसो त्ति तेसु चेव सरीरपोग्गलेसु तित्ताइरसविसेसो जस्स कम्मस्स उदएणं भवइ तं रसणामं । तं पञ्चविहं तंजहा-तित्तरसणामं, कडुकणामं, कसायणामं, अम्बिलणामं, महुरणामं चेति ।। फासो त्ति तेसु चेव पोग्गलेसु कक्खडमउकाइफासो जस्स कम्मस्स उदएणं पाउब्भवइ तं फासणामं । तं अट्ठविहं, तंजहा कक्खडफासणामं-मउग गुरुअ-लहुग-णिद्ध-रुक्ख-सीय उसिणनामं चेति । एयाइं सरीर-संघायबन्धणाईणि जाव फासन्ताणि गहिएहु ओरालियाइसु पोग्गलेसु विपागं देन्ति । आणुपुव्वि त्ति-आणुपुव्वी णाम परिवाडी, कासिं ? सेढीणं, तासिं अणुसेढिगमणं जस्स कम्मस्स उदयाओ भवइ ते आणुपुव्विणामं अंतरगइए वट्टमाणस्स जा उग्गहे वट्टइ, यथा–जलचरस्स गइपरिणयस्स जलं सा आणुपुव्वी । गई दुविहा, उज्जुगई वक्कगती य, जत्थ उज्जुगती तत्थ पुव्वाउगेणेव गच्छइ, गन्तूण उववत्तिठाणे पुरेक्खडमाउगं गेण्हइ । वक्कगई कोप्पर-लांगल-गोमुत्तिलक्खणा, एकद्वित्रिसमइका । ताए पुण गच्छन्तो जत्थ वङ्कमारभते तत्थ पुरेक्खडमाउगं गेण्हिऊण तं वेएइ, तत्थ य तस्सामाणु-पुव्वीए उदओ भवइ । उज्जूआते समओ, तम्मि ण य आणुपुव्वीए, ण य पुरेक्खडाउगुदउत्ति । अगुरुलहु त्ति–णोगुरु णोलहु णोगुरुलहु अगुरुलहु । जस्सोदयाओ अगुरुलहुत्तं सव्वेसिं जीवाणं अप्पप्पणो सरीरं ण गुरुगं ण लहुगं अगुरुलहुगं । अगुरुलहुगं पञ्चविहंपि सरीरं णिच्छयाओ गुरुगं लहुगं गुरुलघु वा ण भवइ, किंतु अण्णोण्णावेक्खाए तिण्णिवि सम्भवन्ति । उवघायं ति–जस्सोदएण परेहिं अणेगहा धाइज्जति पराघाओ–जस्सोदयाओ जीवो अणेगहा परं हणइ । उस्सासो जस्सोदयाओ ऊसास-णीसासया भवति । आयवणामं तपणं तावो मर्यादया तप आतपः तं जस्सोदयाओ भवइ तं आयव-णामं । आइच्चमण्डलपुढविकाइए चेव विपाको, ण अणत्थ । उज्जोयणामं उद्योतनं उद्योतः प्रकाशः अणुसिणो पकासो जस्सोदयाओ भवइ तं उज्जोयणामं; खज्जोगाईणं, ण पुण अग्गिस्स[1] फासो उसिण-णामाओ रूवं लोहियणामं ति । विहायगई-चङ्कमणं गमणं विहाओगई एगट्ठा, णेरइगतिरियमणुय-देवाणं जस्सोदएणं गमणं भवइ तं विहायगइणामं । तं दुविहं पसत्थविहागई अपसत्थविहायगई

1 अत्र 'आइच्चस्स वा अग्गिस्स' इति पाठो जे. प्रतावधिक: ।

य, तत्थ पसत्थविहायगई गमणं हंसगजवसभादीणं, अपसत्थविहायगई य उट्टोलसिगालादीणं। तसणामं जस्सोदयाओ फन्दइ चलइ गच्छइ । थावरणामं जस्सोदयाओ ण फन्दइ ण चलइ । सुहुमतसे तेजवाऊ मोत्तूणं तेसिं थावरोदएवि सरीरसभावाओ देसन्तरगमणं भवइ । बायरणामं थूलं जस्सोदयाओ थूलया भवइ सरीरस्स तं बायरणामं । सुहुमं सूक्ष्मं जस्सोदयाओ सुहुमता भवति सरीरस्स तं सुहुमणामं, ण चक्खुग्गाहं, तं पडुच्च अन्नोन्नवेक्खायाओ वा बायरसुहुमता। पज्जत्तगणामं जस्सोदयाओ णिव्वत्तिं गच्छइ आपाकप्रक्षिप्तनिर्वृत्तघटवत् तं पज्जत्तगणामं । अपज्जत्तगणामं अपर्याप्तं अनिष्पन्नध्वंसि अर्द्धपक्वविनष्टघटवत् जस्सोदयाओ णिप्फत्तिं न गच्छइ । पत्तेगं ति–न सामान्यं, जस्सोदयाओ एको जीवो एकं सरीरं णिव्वत्तेइ, तं प्रत्येकं, यथा–देवदत्तयज्ञदत्तादीनां पृथग्गृहवत् । साहारणं ति-सामान्यं जस्सोदयाओ बहवो जीवा एगं शरीरं णिव्वत्तयंति, यथा--देवदत्तादयो सामान्यं देवकुलं । थिरणामं यदुदयाच्छरीरावयवानां स्थिरता भवति यथा--शिरोऽस्थिदन्तानां । अस्थिरनाम तदवयवानामेव मृदुता भवति यथा--नासिकाकर्णत्वचादीनां । शुभाशुभं शरीरावयवानामेव शुभाशुभता, यथा शिर इत्यादयः शुभाः, तैः स्पृष्टस्तुष्यति, पादेन स्पृष्टो रुष्यति तेऽशुभाः । सुभगं दुभगं, कमनीयः सुभगः मनसः प्रियः, इतरो दुर्भगः । सुस्सर-दुस्सरं बेइन्दियाइयाणं सद्दो सरो येनोच्चारितेन प्रीतिरुत्पद्यते सा सुस्सरता, तव्विवरिया दुस्सरता । आएज्जं प्रमाणीकरणं आएज्जकम्मोदयाओ जं तस्स चेट्ठियं जं वा तस्स वयणं तं सव्वं मणुएहिं पमाणीकिज्जइ, जहा-जमणेण कयं तं अम्हं पमाणं ति, मध्यस्थमनुजवचनभरं मनुजचेष्टितवत् , (मध्यस्थमनुजवचनक्रियानुकूल्येनेतरमनुजचेष्टितवत्)। तविपरीतमणाएज्जं । अथवा आदेयता श्रद्धेयता शरीरगता, तव्विवरीयमनादेयमिति । जसकित्ति कीर्त्तनं संशब्दनं कीर्त्तिः, यश इति वा शोभनमिति वा एकार्थः, यशसा लोके कीर्तनं यशःकीर्तिः। तत्पुनः केन संसद्दनं ? पुण्यशौर्यसत्क्रियानुष्ठानाचलितस्वाध्यायध्यानशोभनार्थावलम्बनात् संसद्दनं कीर्त्तनं यशःकीर्त्तिकर्मविपाकाद्भवति । अथवा यश इति इहलोके वर्त्तमानस्य, परलोगगतस्यापि (वा) यद्यशः सा कीर्त्तिरिति । तव्विवरीयमयशःकीर्त्तिः । निम्माणं ति--निम्माणं सव्वजीवाणंपि अप्पप्पणो सरीरावयवाण विन्नासणियमणं जेण भवइ तं णिम्माणणामं, जहा–मणुस्साणं दोहत्था दोपाया-उरोसिराइविन्नासो, एवं सेसजीवाणंपि, जहा वड्ढइ अणेगकलाकुसलो पासायाइस्वशास्त्रसिद्धलक्षणेन[1] णिम्माणेइ तहा णिम्माणंपि । तित्थयरणामं जस्स कम्मस्स उदएणं सदेवासुरमणुस्सलोकस्स अच्चियपूइयवन्दियणमंसिए धम्मतित्थरे जिणे केवली भवति तं तित्थकरणामं । नामं भणियं ॥

इयाणिं गोयं ति–गच्छइ जीवो उच्चाणीयं [2]कुलमिति गोयं । तं दुविहं, उच्चागोयं नीया-

1 'पासायाइसु शास्त्रसिद्धलक्षणाद्' इति जे. । 2 'जातिमिति' मु. ।

गोयं च, अप्पाणीवि विरूवोवि अधणोवि आइमन्तादेव पूइज्जइ तं उच्चागोयं । पंडिओवि सुरूवोवि धणवन्तोवि सव्वकलाकुसलोवि णिन्दिज्जइ उवहसिज्जइ अवमाणिज्जइ तं णीयागोयं ।

इयाणिं अन्तराइमं ति- [१०२]अन्तरे एइ व्यवधानं गच्छइ अणेण जीवस्स दाणाइपज्जयस्स दाणाइविग्घपज्जएणेति अन्तराइगं । तं पञ्चविहं दाणलाभभोगपरिभोगवीरियन्तराइयमिति । तत्थ दाणान्तराइगं णाम दव्वपडिग्गाहकसन्निज्झेवि दिन्नं महफलं ति जाणंतो वि दायव्वं ण देइ जस्स कम्मस्स उदएणं तं दाणंतराइमं । सव्वकालं सव्वेसिं देन्तोवि जस्स ण देइ तस्स तं लाभन्तराइगोदओ । एक्कसिं भोत्तूण छड्डिज्जइ तं उवभोगं मल्लाइगं, तं विज्जमाणंपि जस्स कम्मस्स उदएणं ण भुंजइ जहा–सुबन्धू, तं उवभोगन्तराइगं । परिभुंजइ पुणो पुणो भुज्जति तं परिभोगं स्त्रीवस्त्रादिकं, सन्निहियंपि जस्स कम्मस्स उदएणं ण भुंजइ जहा सुबन्धू, एतं परिभोगन्तराइगं । वीर्यं, शक्तिः, चेष्टा, उत्साहः, जो समत्थोवि णिरूजोवि तरूणोवि अप्पबलो भवइ जस्स कम्मस्स उदएणं एतं वीरियन्तराइगं । तस्स सव्वोदओ एगिन्दिएसु तओ [1]तरतमेण खओवसमविसेसेण बेइंदियाणं वीरियवुड्ढी ताव जा दुचरिममग्गछउमत्थोत्ति, केवलम्मि सव्वक्खओ । एवं पगइसमुक्कित्तणा पगईणं [2]अन्वर्थाविवरणा य कया । एत्थ बन्धं पडुच्च वीसुत्तरं पगइसतं गहियं, तंजहा–णाणावरणाणि ५, दंसणावरणाणि ९, सायासायं २, छव्वीसं मोहणिज्जं सम्मत्तसम्मामिच्छत्तवज्जं, आऊणि ४, गति ४, जाति ५, पंचसरीराणि य सरीरबन्धणसंघायणाणि सरीरग्गहणेण गहियाई, संठाण६, संघयण६, अङ्गोवङ्ग३, वण्णगन्धरसफासभेयवज्जाणि, आणुपुव्वीओ ४, अगुरुलहुउवघायपराघायउस्सासआयाव १ उज्जोय१ विहाय२तस्सथावराइवीसं णिम्माणं तित्थयरमिति उच्चं णीयं च अन्तराइगाणि त्ति ॥३८॥३९॥

इयाणिं मूलुत्तरपगईणं बन्धं पडुच्च साइअणाइयपरूवणा भण्णइ—

साइअणाई धुवअद्धुवो य बन्धो य कम्मछक्कस्स ।
तइए साइयसेसो [3]अणाइधुवसेसओ आऊ ॥४०॥

व्याख्या—'साइअणाई' साइयं णाम जस्स बन्धस्स आई अत्थि, सह आइणा वट्टइ त्ति सो साइओ बन्धो । जस्स बन्धस्स सन्ततिं पडुच्च आई णत्थि सो अणाइओ बंधो, जस्स बन्धस्स वोच्छेओ नत्थि सो धुवो बन्धो । जस्स बन्धस्स परिनिष्ठानमस्ति अन्त इत्यर्थः सो अधुवो

(१०२) 'अन्तरे' इत्यादि । अन्तरा अन्तरालमेति गच्छति; किं कर्तृ इत्याह-दानादि दानलाभादिलब्धिपञ्चकं विघ्नपर्यायेण विघ्नस्वभावेनाऽनेनेति सम्बध्यते । शेषं सुगमम् । इत्यन्तरायं तदेव स्वार्थिकप्रत्ययोपादानादान्तरायिकमितिभावः ।

1 'उत्तरं कमेण' इति मु. । 2 'अत्थणिकवणा' इति जे. । 3 'आउयवज्जो' इति मु. अधिगतं पाठान्तरम् ।

बन्धो। एएमं अत्थपएणं णाणावरणदंसणावरणमोहणिज्जणामगोयअन्तराइगाणं एएसिं छण्हं कम्माणं बन्धो साइओवि अणाइओवि धुवोवि अधुवोवि सम्भवइ। कहं ? भण्णइ, मोहवज्जाणं पञ्चण्हं कम्माणं सुहुमसम्पराइगस्स जाव चरिमसमओ ताव सव्वे हेट्ठिल्ला सययबन्धगा। उवसन्तकसायस्स तेसिं कम्माणं बन्धो णत्थि तओ भवक्खएण ठिइक्खएणं वा परिवडियस्स पुणो बन्धो भवइ, ततो पभिति साइको बन्धो। उवसन्तट्ठाणं अपत्तपुव्वस्स अणाइओ बन्धो, बन्धस्य आद्यभावात्। धुवो अभवियाणं, बन्धवोच्छेदाभावात्। अधुवो भवियाणं बन्धवोच्छेओ णियमा होहि त्ति काउं। एवं मोहणिज्जेवि भावणा। णवरि बन्धवोच्छेओ अणियट्टिचरिमसमए वत्तव्वो। '**तइए साइयसेसो**' त्ति तइयं ति–वेयणिज्जं तस्स साइगं मोत्तूणं सेसा तिण्णि सम्भवन्ति। कहं ? भण्णइ, वेयणिज्जस्स सजोगिकेवलिचरिमसमए बन्धवोच्छेओ, ततो हेट्ठिला सव्वे नियमा बन्धन्ति, अजोगिस्स बन्धवोच्छिन्ने पुणो बन्धो णत्थि त्ति काउं साइओ णत्थि। सेसतिकभावना पूर्ववत्। '**अणाइधुवसेसओ आउ**' त्ति आउगस्स अणादितं च धुवं च मोत्तूण सेसाणि बे सम्भवन्ति, आउगस्स अप्पप्पणो आउगतिभागे बन्धाढवणं तं साइयं, अन्तोमुहुत्ताओ पुणो फिट्टइ त्ति अधुवो, तम्हा अणादिधुवाण सम्भवो णत्थि ॥४०॥ इयाणिं उत्तरपगईणं—

उत्तरपयडीसु तहा धुविगाणं बन्धचउविगप्पो य।
साई अद्धुवियाओ सेसा परियत्तमाणीओ ॥४१॥

व्याख्या—'**उत्तरपयडीसु तहा**' उत्तरपगइसु सत्तचत्तालीसं धुवबन्धीओ, तं जहा–पंचणाणावरणाणि, नव दंसणावरणाणि, मिच्छत्तं, सोलस कसाया, भयं दुगंछा तेजइगकम्मइगवण्णगन्धरसफासअगुरुलहुउवघायणिम्माणं पञ्चअन्तराइकमिति। एएसिं सत्तचत्तालीसाए चत्तारिवि भावा अत्थि। कहं ? भण्णइ, पंचणाणावरणाणं उवरिल्लचत्तारिदंसणावरणाणं पंचण्हमन्तराइगाणं सुहुमसरागस्स चरिमसमए बन्धवोच्छेओ, हेट्ठिल्ला णियमा बन्धका, उवसन्तकसायस्स बन्धो णत्थि, तओ परिवडन्तस्स सादिकादयो योज्याः पूर्ववत्। चउण्हं संजलणाणं अणियट्टिम्मि बन्धवोच्छेओ, तओ भावेयव्वं। णिद्दापयलाणं तेजइककम्मइकवण्णाइ४अगुरुलहुउवघायणिम्माणभयदुगंछाणं जहक्कमेणं अपुव्वकरणम्मि बन्धवोच्छेओ, ततो भावेयव्वं। पच्चक्खाणावरणाणं चउण्हं देसविरयम्मि बन्धवोच्छेओ, ततो परिवडन्तस्स साइयादयो योज्याः पूर्ववत्। अपच्चक्खाणावरणाणं ४ असंजयसम्मद्दिट्ठिम्मि बन्धवोच्छेओ तओ भावेयव्वं। थीणगिद्धितिगमिच्छत्ताणंताणुबंधीणं मिच्छदिट्ठिस्स उवसमसमत्तं पडिवज्जस्स बन्धवोच्छेओ भवइ, तओ परिवडन्तस्स भावेयव्वं। '**साईअद्धुवियाओ सेसा परियत्तमाणीओ**' त्ति परावृत्य पुणो पुणो बन्धइ त्ति परियत्तमाणीओ, तंजहा–सायासायं, तिण्णि वेया, हासरईअरईसोगजुगलं, चत्तारि आउगाणि, चत्तारि गईओ, पञ्च जाईओ, ओरालियवेउव्वियआहारगसरीराणि, छसंठाणाणि, तिण्णि अंगोवंगाणि, छसंघयणाणि,

चउरो आणुपुव्वीओ, पराघाय, ऊसास, आयव, उज्जोय, दो विहायगईओ, वीसं तसथावराई, तित्थकर उच्चाणीयमिति ७३ एते परस्परविरुद्धत्वात् जुगवं ण बन्धति त्ति परियत्तमाणीओ, पराघायउस्सासा पज्जत्तगणामए सह बन्धइ त्ति, न अपज्जत्तगणामए एएण परित्तमाणीओ, आयवुज्जोआणि एगिंदियतिरियगईए सम्मं बज्झंति त्ति परित्तमाणीओ, तित्थगराहारगनामाणि सम्मत्तसंजमपच्चयाणि, न सव्वेसिं ति तेण परियत्तमाणीओ। एएसिं सव्वेसिं साइओ अधुवो य बन्धो ॥४१॥

साइयाइपरूवणा कया। इयाणिं पगइट्ठाणभूओगाराइपरूवणा भन्नइ—

चत्तारि पयडिठाणाणि तिन्नि भूगारअप्पतरगाणि।
मूलपगडीसु एवं अवट्ठिओ चउसु नायव्वो ॥४२॥

व्याख्या–'**चत्तारि पयडिठाणाणि**' मूलपगईणं चत्तारि पगइठाणाणि बन्धभेदा इत्यर्थः। तं जहा–अट्ठविहं, सत्तविहं, छव्विहं, एगविहं ति। अट्ठवि कम्मपगडीओ बन्धमाणस्स अट्ठविहं पगइठाणं, आउगवज्जं तमेव सत्तविहं, आउगमोहवज्जं बन्धमाणस्स तमेव छव्विहं, एगं चिय वेयणीयं बन्धमाणस्स एकविहं ति। '**तिन्नि भूगारअप्पतरगाणि**' त्ति भूयोकारं णाम थोवाओ बन्धमाणो बहुकाओ बन्धइ। अप्पतरं णाम बहुकाओ बन्धमाणो थोवाओ बन्धइ। '**अवट्ठिओ चउसु णायव्वो**' त्ति अवट्ठिओ बन्धो णाम जत्तियाओ पढमसमए बन्धइ तत्तियाओ चेव बिइयसमयाइसु बन्धइ। एएसिं अत्थो इमो [103]एगविहं बन्धमाणो छव्विहाइ बन्धइ त्ति तिन्नि भूओकारा, एसो एकसमइओ पडिवत्तिकाले, सेसकालं अवट्ठियबन्धो [104]अट्ठविहाओ सत्तविहाइगमणं अप्पतरबन्धो, सो वि एकसमइओ तिप्पगारो य, सेसकालं अवट्ठिओ। एवमवट्ठियबन्धो चउविगप्पो अट्ठविहाइसु॥ अवत्तव्वबन्धो अबन्धाओ बन्धगमणं, मूलपगईसु णत्थि, मूलपगईणं सव्वबन्धे वोच्छिन्ने पुणो बन्धो णत्थि त्ति काउं। उक्तं च—

"एकादहिगे पढमो एकादी ऊणगम्मि बिइओ उ। तत्तियमेत्तो तइओ पढमे समए अवत्तव्वो ॥१॥ त्ति॥४२॥"

मूलपगईणं भूओकारादीणि भणियाणि, इयाणिं उत्तरपगईणं भन्नन्ति—

तिन्न दस अट्ठ ठाणाणि दंसणावरणमोहनामाणं।
एत्थ य भूओगारो सेसेसेगं हवइ ठाणं ॥४३॥

---

(१०३) 'एगविहम्मि' त्यादि। एकविधं सद्वेद्यं बध्ननुपशान्तमोहः। अद्धाक्षयेण प्रतिपतन् सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकस्थः षड्विधमादिशब्दाद्भवक्षयेण सुरलोकोत्पत्तौ सप्तविधं, सामान्यजीवश्च सप्तविधबन्धादष्टविधं बध्नातीति त्रयो भूयस्कारा इति।

(१०४) 'अट्ठविहातो' इत्यादि। अष्टविधबन्धात् सप्तविधे, आदिशब्दात् सप्तविधात् षड्विधे, षड्विधादेकविधबन्धे गमनं संक्रमणं सप्तविधादिगमनम्। अष्टविधबन्धादानन्तर्येण षड्विधादिबन्धगमनासंभवात्।

व्याख्या–'**तिन्नि दस**' तिन्नि दस अट्ठठाणाणि पगइठाणाणि जहासंखेण दंसणावरण-मोहणामाणं ति। [१०५]'**एत्थ य भूओकारो**' एएसु चेव कम्मेसु भूओकारादओ चत्तारि। '**सेसेसेगं हवइ ठाणं**' ति सेसाणं कम्मपगइणं एक्केक्कं चेव पगइट्ठाणं। दंसणावरणीयस्स तिन्नि पगइट्ठाणि। तंजहा–णवविहं छव्विहं चउव्विहं ति। सव्वपगईणं समुदओ णवविहं, थीणत्तिगविरहियं तमेव छव्विहं, णिद्दादुगरहियं तमेव चउव्विहं। एत्थ य बे भूओकारा, दोन्नि अप्पतराणि, अवट्ठियबंधाणि तिन्नि, अवत्तव्वमेगंति सव्वबंधवोच्छेए जाए पुणो बंधइ अवत्तव्वबंधो। मोहणिज्जस्स दस पगइट्ठाणाणि, तंजहा–बावीसा, एक्कवीसा, सत्तरस, तेरस, णव, पंच, चत्तारि तिन्नि, दो, एक्क त्ति। एएसिं विवरणा जहा [१०६]सत्तरीए। एत्थ भूओकाराणि नव, अप्पतराणि अट्ठ, कहं? बावीसाओ एकवीसगमणं णत्थि, मिच्छाद्दिट्ठी सासणभावं ण गच्छइ त्ति। एक्कवीसाओ वि सत्तरसबंधगमणं णत्थि, सासणो समत्तं ण पडिवज्जइ, णियमा मिच्छत्तं गच्छइ त्ति, तम्हा बावीसाओ सत्तरसाइगमणं अत्थि। अवट्ठियबंधा दस। अवत्तव्वगो एक्को। [१०७]णामकम्मस्स पगइट्ठाणाणि अट्ठ तंजहा–तेवीसा, पणुवीसा, छव्वीसा, अट्ठावीसा, एगु-

---

(१०५) 'एस्थ य भूओगारो' इत्यत्रादिशब्दलोपो द्रष्टव्यः। यदुक्तम्–

"भूओगारग्गहणाद्प्पतराई वि सूइया होन्ति।
सु(सु)त्ते तालपलंबे, लुत्तो जह आइसद्दो उ॥" [ ]

तथाऽत्राप्यादिशब्दलोपो द्रष्टव्य इति भावः। तालप्रलम्बसूत्रं च– 'नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा आमे तालपलंबे अभिन्ने पडिगाहित्तए।' [बृ.क.उद्दे-१.सू-१] तालः-वृक्षविशेषः, तस्य प्रलम्बं फलं, लुप्तादिशब्दादन्यस्यापि फलं प्रतिग्रहीतुं न कल्पत इति योगः।

(१०६) चूर्णिकारेण 'सप्ततिकातिदिष्टानां' मोहनाम्नो बन्धनस्थानानां क्रमेण लेशतः किञ्चित् स्वरूपमुच्यते। तद्यथा-द्वाविंशतिर्मिथ्यात्वं षोडशकषाया अन्यतरो वेदो हास्यरतियुग्माऽरतिशोकयुग्मयोरन्यतरद्युग्मं भयं जुगुप्सा चेति। मिथ्यात्वबन्धोपरमे सास्वादनस्यासावेकविंशतिः। सैव सम्यग्मिथ्यादृष्टेरविरतसम्यग्दृष्टेर्वाऽनन्तानुबन्ध्यभावे सप्तदशविधं बन्धस्थानम्। तदेव देशविरतस्याऽप्रत्याख्यानबन्धाभावे त्रयोदशविधम्। तदेव प्रमत्ता-ऽप्रमत्ता-ऽपूर्वकरणानां प्रत्याख्यानावरणबन्धाभावान्नवविधम्। एतदेव हास्यादियुग्मस्य भयजुगुप्सयोश्चापूर्वकरणचरमसमये बन्धोपरमात् पञ्चविधम्। ततोऽनिवृत्तिकरणसंख्येयभागावसाने पुंवेदबन्धोपरमाच्चतुर्विधम्। ततोऽपि तस्मिन्नेव संख्येयभागे क्षयमुपगच्छति सति क्रोधमानमायासंज्वलनानां क्रमेण बन्धोपरमात्त्रिविधं द्विविधमेकविधञ्चेति। तस्याप्यनिवृत्तिकरणचरमसमये बन्धोपरमात् मोहनीयस्याबन्धकः।

(१०७) 'नाम्नस्तु' त्रयोविंशतिः, तिर्यग्गतिप्रायोग्यं बध्नतस्तिर्यग्गतिरेकेन्द्रियजातिरौदारिकतैजसकार्मणानि हुण्डसंस्थानं वर्णगन्धरसस्पर्शास्तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी अगुरुलघूपघातं स्थावरं बादरसूक्ष्मयोरन्यतरदपर्याप्तकं प्रत्येकसाधारणयोरन्यतरदस्थिरमशुभं दुर्भगमनादेयमयशःकीर्तिः निर्माणमिति। इयमेकेन्द्रियापर्याप्तकप्रायोग्यं बध्नतो मिथ्यादृष्टेर्भवति। इयमेव पराघातोच्छ्वाससहिताः पञ्चविंशतिः, नवरमपर्याप्तकस्थाने पर्याप्तक एव वाच्यः। इयमेव आतपोद्योतान्यतरसमन्विता षड्विंशतिः, नवरं

णतीसा, तीसा एक्कतीसा, एगं चेति । एएसिं विवरणा जहा सत्तरीए । एत्थ भूओकाराणि सत्त [108]पणुवीसाइएगतीसपज्जवसाणाणि, एक्काओवि एकतीसाए जाइ त्ति भूओकारा सत्त । अप्पतरकाराणि [109]णाणाजीवे पडुच्च सत्त, एकतीसाई तेवीसंताणि [110]एक्कतीसाओ तीसगमणं देवत्तं गयस्स, तओ चयंतस्स एगुणतीसगमणं, अट्ठवीसाइतो एक्कगमणं, सभिन्नजीवाणं तीसाओ तेवीसंतगमणं, तम्हा सामन्नेणं सत्त अप्पतराणि । अवट्ठियाणि अट्ठ । अवत्तव्वमेगं णाणावरणीयवेयणीयआउगोयअंतराइगाणं एक्केक्कं पगइट्ठाणं । बंधं पडुच्च एक्कं अवठियं । वेयणीयवज्जाणं अवत्तव्वगबंधो एक्को ।।४३।।

बादरप्रत्येके एव वाच्ये । तथा देवगतिप्रायोग्यं बध्नतोऽष्टाविंशतिस्तद्यथा देवगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, वैक्रियतैजसकार्मणानि, समचतुरस्रमङ्गोपाङ्गं वर्णादिचतुष्कमानुपूर्वी--अगुरुलघूपघातपराघातोच्छ्वासः प्रशस्तविहायोगतिस्त्रसं बादरं, पर्याप्तकं, प्रत्येकं, स्थिरास्थिरयोरन्यतरत्, शुभाशुभयोरन्यतरत्, सुभगं, सुस्वरमादेयं, यश कीर्त्ययशःकीर्त्योरन्यतरत्, निर्माणमिति । एषैव तीर्थकरनामसहिता एकोनत्रिंशत् । साम्प्रतं त्रिंशद् देवगति, पञ्चेन्द्रियजातिः, वैक्रियाहारका [शरीरा]ङ्गोपाङ्गचतुष्टयं, तैजसकार्मणे, संस्थानमाद्यं, वर्णादिचतुष्कमानुपूर्वी, अगुरुलघूपघातपराघातोच्छ्वासाः प्रशस्तविहायोगतिस्त्रसं, बादरं, पर्याप्तकं, प्रत्येकं, स्थिरं शुभं, सुभगं [सुस्वरं] आदेयं, यशःकीर्तिनिर्माणमिति च बध्नत एकं बन्धस्थानं एषैव त्रिंशत् तीर्थकरनामसहिता एकत्रिंशत् । एतेषां च बन्धस्थानानामेकेन्द्रियद्वीन्द्रियनरकगत्यादिभेदेन बहुविधता सप्रतिग्रन्थादवसेया । अपूर्ण(र्व)करणादिगुणस्थानकत्रये देवगतिप्रायोग्यबन्धोपरमाद्यशःकीर्तिमेव बध्नत एकविधबंधस्थानमिति । तत ऊर्ध्वं नाम्नो बन्धाभाव इति ।

(१०८) 'पणुवीस' इत्यादि । पञ्चविंशत्यादीनि एकत्रिंशदन्तानि षट् । एकविधबन्धकश्चोपशमश्रेणिप्रतिपाते पश्चानुपूर्व्या एकत्रिंशदादिषु चतुर्षु यथायोग्यं संचरति । एतानि च एकमेव भूयस्कारस्थानं विवक्षात इति ।

(१०९) 'णाणाजीवे पडुच्चे त्ति । अल्पतरविशेषणाद् भूयस्कारस्थानानि क्रमेण एकस्यापि जीवस्य त्रयोविंशत्यादिसर्वबन्धस्थानसंभवात् । उपशमश्रेणिप्रतिपाते चैकविधबन्धादेकत्रिंशदादिबन्धाच्च सप्तापि संभवति । अल्पतरस्थानानि तु सर्वजीवानेव प्रतीत्य भवन्ति, एकस्य जीवस्य सर्वेषामसंभवात् । यस्मादेकत्रिंशद्बन्धको नेकोनत्रिंशद्बधादधः पतति । एतदेव भावयति ।

(११०) 'एगतीसाओ' इत्यादि । देवत्वप्राप्तावाहारकद्वयाऽबन्धे मनुष्यगतियोग्यसंहननबंधे च त्रिंशत् । तस्यैव ततश्च्युतस्य देवगतिप्रायोग्यामष्टाविंशतिं तीर्थंकरनामकर्म च बध्नत एकोनत्रिंशदिति । इह च दर्शनावरणनाममोहकर्मसु यदेकैकमेवावक्तव्यस्थानमुक्तं तदिहैव श्रेणिप्रतिपातमपेक्ष्य, अन्यथाऽद्यानयोः क्षयेण प्रतिपततः यथासंख्यं चतुष्कं षट्कमिति द्वे द्वे, एका-एकोनत्रिंशत् त्रिंशच्चेति त्रीणि, एका सप्तदश चेति द्वे, इत्येवमवक्तव्यस्थानानामभिधानात् । उक्तं च–

'चउ छ दुइए' दर्शनावरण इत्यर्थः।

······'नामंमि एग गुणतीस-तीस अवत्तव्वा ।
इग सत्तरस य मोहे, एक्केको तइअवज्जाणं ।।'

[श्री पञ्चसंग्रहे; भा. १, द्वार ५, गाथा १०]

एवं भूओकारबंधाइणि वक्खाणियाणि, इयाणिं बंधसामित्तं भन्नइ—

सव्वासिं पगईणं मिच्छद्दिट्ठी उ बंधओ भणिओ ।
तित्थयराहारदुगं मोत्तूणं सेसपयडीणं ।।४४।।

व्याख्या-'**सव्वासिं पगईणं**' पुव्वुद्दिट्ठं वीसुत्तरं पगईसयं । तत्थ तित्थकरं च आहारगदुगं च मोत्तूण सेसाओ सव्वपगईओ मिच्छद्दिट्ठी मिच्छत्ताइहिं हेऊहिं बंधइ विसेसहेऊहि य ।।४४।।

तित्थगराहारगदुगं च किं न बंधतीति चेत् ? भन्नइ—

सम्मत्तगुणनिमित्तं तित्थयरं संजमेण आहारं ।
बज्झंति सेसियाओ मिच्छत्ताईहि हेऊहिं ।।४५।।

व्याख्या-'**सम्मत्तगुणनिमित्तं**' सम्मत्तगुणणिमित्तं तित्थकरं, संजमेण आहारं बंधइ त्ति । *वीसाणं एगदुगाइगेहिं अन्नतरेहिं कारणेहिं तित्थरणामंपि बद्धं सम्मद्दिट्ठिणा,* जाव तस्स सम्मत्तभावो धरइ ताव बंधइ, सम्मत्तभावे फिट्टे ण बंधइ, तेण तित्थकरणामं सम्मत्तपच्चयं । आहारगदुगं अप्पमत्तभावे वट्टमाणो संजओ बंधइ, ण पमत्तो, तम्हा संजमपच्चइगं । तेण एयाओ तिन्नि पगईओ मोत्तूण सेसाओ सत्तरसुत्तरसयं पगईणं बंधइ मिच्छद्दिट्ठी मिच्छत्ताईहिं हेऊहिं ।।४५।।

सोलस मिच्छत्तंता पणुवीसं होइ सासणंताओ ।।
तित्थयराउदुसेसा अविरइअंताउ मीसस्स ।।४६।।

व्याख्या-'**सोलस मिच्छत्तंता**' मिच्छत्तं, णपुंसगवेओ, णिरयाउगं, णिरयगई, एगिंदियजाई, बितिचउरिंदियजाई, हुंडसंठाणं, छेवट्ठं संघयणं, निरयाणुपुव्वी, आयवं, थावरं, सुहुमं, अपज्जत्तगं, साहारणमिति । एयासिं सोलसण्हं कम्मपगईणं मिच्छद्दिट्ठिम्मि चेव अन्तो, मिच्छत्तभावेण विणा एएसिं बन्धो णत्थि, एयाणि एक्कंतेण णिरयएगिंदियविगलिंदियपाउग्गाणि णेरइयएगिंदियविगलिंदियाणं णपुंसगं हुंडं च मोत्तूण सेसा णत्थि संठाणवेया, विगलिंदियाणं सेवट्टमेव त्ति सेसाणि पडिसिद्धाणि, अप्पज्जत्तगमेगंतासुभमिति मिच्छद्दिट्ठिम्मि चेव बंधइ । एयाणि सोलस पुव्वतिकसहियाणि एगूणवीसंति । एयाणि मोत्तूण सासणो एगुत्तरं पगइसयं बंधइ । अस्संजयपच्चयादिगेहिं हेऊहि '**सासणंताओ पणुवीसं तु**' त्ति सासणंताओ पणुवीसं पगईओ सासणस्स उवरिल्ला ण बंधंति त्ति भणियं भवइ । के ते ? भन्नइ—थीणगिद्धितिगं, अणंताणुबन्धीणि, इत्थिवेओ, तिरियाउगं, तिरियगई, आद्यंतवज्जाणि चत्तारि चत्तारि संठाणसंघयणाणि, तिरियाणुपुव्वी, उज्जोअं, अप्पसत्थविहायगई, दुभगं, दुस्सरं, अणाएज्जं, नीयगोत्तमिति । '**तित्थयराउदुसेसा अविरइअंताउ मीसस्स**' त्ति तित्थकरणामं आउदुगं च मोत्तूण जाओ असंजयसम्मद्दिट्ठी अंतग्गताओ पगईओ बन्धं पडुच्च ताओ चेव पगईओ सम्मामिच्छादिट्ठी बन्धइ ।

'अंताउ' त्ति अन्तर्गता इत्यर्थः। अहवा असंयते जासिं अन्तोऽतो अविरइअन्ता तासिं मिस्सो वि, किमुक्तं भवति ? मिस्सम्मि प्रत्येकं व्यवच्छेदप्रतिषेधवचनार्थमुक्तं, तिन्नि सोलस पणुवीसा आउगदुगं च मोत्तण सेसाओ चोत्तरि पगईओ सम्मामिच्छद्दिट्ठी बन्धति। असंजयसम्मद्दिट्ठी ताओ चेव तित्थयराउगदुगमहियाओ सत्त[स]त्तरिपगईओ बंधइ॥४६॥

अविरयअंताओ दस विरयाविरयंतया उ चत्तारि।
छच्चेव पमत्तंता एगा पुण अप्पमत्तंता॥४७॥

व्याख्या–'**अविरयअंताओ दस**' त्ति असंजयाओ उवरिल्ला दस पगईओ ण बन्धति, तंजहा अपच्चक्खाणावरणा चत्तारि, मणुस्साउयं, मणुयगई, ओरालियसरीरं, वज्जरिसभणारायसंघयणं, ओरालियअंगोवंग, मणुयाणुपुव्वी य। मणुयाउगं मणुयगइपाउग्गं च देवणेरइगा असंजयसम्मद्दिट्ठी-बंधंति त्ति। तिरियमणुए पडुच्च मणुयगइपाओग्गाओ पगईओ ण संभवंति। एए दस, पुव्वुत्ता सोलस, पणुवीसा, आहारदुगं च मोत्तूण सेसाओ सत्त[स]ट्ठि पगईओ देसविरओ बन्धइ, विरयाविरयं ति काउं। 'चत्तारि' त्ति देसविरए पच्चाक्खाणावरणाणं चउण्हं अंतो, "जो वेदेइ सो बन्धइ" त्ति वचनात् पुव्वुत्ता संजयासंजयापाउग्गाओ, एताओ चत्तारि मोत्तूण, सेसाओ तेसट्ठी पगईओ पमत्तसंजओ बन्धइ त्ति '**छच्चेव पमत्तंता**' इति पमत्तविरयंताओ छप्पगडीओ तं जहा–असायं, अरई, सोगो, अथिरं, असुभं, अजसमिति। एयाओ पमत्तप्पाओग्गसहियाओ मोत्तूण सेसाओ आहारदुगसहियाओ एगूणसट्ठिपगईओ अप्पमत्तसंजओ बन्धइ। '**एक्का पुण अप्पमत्तंता**' एगा पगई देवाउगं अप्पमत्तद्धाए संखेज्जइमे भागे ठाइ, अप्पमत्तअयोग्गाओ देवाउगं च मोत्तूण सेसाओ अट्ठावन्नं पगईओ अपुव्वकरणो बन्धइ, ताव जा अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जइमो भागो त्ति॥४७॥

दो तीसं चत्तारि य, भागे भागेसु संखसन्नाए।
चरमे य जहासंखं, अपुव्वकरणंतिया होंति।४८।

व्याख्या–'**दो तीसं**' दोन्नि अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जइमे भागे गए णिद्दापयलाणं बन्धो वोच्छिज्जइ, पुव्वुत्ता अजोग्गा णिद्दादुगसहियाओ मोत्तूणं सेसाओ छप्पन्नं पगडीओ अपुव्वकरणो बन्धइ ताव जाव अपुव्वअद्धाए संखेज्जभागा गत त्ति। '**तीसं**' ति अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जभागेसु गएसु तीसाए कम्मपगईणं बन्धो वोच्छिज्जइ, तंजहा–देवगई पंचेन्दियजाइवेउव्वियआहारगतेय-इगकम्मइगसरीरसमचउरंसवेउव्वियाहारगअंगोवंगवण्णगंधरसफासदेवाणुपुव्विअगुरुलहुउवघायपरा-घायउस्सासपसत्थविहायगइतसबायरपज्जत्तकपत्तेयथिरसुभसुभगसुस्सरआएज्जणिम्माण-तित्थकरमि-ति। देवगइबन्धजोग्गाओ एयाओ तीसं पगडीओ पुव्वुत्ताओ अयोग्गसहियाओ मोत्तूण सेसाओ छव्वीसं पगडीओ अपुव्वकरणो अंतिमे भागे बन्धइ, ताव जाव चरिमसमओ त्ति। '**चत्तारि य**' त्ति अपुव्वकरणस्स चरिमसमए चउण्हं पगईणं बन्धो वोच्छिज्जइ, तंजहा–हासरइभयदुगुंछ त्ति। '**दो**

तीसं' गाहात्थो इमो-दो पगईओ तीसं पगईओ चत्तारि पगईओ अपुव्वकरणद्धाए **'भागे भागेसु संखसन्नाए'** त्ति संखेज्जइमे भागे गए संखेज्जेसु भागेसु गतेसु त्ति भणियं भवइ । **'चरिमे य'** चरिमसमए य जहासंखं अपुव्वकरणंमि वोच्छिज्जं ति । एए तिन्नि विगप्पा अपुव्वकरणंमि भवंति एए चत्तारि पुव्वुत्ता अप्पाओग्गसहिए मोत्तूण सेसाओ बावीसं पगईओ अणियट्टी बंधइ; ताव जाव अणियट्टिअद्धाए संखेज्जभागा गया, एक्को भागो सेसो त्ति ॥४८॥

संखेज्जइमे सेसे, आढत्ता बायरस्स चरिमंतो ।
पंचसु एक्केक्कंता, सुहुमंता सोलस हवंति ॥४९॥

व्याख्या-**'संखेज्जइमे सेसे आढत्ता बायरस्स चरिमंतो पंचसु एक्केक्कंता'** इति बायराणियट्टी । तस्स अद्धाए संखेज्जइमे भागे सेसे आढत्ता जाव चरिमसमओ त्ति पंचसु ठाणेसु पंचपगईओ एक्केक्कंताओ भवंति । अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गएसु पुरिसवेयस्स बंधो वोच्छिज्जइ, तं सवेयगो बंधइ त्ति काउं । पुव्वुत्ते अप्पाओग्गे एगे पुरिसवेयस्स सहिए मोत्तूण तओ एक्कवीसं पगईओ अणियट्टी बंधइ, ताव जाव सेसद्धाए संखेज्जा भागा गयत्ति । संखेज्जइमे सेसे कोहसंजलणाए बंधो वोच्छिज्जइ । अणंतरुत्ते अप्पाओग्गे कोहसंजलणासहिए मोत्तूण सेसातो वीसं पगईओ अणियट्टी बंधइ, ताव जाव सेसद्धाए संखेज्जा भागा गयत्ति । संखेज्जइमे भागे सेसे माणसंजलणाए बंधो वोच्छिज्जइ । अणंतरुत्ते अप्पाओग्गे माणसंजलणासहिए मोत्तूण तओ एगूण-वीसं पगईओ अणियट्टी बंधइ, ताव जाव सेसद्धाए संखेज्जा भागा गयत्ति । संखेज्जइमे भागे सेसे मायासंजलणाए बंधो वोच्छिज्जइ । अणंतरुत्ते अप्पाओग्गे मायासंजलणासहिए मोत्तूण सेसाओ अट्ठारपगडीओ अणियट्टी बंधइ, ताव जाव अणियट्टिअद्धाए चरिमसमओ त्ति । एए पंच विगप्पा अणियट्टिम्मि भणिया । **'सुहुमंता सोलस हवंति'** त्ति अणियट्टिचरिमसमए लोभसंजलणाए बंधो वोच्छिन्नो. अणंतरुत्ते अप्पाओग्गे लोभसंजलणासहिए मोत्तूण सेसाओ सत्तरसकम्मपगईओ सुहुमसंपरायगो बंधइ, ताव जाव सुहुमसंपराइगद्धाए चरिमसमओ त्ति ॥ ४९ ॥

सायंतो जोगंते एत्तो परओ उ नत्थि बंधो य ।
नायव्वो पयडीणं बंधस्संतो अणंतो य ॥५०॥

व्याख्या-**'सातंतो जोगंते'** त्ति सुहुमसंपराइगस्स चरिमसमए पंच णाणावरणा चत्तारि दंसणावरणा जसकित्ती उच्चागोयं पंचण्हं अंतराइगाणं एएसिं सोलसण्हं कम्माणं बंधे वोच्छिन्ने अणंतरुत्ते अप्पाओग्गे, एयाओ सोलस कम्मपगईओ मोत्तूण सेसं सायावेयणिज्जं तं उवसंतखीण-कसाया सजोगिकेवली य बंधंति । कहं ? सजोगिणो बंधगत्ति काउं, सायावेयणिज्जस्स बंधंतो जोगंते भवइ, सजोगिकेवली चरिमसमए इत्यर्थः । **'एत्तो परओ उ णत्थि बंधो य'** त्ति सजोगि-चरिमसमयाओ परओ अजोगिकेवलीभावे इत्यर्थः, णत्थि बंधो त्ति-बंधभावेन णत्थि कम्मं,

उदयसंतभावे अत्थि चेव। **'णायव्वो पगईणं बंधस्संतो अणंतो य'** त्ति उवसंहारो एवं, जाणियव्वो पगईणं बंधो अमुको अमुकाणं पगईणं बंधगो, तेसिं चेव अंतो अमुगंमि अमुगो वोच्छिज्जइ त्ति। **'अणंतो य'** त्ति अमुगाणं कम्माणं अमुगो अंतो ण भवइ त्ति। अहवा संतो बंधो अणंतो य भव्वाभव्वे पडुच्च ॥५०॥

एयं ओघेण बंधसामित्तं भणियं। इयाणिं आएसप्पूवणत्थं भण्णइ—

गइयाइएसु एवं तप्पाओग्गाणमोघसिद्धाणं।
सामित्तं नेयव्वं पयडीणं ठाणमासज्ज ॥५१॥

व्याख्या–**'गइआइगेसु'** त्ति गइइंदियाईसु चोद्दससु मग्गणट्ठाणेसु **'एवं'** ति भणियविहिणा, **'तप्पाओग्गाणं'** ति णेरइयाईणं जोग्गाणं, **'ओघसिद्धाणं'** ति ओघसामित्ते पसिद्धाणं पगईणं ठाणमासज्ज सामित्तं, णेयव्वं भवति। णेरइगाणं णिरयाउगं, णिरयगई, देवाउगं देवगई, तेसिं चेव आणुपुव्वीओ, एगिंदियबितिचउरिंदियजाई, वेउव्वियआहारगसरीरं, एतेसिं चेव अंगोवंगाणि, आयवं, थावरं, सुहुमं, अपज्जत्तकं, साहारणमिति एयाओ एगूणवीसं पगईओ अप्पाओग्गाओ। एयाओ मोत्तूण सेसं एगुत्तरं पगइसयं एएहिं सामित्तं णायव्वं पूर्ववत्। तिरियाणं आहारदुगं तित्थकरणामं च अप्पाओग्गाणि, एए मोत्तूण सेसाणि सत्तरसमयं पगईणं एएहिं सामित्तं णायव्वं। णवरि तिरिया सम्मामिच्छदिट्ठी असंजयसम्मदिट्ठी य देवगइपाओग्गमेव बंधंति ण सेसं ति। मणुयाणं जहा ओघपयडीओ। णवरि सम्मामिच्छादिट्ठी असंजयसम्मदिट्ठी य मणुयगइपाओग्गं ण बंधंति, तेसु ण उववज्जइ त्ति काउं। देवस्स जाणि णेरइगअप्पाओग्गाणि ताणि चेव अप्पाओग्गाणि। णवरि एगिंदियजाई आयवं थावरं च मोत्तूण सेसाणि सोलस। एयाओ सोलस मोत्तूण सेसं चउरुत्तरं पगइसयं बंधंति; एत्थ सामित्तं णेयव्वं। इयाणिं इंदिएसु एगिंदियबितिचउरिंदियाणं णिरयाउगं, देवाउगं, णिरयगई, देवगई तेसिं चेव[1] आणुपुव्वीओ, वेउव्वियं आहारगं, तेसिं अंगोवंगाणि, तित्थकरणामं च अप्पाओग्गाणि। एयाओ एक्कारसपगईओ मोत्तूण सेसं णवुत्तरं पगइसयं, एत्थ सामित्तं णेयव्वं। पंचिंदियाणं जहा ओघो। एवं कायाइकेसु जाणित्तु जोग्गाजोग्गं सामित्तं भाणियव्वं ति। अहवा बंधसामित्तं वि जओ एत्थ पढियव्वो॥ **पगइबंधो समत्तो** ॥५१॥

इयाणिं ठिइबंधस्स अवसरो पत्तो तं भण्णइ, तत्थ ठिइबंधे पुव्वं गमणिज्जाणि चत्तारि अणुओगदाराणि तंजहा– [111]'ठिइबंधट्ठाणपरूवणा, णिसेगपरूवणा, अबाहाकण्डयस्स परूवणा, अप्पाबहुगं ति,

(१११) **'ठिइबंधठाणे'** त्यादि। इह स्थितिबन्धाधिकारेऽनुयोगद्वाराणि स्थितिबन्धस्थानप्ररूपणादीनि।

1 'तेसु आणुपुव्वीओ' इति मु.।

एयाणि जहा [111]कम्मपगडिसंगहणीए। [112]अद्धाच्छेदं करिस्सामि तत्थपढमं मूलपगईणं भण्णइ

सत्तरि कोडाकोडी अयराणं होइ मोहणीयस्स । तीसं आइतिगंते वीसं नामे य गोए य ॥१॥

तेत्तीसुदही आउंमि केवला होइ एवमुक्कोसा । मूलपयडीण एत्तो ठिई जहन्नो निसामेह ॥२॥

व्याख्या—'सत्तरि' त्ति, 'तेत्तीसु' त्ति णाणावरणीयदंसणावरणीयवेयणीयअंतराइगाणं एएसिं चउण्हं कम्माणं उक्कोसतो ठिइबंधो तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, तिन्नि वाससहस्साणि

---

(११२) अयमेव शिवशर्मसूरिः 'कर्मप्रकृतिसंग्रहण्यां' विस्तरतो निर्दिष्टवानिति नात्राधिकृतानि, तत्सापेक्षतयैवास्य बन्धशतकस्य प्रकृतार्थगमकत्वात् । यदुक्तं तत्र—

एवं बंधणकरणे, परूविए सह हि बन्धसयगेण ।

बंधविहाणाहिगमो, सुहमभिगंतुं लहुं होइ ॥

[श्री कर्मप्रकृति० बन्धनकरणे, गा. १०२]

स्वरूपमात्रं पुनरेषामेतद्–स्थितिर्ज्ञानावरणादिनामवस्थानकालः । तस्या बन्धस्थानानि बन्धप्रकाराः स्थितिबन्धस्थानानि । यथा नरकायुषो वर्षसहस्रदशलक्षणा स्थितिरेकं स्थितिबन्धस्थानं, सैव समयाधिका द्वितीयं, द्विसमयाधिका च तृतीयं, एवमेकैकसमयवृद्ध्या तावदपरापरं स्थितिबन्धस्थानं यावदुत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि । एवं सर्वेषामपि ज्ञानावरणादिकर्मणां स्वजघन्यस्थितिबन्धाद्यावदुत्कृष्टस्थितिस्तावदन्तरा समयवृद्ध्याऽपरापरस्थितिबन्धस्थानसंभवो भावनीयः । प्ररूपणा चैषां प्रतिजीवस्थानमनेकधा प्रतिपादनमिति ।

निषेकः कर्मणामुदयार्थं प्रदेशविन्यासक्रमः । यथा—

मोत्तूण सगमबाहं, पढमाए ठितीए बहुतरं दव्वं ।

एत्तो विसेसहीणं,जावुक्कोसं तु सव्वासिं ।। ति ।

[कर्मप्र० बंधनकरणे गा. ८३]

अबाधाऽनुदयकालः । सा च बन्धसमयोत्तरकालं जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तम् । उत्कृष्टतो यस्य यावत्यः सागरोपमकोटीकोटयो ज्ञानावरणादेः स्थितिस्तस्य तावन्ति वर्षशतानीति । कण्डकश्च स्थितिकण्डकः, पल्योपमाऽसंख्येयभागप्रमाणं स्थितिखण्डमित्यर्थः । आबाधोपलक्षितः स्थितिकण्डकः, अबाधाकण्डकः । इदमुक्तं भवति-यदा ज्ञानावरणादेरुत्कृष्टाऽबाधा तदा तस्य स्थितिरुत्कृष्टा वा समयहीना वा यावत्पल्योपमाऽसंख्येयभागेनापि स्यात् । यदि पुनरबाधा समयो[ना] तदाऽवश्यं स्थितिः कण्डकेनोनेति । एवं द्व्यादिसमयेनोनायामबाधायां स्थितेरवश्यं द्व्यादिकण्डकपातो वक्तव्यः । यावज्जघन्याऽबाधा । तदुपरि च जघन्याबाधकस्थितिरिति । उक्तं च–

मोत्तूणमाउगाइं, समए समए अबाहहाणीए ।

पल्लासंखियभागं, कंडं कुण अप्पबहुमेसिं ।। [कर्मप्र० बंधनकर० गा. ८५]

अल्पबहुत्वमल्पबहुभावः । तज्जघन्योत्कृष्टस्थितिबन्धाऽबाधाकण्डकादिपदसमुदायस्य परस्परं यथासंभवमिति । सर्वत्र च पश्चात् प्ररूपणाशब्देन षष्ठीसमासः ।

(११३) अद्धाच्छेदं तु स्थितिबन्धस्थानप्ररूपणान्तर्गतमप्युपरि बहूपयोगितया साक्षाच्चूर्णिकृन्निर्दिशति 'अद्धा छेयं करिस्सामि' त्ति । अद्धाच्छेदः कालप्रमाणं ।

अबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो। मोहणिज्जस्स कम्मस्सुक्कोसो ठितिबंधो सत्तरि-सागरोवमकोडाकोडीओ, सत्तवाससहस्साणि अबाधा, अबाहूणिया कम्मठिती कम्मणिसेगो। णामगो-त्ताणं उक्कोसओ ठिइबंधो वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, बे वाससहस्साणि अबाहा, अबाहूणिया कम्मठिती कम्मणिसेगो। आउगस्स उक्कोसओ ठितीबंधो तेत्तीसं सागरोवमाणि पुव्वकोडितिभा-गब्भहियाणि, पुव्वकोडितिभागो अबाहा, अबाहाए विणा कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो।

इयाणिं जहन्निया भन्नइ—

बारस अंत[होइ]मुहुत्ता वेयणिए अट्ठ नामगोयाणं। सेसाणंतमुहुत्तं खुड्डभवं आउए जाण॥ १॥

व्याख्या—'बारस' त्ति णाणदंसणावरणमोहणिज्जंतराइगाणं जहन्नओ ठिइबंधो अन्तोमुहुत्तं, अन्तोमुहुत्तं अबाहा, अबाहूणिता कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो। वेयणिज्जस्स जहन्नओ ठिइबंधो बारस मुहुत्ताणि, अंतोमुहुत्तमबाहा, अबाहूणिता कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो। णामगोत्ताणं जहन्नओ ठिइबंधो अट्ठमुहुत्ताणि, अंतोमुहुत्तमबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो। आउगस्स जहन्नओ ठिइबन्धो खुड्डगभवग्गहणं, अन्तोमुहुत्तमबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिइकम्मणिसेगो॥ १॥

इयाणिं उत्तरपगईणं उक्कोसओ अद्धाच्छेओ; तंजहा-पंचण्हं णाणावरणीयाणं, नवण्हं दंसणा-वरणीआणं, असायावेयणीयस्स, पंचण्हमंतराइगाणं उक्कोसओ ठिइबन्धो तीसं सागरोवमकोडाको-डीओ, तिन्नि वाससहस्साणि अबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो। सायवेयणीयइत्थिवेय-मयगइमणुयाणुपुव्वीणं उक्कोसओ ठिइबन्धो पन्नरससागरोवमकोडाकोडीओ, पन्नरसवाससयाणि अबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो। मिच्छत्तस्स उक्कोसओ ठिइबन्धो सत्तरिसागरोवम-कोडाकोडीओ, सत्तवाससहस्साणि अबाहा, अबाहूणिया ठिई णिसेगो। सोलसकसायाणं उक्कोसओ ठिइबन्धो चत्तालीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, चत्तारि वाससहस्साणि अबाहा, अबाहूणिया ठिई णिसेगो। नपुंसकवेयअरइसोगभयदुगंछाणिरयगइतिरियगइएगिंदियपंचिंदियजाइओरालियवेउव्विय-तेयकम्मइगसरीरहुंडसंठाणओरालियवेउव्वियंगोवंगसेवट्ठसंघयणवन्नगंधरसफासणिरयाणुपुव्वितिरि-याणुपुव्विअगुरुलहुउवघायपराघायऊसासआयवउज्जोयअपसत्थविहायगइतसथावरबायरपज्जत्तगपत्तेय-अथिरअसुभदुभगदुस्सरअणाएज्जअजसकित्तिणिम्माणणीयागोयाणं उक्कोस्सगो ठिइबन्धो वीसं सागरो-वमकोडाकोडीओ, दोवाससहस्साणि अबाहा, अबाहूणिया ठिई णिसेगो। पुरिसवेयहासरइदेवगइसम-चउरंससंठाणवज्जरिसभणारायसंघयणदेवगइआणुपुव्विपसत्थविहायगइथिरसुभसुभगसुस्सरआएज्जजस-कित्तिउच्चागोयमिति एएसिं कम्माणं उक्कोसगो ठिइबन्धो दससागरोवमकोडाकोडीओ, दसवाससयाणि अबाहा, अबाहूणिया ठिई णिसेगो। णग्गोहसंठाणरिसहणारायसंघयणाणं उक्कोसओ ठिइबन्धो बारससा-गरोवमकोडाकोडीओ, बारसवाससयाणि अबाहा, अबाहूणिया ठिई णिसेगो। साईसंठाणणारायसंघयणाणं उक्कोसिओ ठिइबन्धो चोद्दससागरोवमकोडाकोडीओ चोद्दसवाससयाणि अबाहा, अबाहूणिया ठिई

णिसेगो। खुज्जसंठाणअद्धनारायसंघयणाणं उक्कोसओ ठिइबन्धो सोलससागरोवमकोडाकोडीओ सोलसवाससयाणि अबाहा, अबाहूणिया ठिई णिसेगो । वामणसंठाणखीलियसंघयणबेइंदियतेइंदियचउरिंदियजाइसुहुमअपज्जत्तगसाहारणणामाणं उक्कोसओ ठिइबन्धो अट्ठारससागरोवमकोडाकोडीओ अट्ठारसवाससयाणि अबाहा अबाहूणिया कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो । आहारगसरीरअंगोवंगतित्थकरणामाणं उक्कोसओ ठिइबन्धो अंतोकोडाकोडी, अंतमुहुत्तमबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिई कम्मनिसेगो। देवणिरयाउगाणं उक्कोसगो ठिइबन्धो तेत्तीसं सागरोवमाणि पुव्वकोडितिभागहियाणि, पुव्वकोडितिभागो अबाहा, अबाहाए विणा कम्मठिई कम्मणिसेगो । मणुयतिरियाउगाणं उक्कोसठिई तिन्नि पलिओवमाणि पुव्वकोडितिभागसहियाणि, पुव्वकोडितिभागो अबाहा, अबाहाए विणा कम्मठिई कम्मणिसेगो । उक्कोसो अद्धाच्छेओ सम्मत्तो ॥ इयाणि जहन्नओ अद्धाच्छेओ-पंचण्हं णाणावरणाणं चउण्हं दंसणावरणाणं लोभसंजलणस्स पंचण्हमंतराइगाणं जहन्नतो ठिइबंधो अंतोमुहुत्तिओ, अंतोमुहुत्तमबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो । थीणगिद्धितिगनिद्दापयलाअसायावेयणीयाणं जहन्नओ ठिइबंधो सागरोवमस्स तिन्नि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणूणया, अंतोमुहुत्तमबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिती कम्मणिसेगो । सायावेयणीयस्स जहन्नो ठिइबंधो बारसमुहुत्तिओ, अंतोमुहुत्तमबाहा, अबाहाए विणा ठिई णिसेगो । मिच्छत्तस्स जहन्नओ ठिइबंधो सागरोवमस्स सत्त सत्तभागा, पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणया अंतोमुहुत्तमबाहा अबाहूणिया कम्मठिई कम्मनिसेगो । संजलणवज्जाणं बारसण्हं कसायाणं जहन्नओ ठिइबंधो सागरोवमस्स चत्तारि सत्तभागा पलिओवमासंखभागेण ऊणया, अंतोमुहुत्तमबाहा । कोहसंजलणाए जहन्नओ ठिइबंधो बे मासा, अंतोमुहुत्तमबाहा । माणसंजलणाए जहन्नओ ठिइबन्धो मासो, अंतोमुहुत्तमबाहा । मायासंजलणाए जहन्नओ ठिइबंधो अद्धमासो, अंतोमुहुत्तमबाहा । पुरिसवेयस्स जहन्नओ ठिइबन्धो अट्ठवासाणि अंतोमुहुत्तमबाहा । पुरिसवेयवज्जाणं णोकसायाणं मणुयतिरियगइ(इगदुतिचउ) पंचेंदियजाइओरालियतेयकम्मइगसरीरं, छण्हं संठाणाणं, ओरालियअंगोवंगं, छण्हं संघयणाणं, वण्णाइ४तिरियमणुयाणुपुव्विअगुरुलहुउवघातपराघातउसासआयावउज्जोयपसत्थापसत्थदोविहायगइतसथावराइवीसं जसवज्जं णिम्माणं णीयगोयाणं जहन्नओ ठिइबन्धो सागरोवमस्स बेसत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणूणया अंतोमुहुत्तमबाहा । [114]देवगइनिरयगइवेउव्वियसरीरवेउव्वियअंगोवंगणिरयदेवाणु-

(११४) 'देवगई' इत्यादि । पल्योपमसंख्येयभागोनौ सागरोपमसहस्रस्य द्वौ सप्तभागाविति जघन्यतोऽपि वैक्रियषट्कस्य स्थितिबन्धप्रमाणमुक्तं । तत्तीर्थंकरयशःकीर्त्याहारकद्वयशेषनामजघन्यस्थितिबन्धापेक्षयाऽस्य सहस्रगुणत्वात् । यतो ह्यसावसंज्ञिपञ्चेन्द्रियेष्वेव, स चैकेन्द्रियबन्धापेक्षया सहस्रगुण एकेन्द्रियस्थितिबन्धश्च शेषनाम्नां जघन्यस्थितिबन्धः । यदुक्तम्—

वग्गुक्कोसठितीणं, मिच्छत्तुक्कोसएण जं लद्धं ।
सेसाणं तु जहन्नो, पल्लासंखेज्जगेणूणो ॥

पुव्वीणं एएसिं कम्माणं जहण्णो ठिइबंधो卐सागरोवमस्स बेसत्तभागा सहस्सगुणिया 卐पलिओवमस्स संखेज्जतिभागेणूणया, अंतोमुहुत्तमबाहा । एयं असन्निसु लब्भइ । अणियट्टिखवग्गइसु जाणि कम्माणि लब्भंति ताणि मोत्तूण सेसाणि बायरएगिंदियपज्जत्तगंमि लब्भंति । आहारकसरीरआहारकांगोवंगतित्थकरणामाणं जहन्नो ठिइबन्धो अंतोकोडाकोडी,अंतोमुहुत्तमबाहा । उक्कोसाओ संखेज्जगुणहीणो जहन्नओ ठिइबंधो । जसकित्तिउच्चागोयाणं जहन्नओ ठिइबन्धो अट्ठमुहुत्ता, अंतोमुहुत्तमबाहा । (सव्वत्थ अबाहाए विणा कम्मठिई कम्मनिसेगो) । देवणिरयाउगाणं जहन्नओ ठिइबंधो दसवाससहस्साणि, अंतोमुहुत्तमबाहा, अबाहाए विणा कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो ।। मणुयतिरियाउगाणं जहन्नओ ठिइबंधो खुड्डाभवग्गहणं, अंतोमुहुत्तमबाहा, अबाहाए विणा कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो । जहन्नओ अद्धाच्छेओ सम्मत्तो ।

इयाणिं मूलुत्तरपगईणं साइअणाइपरूवणा भन्नइ–

मूलठिईण अजहन्नो सत्तण्हं साइयाइओ बंधो ।
सेसतिगे दुविगप्पो आउचउक्केवि दुविकप्पो ॥ ५२ ॥

व्याख्या—'**मूलठिईण अजहन्नो**' मूलपगईणं ठिई मूलठिई । पुव्वं ताव जहन्नाईणं

एसेगिंदियडहरो, सव्वासिं पुण संजुओ जेट्ठो ।
पणुवीसं पण्णासं, सयं सहस्सं च गुणकारो ।।
कमसो विगल असन्नीण, पल्लसंखेज्जभागहाइयरो । इति।

[कर्मप्र० बंधनक,गा.७९–८०]

अस्यार्थः । वर्गःसमुदायो नामकर्मवर्गवत्कषायवर्गवद्वा,तेषामुत्कृष्टस्थितयो विंशतिचत्वारिंशत्सागरोपमकोटीकोटयादिकास्तासां मिथ्यात्वोत्कृष्टस्थित्या सप्ततिकोटीकोटिप्रमाणया भागेऽपहृते यल्लब्धमेकसागरोपमद्विसप्तभागादिकं तत्किमित्याह-शेषाणां ज्ञानावरणपञ्चकान्तरायपञ्चक-दर्शनावरणचतुष्टय-पुरुषवेद-संज्वलनचतुष्टय-यशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रेभ्यो यथासंभवमनिवृत्तिबादरसम्पराय-सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानयोः प्राप्तजघन्यस्थितिबन्धिभ्यः,आहारकद्विक-तीर्थंकरनामकर्मभ्यश्चाऽपूर्वकरणसम्पन्नजघन्यस्थितिबन्धिभ्यः, आयुःकर्मभ्यश्च विलक्षणानां जघन्यः सर्वस्तोकः स्थितिबन्धः कीदृशः सन्नित्याह-'पल्योपमासंख्येयभागोनः' साम्प्रतमुमेवैकेन्द्रियादिषु जघन्यमुत्कृष्टं च बन्धं निरूपयन्नाह- एष एवैकेन्द्रियाणां 'डहरो'-जघन्यः, कासामित्याह–सर्वासामेकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धानां प्रकृतीनां, तथाऽयमेव ऊनेन पल्योपमासंख्येयभागलक्षणेन संयुक्तः एकेन्द्रियाणामेव ज्येष्ठो भवति । तथा तेषामेवैकेन्द्रियाणामुत्कृष्टस्थितिबन्धस्य द्वीन्द्रियादिषु चतुर्षु जीवस्थानेषूत्कृष्टबन्धचिन्तायां क्रमेण पञ्चविंशतिः, पञ्चाशत् शतं सहस्रं च गुणकाराः क्रियन्ते । तत एतेषु जीवस्थानकेषु पञ्चविंशत्यादिप्रमाणसागरोपमसहस्रस्य द्वौ सप्तभागौ द्विसप्तभागादिक उत्कृष्टस्थितिबन्धः संपद्यते । अय(य)मेव च पल्योपमसंख्येयभागहीनस्तेषां जघन्यः । ततः सिद्धमिदं सागरोपमसहस्रस्य द्वौ सप्तभागौ पल्योपमा(म)संख्येयभागहीनावसंज्ञिन एव जघन्यो वैक्रियषड्बन्ध इति।।

卐 ....卐 अत्र 'सागरोपम सहस्सबेसत्तभागा' इति जे. प्रतौ । 1 'असंखेज्जइभागेणूणया' इति मु. ।

लक्खणं भन्नइ–जओ अण्णो खुड्डलतरगो ठिइबंधो नत्थि त्ति सो जहन्नओ ठिइबंधो वुच्चइ, तं मोत्तूणं सेसो सव्वो समयाहिगाइओ अजहन्नो ठिइबंधो ताव जाव उक्कोसगो त्ति । एएसु दोसु सव्वे ठिइविसेसा पविट्ठा । जओ अन्नो उक्कोसतरो ठिइबंधो णत्थि त्ति सो उक्कोसो, तं मोत्तूणं सेसो सव्वो समयाइणा ऊणो ताव जाव जहन्नो त्ति सो अणुक्कोसो वुच्चइ । एएसु वा दोसु सव्वे ठिइविसेसा पविट्ठा । एएण अट्ठपदेण मूलपगईणं आउगवज्जाणं सत्तण्हं अजहन्नओ ठिइबंधो साइयाइचउविगप्पो लब्भइ । कहं ? भन्नइ, मोहवज्जाणं छण्हं जहन्नओ ठिइबंधो सुहुमरागखवगस्स चरिमो ठिइबंधो, सो य साइओ अधुवो य । कहं ? भन्नइ, खवगस्स सव्वथोवाओ अजहन्नठिइबंधाओ, जहन्नठिइबंधं संकमंतस्स जहन्नस्स साइओ, तओ बंधोवरमे जहन्नस्स अधुवो, तं मोत्तूणं सेसो अजहन्नो, सुहुमोवसामगम्मि तओ दुगुणो ठिइबंधो त्ति अजहन्नो । उवसंतकसायस्स बंधो णत्थि, तओ पुणो परिवडंतस्स अजहन्नठिइबंधो साइओ । बंधोपरमो जेण ण कयपुव्वो तस्स अणाइओ । धुवो अभव्वस्स बंधो, जओ बंधवोच्छेयं जहन्नगं वा ठिइबंधं ण करेहि त्ति । अद्धुवो भव्वाणं, णियमा बंधवोच्छेयं काहिंति त्ति । एवं मोहणिज्जस्सवि । णवरि सव्वजहन्नो अणियट्टिखवगस्स चरमो ठिइबंधो तओ भावेयव्वं । 'सेसतिगे दुविगप्पो' उक्कोसअणुक्कोसजहन्नगेसु दुविगप्पो, साइओ अद्धुवो य । जहन्नगे दुविगप्पे कारणं पुव्वुत्तं । उक्कोसो ठिइबंधो सत्तण्हवि सन्निम्मि मिच्छदिट्ठिम्मि सव्वसंकिलिट्ठमि लब्भइ, सो साइओ अद्धुवो य । कहं ? [समयाओ] आढत्तो अंतोमुहुत्ताओ णियमा फिट्टइ त्ति, तओ परिवडंतस्स अणुक्कोसस्स साइओ, पुणो जहन्नेणं अंतोमुहुत्तेणं उक्कोसेणं अणंताहिं ओसप्पिणिउस्सप्पिणीहिं उक्कोसं ठिइं बंधमाणस्स अणुक्कोसस्स अद्धुवो, उक्कोसस्स साइओ, पुणो अद्धुवो, एवं उक्कोसाणुक्कोसेसु परिभमंति त्ति दोण्हवि साइओ अद्धुवो य । सेसा धुवअणाइयबंधा ण संभवंति । 'आउचउक्केवि दुविगप्पो' त्ति उक्कोसो अणुक्कोसो जहन्नो अजहन्नगो य ठिइबंधो साइगो अद्धुवो य, अद्धुवबंधादेव ॥५२॥

इयाणिं उत्तरपगईणं भन्नइ–

अट्ठारसपयडीणं अजहन्नो बंध[1]चउविगप्पो य ।
[2]साईअअधुवबंधो सेसतिगे होइ बोद्धव्वो[3] ॥५३॥

व्याख्या–'अट्ठारसपगईणं अजहन्नो बंधोचउविगप्पो' त्ति, पंचण्हं णाणावरणीयाणं, चउण्हं दंसणावरणीयाणं, चउण्हं संजलणाणं, पंचण्हमंतराइगाणं, एएसिं अट्ठारसण्हं अजहन्नओ ठिइबंधो साइयाइचउविगप्पो लब्भइ । कहं ? भन्नइ, णाणावरणाणं दंसणावरणाणं अंतराइयाणं जहन्नओ ठिइबंधो सुहुमसंपरायखवगस्स चरमे ठिइबंधे लब्भइ, सो साइगो अद्धुवो य । उवसामगम्मि अजहन्ने बंधे वोच्छिन्ने पुणो बंधंतस्स साइओ बंधो, तं ठाणमपत्तपुव्वस्स अणाइओ, धुवो

1 बंधो 2 सातितभद्धुव 3 दुविगप्पो इति मुद्रितप्रतिगतपाठान्तराणि ।

अभव्वस्स, अद्धुवो भव्वस्स । संजलणचउक्करस अणियट्टिखवगंमि अप्पप्पणो बंधवोच्छेयकाले जो ठिइबंधो सो सव्वजहन्नो, सेसो अजहन्नो तओ भावेयव्वं । एएसिं अट्ठारसण्हं जहन्नओ ठिइबंधो खवगसेढिं मोत्तूण अन्नहिं ण लब्भइ त्ति साईयाईणि लद्धाणि । **'साईअअधुवबंधो सेसतिगे होइ'** उक्कोसाणुक्कोसजहन्नगेसु ठिइबंधेसु साइगो अद्धुवो य लब्भइ । कहं ? भन्नइ, जहन्नगे कारणं पुव्वुत्तं । उक्कोसाणुक्कोसा जहा मूलपगईणं तहा चेव भाणियव्वा ॥५३॥

उक्कोसाणुक्कोसो जहन्नमजहन्नगो य ठिइबंधो ।
साईअअधुवबंधो सेसाणं होइ पयडीणं ॥५४॥

व्याख्या-**'उक्कोसाणुक्कोसो'** त्ति उक्कोसगोवि, अणुक्कोसगोवि, जहन्नगोवि, अजहन्नगोवि ठिइबंधो भणियसेसाणं सव्वपगईणं साइगो अद्धुवो य । कहं ? भन्नइ, थीणगिद्धितिगं णिद्दा पयला मिच्छत्तं आइमा बारसकसाया भयदुगुंच्छाणामधुवबंधिणो णव, तंजहा-तेजइगकम्मसरीरवन्नाइ ४ अगुरुलघुउवघायणिम्माणमिति एगूणतीसा। एएसिं सव्वेसिं जहन्नगो ठिइबंधो बायरएगिंदियम्मि पज्जत्तगंमि सव्वविसुद्धम्मि लब्भइ, अंतोमुहुत्तमेत्तं कालं, पुणो संकिलिट्ठो अजहन्नं बंधइ, पुणो विसुद्धो कालंतरेण वा तंमि चेव भवे, अन्नभवे वा जहन्नगं बंधइ, एवं जहन्नाजहन्नपरिवत्तणं करेन्ति त्ति दोण्ह वि साइओ अद्धुवो य ठिइबंधो । एएसिं उक्कोसो सन्निम्मि मिच्छादिट्ठिम्मि पज्जत्तगसव्वसंकिलिट्ठंमि लब्भइ अंतोमुहुत्तमेत्तं कालं, पुणो विसुद्धो अणुक्कोसं बंधइ, पुणोवि संकिलिट्ठो तब्भवे वा अन्नभवे वा वट्टमाणो उक्कोसं बंधइ, एवं उक्कोसाणुक्कोसेसु परिवत्तणं साइगो अद्धुवो य सव्वत्थ । सेसाणं परियत्तमाणीणं सव्वपगईणं अद्धुवबंधित्तादेव सव्वत्थ साइओ अद्धुवो य ठिइबंधो ॥५४॥ एवं साइयाइ परूवणा कया, इयाणिं ठिईणं शुभाशुभनिरूवणत्थं भन्नइ—

सव्वासिंपि ठिईओ सुभासुभाणंपि होंति असुभाओ ।
माणुसतिरिक्खदेवाउगं च मोत्तूण सेसाणं ॥ ५५ ॥

व्याख्या-**'सव्वासिंपि ठिईओ सुभासुभाणंपि होंति असुभाओ'** त्ति सव्वासिं कम्मपगईणं सुभाणं असुभाणं च ठिईओ सव्वाओ असुभा चेव । कहं ? भन्नइ, कारणाशुद्धत्वात् , किं तं कारणं ? भन्नइ, संकिलेसो कारणं, संकिलेसवुड्ढिओ ट्ठिइवुड्ढि भवइ, संकिलेसो य कसाया, तद्वृद्धौ स्थितिवृद्धिरिति, तस्मात्कारणाशुद्धत्वात् कार्यमप्यशुद्धं, यथा-अप्रशस्तद्रव्यकृतघृतपूर्णवत् । अन्नेणावि कारणेण पसत्थावि अपसत्थाओ भवन्ति । कहं ? नीरसत्ताओ जत्तियं २ ठिई वड्ढेइ, तत्तियं २ शुभकम्माणि णीरसाणि भवंति, रसगालितेक्षुयष्टिवत् । अप्पसत्थाणं कम्माणं ठिइवुड्ढीओ रसो वड्ढइ त्ति । तम्हा सुभाणं असुभाणं च ठिईओ असुभाओ चेव । अइप्पसत्तं लक्खणंति तस्स अववाओ वुच्चइ **'माणुसतिरिक्खदेवाउगं च मोत्तूण सेसाणं'** ति त्ति मणुयाउगं तिरिक्खाउगं देवाउगं च मोत्तूण सेसाणं सव्वपगईणं ठिईओ असुभाओ सव्वाओ ।

एएसिं तिण्हंपि ठिईओ सुभाओ, कहं ? कारणशुद्धत्वात्[1], किं तं कारणं ? विसोही, विसोहितो एएसिं कम्माणं ठिईओ वड्ढंति त्ति सुभाओ, यथा शुभद्रव्यनिष्पन्नमोदकवत् । अन्नं च कारणं एएसिं ठिइवुड्ढीओ अणुभागो वड्ढइ सो य सुभकारणंति ॥५५॥

इयाणिं सव्वासिं उक्कोसठिई जहन्नठिई य केण णिव्वत्तिजइ त्ति तं णिरूवणत्थं भन्नइ--

सव्वट्ठिईणमुक्कोसगो उ उक्कोससंकिलेसेणं ।

विवरीए उ जहन्नो आउगतिगवज्जसेसाणं ॥५६॥

व्याख्या-'**सव्वट्ठिईणमुक्कोसगो उ उक्कोससंकिलेसेणं**' ति सव्वपगईणं उक्कस्सओ ठिइबंधो सव्वुक्कस्ससंकिलेसेणं भवइ त्ति । जे जे सव्वपगईणं बंधका तेसु तेसु जो जो सव्वसंकिलिट्ठो सो सो उक्कोसं ठिइं बंधइ सव्वपगईणं । '**विवरीए उ जहन्नो**' त्ति सव्वपगईणं भणियविवरीयाओ जहन्नगो ठिइबंधो भवइ । कहं ? भन्नइ, जे जे सव्वपगईणं बंधका तेसु तेसु जो जो सव्वविसुद्धो सो सो सव्वपगईणं जहन्नगं ठिइं बंधइ । '**आउगतिगवज्जसेसाणं**' ति पुव्वुत्तं आउगतिगं मोत्तूणं सेसाणं पगईणं एस विही । तिण्हंपि आउगाणं उक्कोसं जहन्नगं विवरीयं । कहं ? तब्बंधकेसु जो जो सव्वविसुद्धो सो सो सव्वुक्कस्सियं ठिइं बंधइ, तेसु चेव जो जो सव्वसंकिलिट्ठो सो सो सव्वजहन्नियं सव्वासिं ठिइं बंधइ, जहा जहा ठिई हस्सति तहा तहा अणुभागो हस्सइ ॥५६॥

इयाणिं उक्कोससामित्तणिरूवणत्थं भन्नइ--

सव्वुक्कोसठिईणं मिच्छादिट्ठी उ बंधओ भणिओ ।

आहारगतित्थयरं देवाउं वा विमुत्तूणं ॥५७॥

व्याख्या-'**सव्वुक्कोसठिईणं**' ति सव्वासिं पगईणं उक्कोसं ठिइं मिच्छद्दिट्ठी सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तो सव्वसंकिलिट्ठो बंधइ । कहं ? भन्नइ, जे जे बंधका सव्वेसिं तेसिं मिच्छद्दिट्ठी सव्वसंकिलिट्ठतरो त्ति काउं । '**आहारगतित्थयरं देवाउं वा विमोत्तूणं**' ति आहारगतित्थकरणामाणं मिच्छद्दिट्ठिम्मि बंधो गुणपच्चयो णत्थि । देवाउगस्स उक्कोसं ठिइं ण बंधइ, कहं ? भण्णइ, सव्वट्ठसिद्धिए देवाउगस्स उक्कोसा, तंमि मिच्छद्दिट्ठी ण उववज्जइ त्ति उक्कोसं ण बंधइ ॥५७॥

एयासिं तिण्हं उक्कोसं को बंधइ त्ति तं णिरूवणत्थं भन्नइ—

देवाउयं पमत्तो आहारगमप्पमत्तविरओ उ ।

तित्थयरं च मणुस्सो अविरयसम्मो समज्जेइ ॥५८॥

व्याख्या-'**देवाउयं पमत्तो**' त्ति देवाउगस्स उक्कोसं ठिइं पमत्तसंजओ पुव्वकोडितिभागाइसमए वट्टमाणो अप्पमत्ताभिमुहो बंधइ । अप्पमत्तो उक्कोसं किं ण बंधति त्ति चेत् ? तदु-

1 'कारणसुभत्वात्' इति पु. ।

च्यते. अप्पमत्तो आउगं बंधिउं णाढवेइ[1] पमत्तेणाढत्तं अप्पमत्तो बंधइ त्ति सो य उक्कोसठिइयं बंधो एक्कं समयं लब्भइ; परओ अबाहापरिहाणि त्ति न लब्भइ । 'आहारगमप्पमत्तविरओ' त्ति आहारगदुगस्स उक्कोसं ठिइं अप्पमत्तसंजओ पमत्ताभिमुहो तब्बंधकेसु सव्वसंकिलिट्ठो बंधइ। 'तित्थयरं च मणुस्सो अविरयसम्मो समज्जेइ' त्ति तित्थकरणामस्स उक्कोसं ठिइं मणुस्सो असंजओ वेयगसम्मद्दिट्ठी पुव्वं नरगबद्धाउगो णिरयाभिमुहो मिच्छत्तं पडिवज्जहि त्ति अंतिमे ठिइबंधे वट्टमाणो बन्धइ, तब्बंधकेसु [2]अच्चंतसंकिलिट्ठो त्ति काउं । जो संमत्तेण खइगेणं णरगं गच्छइ सो तत्तो विसुद्धतरो त्ति तम्मि उक्कोसो ण भवइ । 'समज्जेइ' त्ति बंधइ ॥५८॥

पुव्वं मिच्छद्दिट्ठी सव्वपगईणं उक्कोसं ठिइं बंधइ त्ति सामन्नेणं भणियं इयाणिं मिच्छदिट्ठीसुवि विभागदरिसणत्थं भन्नइ--

पन्नरसण्हं ठिइमुक्कोसं बंधंति मणुयतेरिच्छा।
छण्हं सुरनेरइया ईसाणंता सुरा तिण्हं ॥५९॥

व्याख्या-'पन्नरसण्हं ठिइमुक्कस्सं बंधंति मणुयतेरिच्छ' त्ति देवाउगवज्जाणि तिन्नि आउगाणि, णिरयगई देवगई, बेइंदियतेइंदियचउरिंदियजाइवेउव्वियसरीरं, वेउव्वियंगोवंगं, णिरयदेवाणुपुव्वी सुहुमं अपज्जत्तगं साहारणमिति एएसिं पन्नरसण्हं [3]कम्माणं उक्कोसं ठिइं तिरियमणुया मिच्छद्दिट्ठिणो बंधंति । कहं देवणेरइगा ण बंधंति इति चेत् ? भन्नइ, तिरियमणुयाउगं मोत्तूणं सेसाओ सव्वपगईओ देवणेरइगा तेसु ण उववज्जंति त्ति ण बंधंति । तिरियमणुयाउगाणं उक्कोसठिई देवकुरुउत्तरकुरुसु तेसु देवणेरइगा न उववज्जंति त्ति काउं उक्कोसठिइं ण बंधंति । तम्हा पंचिंदियतिरिक्खो मणुओ वा मिच्छद्दिट्ठी तप्पाओगविसुद्धो पुव्वकोडितिभागाइसमए वट्टमाणो मणुयतिरियाउगाणं उक्कोसं ठिइं बंधइ । अच्चंतविसुद्धस्स ण बंधो एइ, तिरियमणुया सम्मद्दिट्ठी एताणि ण बंधंति । णिरयाउगस्सवि एए चेव, णवरि तप्पाओगसंकिलिट्ठो बंधइ, अच्चंतसंकिलिट्ठो आउगं न बंधइ । णिरयदुगवेउव्वियदुगाणं अच्चंतसंकिलिट्ठो वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ बंधमाणो उक्कोसं ठिइं बंधइ । देवदुगविगलतिगसुहुमतिगाणं उक्कोसठिइं तप्पाओगसंकिलिट्ठो बंधइ, अच्चंतसंकिलिट्ठो णिरयपाओगं बंधइ त्ति तओ विसुद्धो तिरियपाओगं, तओ विसुद्धो मणुयपाओगं, तओ विसुद्धो देवपाउग्गंति । 'छण्हं सुरणेरइया' ति तिरियगई ओरालियसरीरं सेवट्ठसंघयणं ओरालियंगोवंगं तिरियाणुपुव्वी उज्जोवमिति एएसिं छण्हं कम्माणं उक्कोसगो ठिइबंधो देवणेरइगाणं भवइ । कहं? देवणेरइगा अच्चंतसंकिलिट्ठा पंचिंदियतिरियगइपाओग्गं बंधंति, तेसु वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ भवइ। एएसिं उक्कोसा ठिई । मणुयतिरिएसु अट्ठारससागरोवमकोडाकोडीओ।

1 'णाढप्पइ' इति मु. 2 'सव्वसंकिलिट्ठो' इति मु. प्रत्युल्लिखितं पाठान्तरम्। 3 'कम्माणं' इति मु. प्रतौ नास्ति।

कहं ? ते संकिलिट्ठा णिरयपाओग्गं बंधंति, तत्तो विसुद्धतरा मणुयगइपाओग्गंति । सेवट्टओरालियंगोवंगाणं ईसाणाओ उवरिल्ला देवा उक्कोसं ठिइं बंधंति. इसाणंतेसु ण भवइ, कहं ? ते अच्चंतसंकिलिट्ठा एगिंदियपाओग्गं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ बंधंति, तंमि एएसिं दोण्हं अट्ठारस भवंति, तओ विसुद्धतरो एयाओ बंधइ त्ति । **'ईसाणंता सुरा तिण्हं'** ति ईसाणाओ हेट्ठिल्ला देवाओ तिण्हं[1] एगिंदियआयवथावराणं उक्कोसं ठिइं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ बंधंति । कम्हा ? ते अच्चंतसंकिलिट्ठा एगिंदियपाओग्गं बंधंति त्ति । तओ विसुद्धा पंचिंदियतिरियपाओग्गं अट्ठारस, तओ विसुद्धतरा मणुयपाओग्गं पन्नरस त्ति । जेसिं कम्माणं देवणेरइगेसु उक्कोसा ठिई तेसिं तिरियमणुयाण अणुक्कस्सा, जेसिं कम्माणं तिरियमणुएसु उक्कस्सा ठिई, तेसिं कम्माणं देवणेरइगाणं अणुक्कस्सा ठिई । कहं ? तिरियमणुया अच्चंतसंकिलिट्ठा णिरयगइपाओग्गं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ बंधंति, तओ विसुद्धा तिरियगइपाओग्गं अट्ठारसकोडाकोडीओ, तओ विसुद्धा मणुयगइपाओग्गं पन्नरससागरोवमकोडाकोडीओ, तओ विसुद्धा देवगइपाओग्गं दस सागरोवमकोडाकोडीओ बंधंति, तओ विसुद्धा खुड्डतरागं जाव अंतोसागरोवमकोडाकोडी ॥५९॥

सेसाणं चउगइया ठिइमुक्कस्सं करेंति पगईणं ।
उक्कोससंकिलेसेण ईसिमहमज्झिमेणावि ॥ ६० ॥

व्याख्या—**'सेसाणं चउगइया ठिइमुक्कस्सं करेंति पगईणं'** ति भणियसेसाणं पंच णाणावरणं, नव दंसणावरणं, सायासायं, मोहणिज्ज सव्वं, णामंमि इमे मोत्तुं मणुअगइवज्जाओ तिन्नि गईओ, एयासिं चेवाणुपुव्वीओ, पंचिंदियजाइवज्जाओ चत्तारि जाईओ, तेयकम्मइगसरीरवज्जाणि तिन्नि सरीराणि, तिन्नि अंगोवंगाणि; असंपत्तसेवट्टं, आयवं, उज्जोवं, थावरं, सुहुमं, अपज्जत्तगं, साहारणं, तित्थकरनाममिति, एयाहिं विरहियाणि सव्वणामाणि, उच्चाणीयगोत्तं, पंच अंतराइगमिति । एयासिं सव्वासिं उक्कोसं ठिइबंधं चउगइयावि मिच्छदिट्ठी बंधंति, सव्वासुवि गईसु उक्कोसो संकिलेसो लब्भइ त्ति काउं । धुवबंधीणीणं ४७ [115]परियत्तमाणीणं असुभाणं

(११५) 'सेसाणं चउगइगे' ति गाथाचूर्णौ 'परियत्तमाणीणमसुभाण' मित्यादि । तत्र परिवर्तमाना अशुभा असद्वेद्य-नीचैर्गोत्रा-ऽस्थिरषट्काद्याः, एतदुत्कृष्टावस्थितिस्त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटयादिका । साताद्यास्तु तद्विपरीताः पञ्चदशकोटीकोटयादिस्थितयः । तासां च परिवर्तमानाऽशुभानामुत्कृष्टस्थितेस्त्रिंशत्कोटीकोटयादिप्रमाणाया सकाशाद्याः समयोनादय. स्थितयो वर्तन्ते, तन्मात्रस्थितीस्ता एवापरिवर्तमानाऽशुभप्रकृतीर्यावत्तद्व्रातीयाऽन्यप्रकृत्युत्कृष्टस्थितिबन्धस्थानं न प्राप्नोति तावत् तत्प्रायोग्यसंक्लेशेन बध्नातीति ।

1 'तिण्हं' इति जे. प्रतौ नास्ति ।

△असातनपुंसकशोकारतिनीचैर्गोत्रमप्रशस्तविहायोगतिअथिरछक्कं एते द्वादश १२ (हुंडसंठाण) △ पंचिंदियजाइपराघायउस्सासतसबायरपज्जत्तगपत्तेगाणं च उक्कोसं ठिइं सव्वसंकिलिट्ठो बंधइ । सायपुरिसित्थिवेदहासरतिउच्चागोयमणुयदुगहुंडासंपत्तवज्जसंघयणसंठाणदसगं पसत्थविहायोगति-थिराइछक्काणमेयासिं पणवीसाए तप्पाओग्गसंकिलिट्ठतरो त्ति । परियत्तमाणीणमसुभाणं उक्कोस-ठिईतो समयूणादिठिईओ जाव तज्जाइयं अन्नपगइउक्कोसठिइबंधठाणं ण पावइ ताव तप्पाओग्गसंकि-लेसेण ताओ चेव पगईओ तम्मत्तठिईओ बंधइ । तओ पडिनियत्ते परिणामे परियत्तमाणीणं सुभाणं उक्कोसठिति तप्पाओगसंकिलेसेणं बंधइ । 卐 एवमियरासिं पि पावरे पडिवक्खो णत्थि 卐 । 'उक्कोससंकिलेसेण ईसिमहमज्झिमेणावि' त्ति सव्वजहन्नगे ठिइठाणे ठिइबंध-ज्झवसाणठाणाणि असंखेज्जलोकाकासपदेसमेत्ताणि विसेसवुड्ढिणिप्फन्नाणि तिरियं वड्ढंति । तेहिं सव्वेहिं सव्वेव जहन्निया ठिई णिव्वत्तिज्जइ त्ति एकव्यापारनियुक्ताऽनेकशक्तिप्रचितपुरुषसमुदायवत् वारावारेण । ततो समयुत्तरं ठिइं णिव्वत्तेन्ति जाणि अज्झवसाणठाणाणि, ताणि अन्नाणि तेहिंतो विसे-साहियाणि । तओ वि समयुत्तरं ठिइं णिव्वत्तेन्ति जाणि अज्झवसाणाणि ताणि अन्नाणि तेहिंतो विसे-साहियाणि, विसेसवुड्ढीए तिरियं वड्ढंति । एवं णेयव्वं जाव दुचरिमुक्कोसिया ठिइ त्ति । दुचरिमु-क्कोसाओ सव्वुक्कोसं ठिइं णिव्वत्तेन्ति जाणि अज्झवसायठाणाणि ताणि अन्नाणि तेहिंतो विसेसाहि-काणि । तेण वुच्चति उक्कोससंकिलेसेणं जाणि संकिलेसठाणाणि उक्कोसठिइं णिव्वत्तेन्ति, तेसु सव्वं-तिमो उक्कोससंकिलेसो वुच्चइ, तेण उक्कोसियं ठिइं णिव्वत्तेन्ति '**ईसिमहमज्झिमेणावि**' त्ति तओ उक्कोससंकिलेसाओ ऊणऊणतराणि य ठिइबंधज्झवसाणठाणाणि, तेहिंपि तमेव उक्कसियं ठिइं णिव्वत्तेन्ति ते ईसिमज्झिमा वुच्चंति, [116]अहवा सव्वसंकिलेसे पडुच्च मज्झिमाईया ते चेव ईसि-मज्झिमा वुच्चंति, अहवा उक्कोसियं ठिइं णिव्वत्तेन्ति जाणि अज्झवसाणठाणाणि तेसु सव्वखुड्डगं ईषत् तेणावि तमेव उक्कोसियं ठिइं णिव्वत्तेन्ति, जहन्नुक्कोसाणं मज्झे जाणि अज्झवसाणठाणाणि ताणि मज्झिमाणि तेहिंतोवि तमेव उक्कोसियं ठिइं णिव्वत्तेन्ति ॥ ६० ॥

उक्कोससामित्तं समत्तं, इयाणिं जहन्नठिईसामित्तं भन्नइ—

आहारगतित्थयरं नियट्टिअनियट्टि पुरिससंजलणं ।
बंधइ सुहुमसरागो सायजसुच्चावरणविग्घं ॥६१॥

व्याख्या—'[1]**आहारगतित्थयरं णियट्टि**' त्ति आहारगदुगतित्थकरणामाणं जहन्नगं ठिइं '**णियट्टि**' त्ति अपुव्वकरणो तस्सवि खवगो चरिमे ठिइबंधे वट्टमाणो बंधइ, तब्बंधकेसु

(११६) '**अहवा सव्वसंकिलेसे**' त्यादि । सर्वान् जघन्यमध्यमोत्कृष्टस्थितिविशेषनिर्वर्तकान्

△......△ त्रिकोण द्वयान्तरगत: पाठो जे. प्रतावेवम्—'असातअरइसोगनपुंसकवेदहुंडअसुभविहायोगतिअथिर असुभ दुभग)दुस्सरअणादेयअजसकित्ति नीचैर्गोत्र' इति ।

卐......卐 स्वस्तिकद्वयान्तरगत: पाठो मु० प्रतौ नास्ति । 1 'आहारदुग' इति जे. ।

अच्चंतविसुद्धो त्ति काउं । 'अणियट्टि पुरिससंजलणं' ति अणियट्टिखवगो अप्पप्पणो बंध-वोच्छेयकाले जो जो ठिइबंधो अंतिमो तहिं तहिं वट्टमाणो पुरिसवेयसंजलणाणं जहन्नगं ठिइं बंधति, तब्बंधकेसु अच्चंतविसुद्धो त्ति काउं । 'बंधइ सुहुमसरागो सायजसुच्चावरणविग्घं' ति सुहुमसंपराइगखवगो चरिमे ठिइबंधे वट्टमाणो पंचण्हं णाणावरणीयाणं, चउण्हं दंसणावरणीयाणं, सायवेयणीयं, जसकीत्तिउच्चागोयं, पंचण्हमंतराइगाणं, एएसिं सत्तरसण्हं कम्माणं जहन्नगं ठिइं बंधइ, तब्बंधकेसु अच्चंतविसुद्धो त्ति काउं ॥६१॥

छण्हमसन्नी कुणइ जहन्नठिइं आउगाणमन्नयरो ।
सेसाणं पज्जत्तो बायरएगिंदियविसुद्धो ॥६२॥

व्याख्या—'छण्हमसन्नी कुणइ' त्ति णिरयगइदेवगइतदाणुपुव्वीओ वेउव्वियदुगमिति । एएसिं छण्हं कम्माणं 'जहन्नठिइं' ति असन्निपंचिंदिओ सव्वाहिं पज्जत्तिहिं पज्जत्तगो सव्व-विसुद्धो सव्वजहन्नियं ठिइं बंधइ । णिरयदुगस्सवि तप्पाओगविसुद्धो त्ति वत्तव्वं, हेट्ठिल्ला एगिं-दियादी ण बंधंति । सन्निम्मि किं ण भवति इति चेत् ? भण्यते, सन्निम्मि सभावादेव ठिई महती, असन्निम्मि सभावादेव खुड्डली, बालमध्यमपुरुषाहारवत् । 'आउगाणमन्नयरो' त्ति देवणिरया-उगाणं सन्नी वा असन्नी वा जहन्नगं करेइ, असंखिप्पद्धा दोण्हवि लब्भइ त्ति, मणुयतिरियाउगाणं एगिंदियादयो सव्वजहन्नगं ठिइं करेंति, असंखिप्पद्धा सव्वेसिं लब्भइ त्ति काउं । 'सेसाणं पज्जत्तो बायरएगिंदियविसुद्धो' त्ति सेसाणं ति भणियसेसाणं ८५ पगईणं सव्वासिं बायर-एगिंदियपज्जत्तगो सव्वविसुद्धो सव्वजहन्नियं ठिइं बंधइ । सन्नी विसुद्धतरो, तहावि तहिं सभावा-देव ठिई महल्ली, एगिंदिएसु सव्वखुड्डली सभावादेव, एगिंदिएसु सव्वविसुद्धो बायरएगिंदियपज्ज-त्तगो त्ति तंमि सव्वजहन्ना ठिई भवइ ॥६२॥ **ठिइबंधो समत्तो ॥**

इयाणिमणुभागबंधस्स अवसरो, सो भण्णइ, तत्थ पुव्वं ताव साइयअणाइयपरूवणा कज्जइ—

घाईणं अजहन्नोणुक्कोसो वेयणीयनामाणं ।
अजहन्नमणुक्कोसो गोए अणुभागबंधम्मि ॥६३॥
साई अणाइ धुवअद्धुवो य बन्धो उ मूलपयडीणं ।
सेसंमि उ दुविगप्पो आउचउक्केवि दुविगप्पो ॥६४॥

व्याख्या—'घाईणं अजहन्नो' 'साई अणाइ' त्ति संबज्झइ, घाएति णाणदंसणचरि-त्तदाणाइलाभे त्ति घाइणो, णाणावरणदंसणावरणमोहणिज्जअंतराइगाणं अजहण्णो अणुभागबंधो

संक्लेशान् प्रतीत्य सर्वजघन्यं सर्वोत्कृष्टं च संक्लेशं विमुच्य ते (ये) ऽन्ये प्रतिस्थितिस्थानं जघन्यमध्यमोत्कृष्टाः संक्लेशाः वर्तन्ते, ते सर्वे ईषन्मध्यमाः प्रोच्यन्ते । परे इष्टितस्तन्मध्यादुत्कृष्टस्थितिबन्धप्रायोग्याः केचिदेवेह गृह्यन्त इति ।

'साई अणाइ' त्ति साइयाइचउविगप्पो । कहं ? भन्नइ, णाणदंसणावरणंतराइगाणं जहन्नमणुभागं सुहुमसंपराइगखवगो चरिमसमए वट्टमाणो बंधइ एगं समयं, मोहणिज्जस्स अणियट्टिखवगो चरिमसमए वट्टमाणो अ जहन्नाणुभागं बंधइ, सो य साइओ अद्धुवो य, तं मोत्तूण सेसं सव्वं अजहन्नं जाव उक्कसं ति । सुहुमसरागउवसामगंमि अजहन्नस्स बंधो फिट्टइ, उवसंतो जाओ, ततो पुणो परिवडंतस्स अजहन्नस्स साइओ बंधो । तं ठाणमपत्तपुव्वस्स अणाइओ । धुवो अभव्वस्स, बंधवोच्छेदाभावात् । अद्धुवो भव्वस्स, णियमा बंधवोच्छेयं काहिति त्ति । जहन्नउक्कोसाणुक्कोसे य पडुच्च भन्नइ,[1] **सेसंमि उ दुविगप्पो'** त्ति जहन्नउक्कोसअणुक्कोसेसु जहन्नगे कारणं पुव्वुत्तं । इयाणि उक्कोसाणुक्कोसं पडुच्च भन्नइ—एएसिं चउण्हं घाईकम्माणं उक्कोसगो अणुभागबंधो सन्निम्मि, मिच्छदिट्ठिम्मि पज्जत्तगंमि सव्वसंकिलिट्ठम्मि एक्कं वा दो व समया लब्भति, सो साइओ अद्धुवो य । तं मोत्तूण सेसो सव्वो जाव जहन्नो ताव अणुक्कोसो । ततो उक्कोससंकिलेसाओ परिवडंतस्स अणुक्कोसं बंधंतस्स साइओ, पुणो जहन्नेणं अंतोमुहुत्तेणं उक्कोसेणं अणंताणंताहिं ओसप्पिणिउस्सप्पिणीहिं पुणो उक्कोससंकिलिट्ठो णियमा उक्कोसाणुभागं बंधइ, तं बंधंतस्स अणुक्कोसस्स अद्धुवो, उक्कोसस्स साइओ, एवं उक्कोसाणुक्कोसेसु परियट्टन्ति त्ति सव्वत्थ साइओ अधुवो य, दोवि मिच्छद्दिट्ठिम्मि लब्भंति त्ति काउं । **अणुक्कोसो वेयणीयणामाणं'** ति साइयअणाइयाइं संबज्झंति, वेयणीयणामाणं अणुक्कोसो अणुभागबंधो साइयाइचउविगप्पो वि लब्भइ । कहं ? भन्नइ, वेयणीयणामाणं उक्कोसो अणुभागबंधो सुहुमसंपराइगखवगस्स चरिमसमए लब्भइ एक्कं समयं, तब्बंधकेसु सव्वविसुद्धो त्ति काउं, सो य साइओ अद्धुवो य । तं मोत्तूणं सेसो जाव जहन्नो ताव सव्वोवि अणुक्कोसो, सुहुमसंपरागउवसामगस्स चरिमसमए णामवेयणियाणं बंधे वोच्छिन्ने उवसंतकसायट्ठाणाओ परिवडंतस्स अणुक्कोसाणुभागं बंधंतस्स साइओ, तं ठाणमपत्तपुव्वस्स अणाइओ, धुवो अभव्वाणं, उक्कोसबंधस्स तब्बंधवोच्छेयस्स वा अभावात्, अद्धुवो भव्वाणं, णियमा बंधवोच्छेयं काहिंति त्ति । **सेसम्मि उ दुविगप्पो'** त्ति उक्कोसजहन्नाजहन्नेसु ठाणेसु साइओ अद्धुवो य बंधो, उक्कोसे कारणं पुव्वुत्तं, एएसिं दोण्हं जहन्नगं अणुभागबंधं सम्मदिट्ठी वा मिच्छदिट्ठी वा मज्झिमपरिणामो बंधइ । कहं ? भन्नइ, जइ विसुद्धो सुभाणं तिव्वं रसं बंधइ, अह संकिलिट्ठो तो असुभाणं रसं तिव्वं बंधइ, तेण मज्झिमपरिणामग्गहणं, तं जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं चत्तारि समया; तओ विसुद्धो वा संकिलिट्ठो वा अजहन्नं बंधइ, तस्स साइओ, पुणो मज्झिमपरिणामो कालंतरेण जहन्नं बंधइ, तस्स अजहन्नस्स अद्धुवो, जहन्नस्स साइओ, एवं जहन्नाजहन्नेसु परिभमंति संसारत्था जीव त्ति, तेण सव्वत्थ साइओ अद्धुवो य बंधो । **'अजहन्नमणुक्कोसो गोए अणुभागबंधंमि'** त्ति गोयस्स अजहन्नाणुक्कोसो बंधो साइयाइचउविगप्पोवि

1 'पुच्छा' इति जे. ।

लब्भइ, कहं ? भन्नइ, गोयस्स उक्कोसाणुक्कोसो य जहा वेयणीयणामाणं तहा भावेयव्वं। इयाणिं जहन्नाजहन्नो भन्नइ। गोत्तस्स सव्वजहन्नो अहे सत्तमपुढविणेरइयस्स सम्मत्तं उप्पाएमाणस्स अहापवत्ताईकरणाइं करेत्तु मिच्छत्तस्स अंतरकरणं किच्चा पढमठिईए परिहायमाणीए जाव चरिमसमयमिच्छद्दिट्ठी जाओ, तस्स णीयागोयतिरियदुगाइं भवपच्चएण जाव मिच्छत्तभावो ताव बज्झंति त्ति तस्स चरिमसमयमिच्छद्दिट्ठीस्स णीयगोत्तं पडुच्च सव्वजहन्नगो अणुभागबंधो एक्कं समयं लब्भइ, तम्हा साइको अद्धुवो य, तओ से[1] काले सम्मत्तं पडिवन्नस्स गोत्तस्स अजहन्नओ बंधो, सम्मद्दिट्ठी उच्चागोत्तं बंधइ तं जहन्नं न भवइ त्ति, तत्थ अजहन्नस्स साइओ, अणाइओ तं ठाणमपत्तपुव्वस्स, ध्रुवाऽध्रुवौ पूर्ववत्। 'सेसंमि उ दुविगप्पो' त्ति उक्कोसजहन्नेसु साइको अद्धुवो य, कारणं भणियं। 'आउचउक्केवि दुविगप्पो' त्ति आउगस्स उक्कोसाणुक्कोसजहन्नाजहन्नो अणुभागबंधो साइओ अद्धुवो य, अद्धुवबंधित्वादेव ॥६४॥

मूलपगईणं साइयाइपरूवणा कया। इयाणिं उत्तरपगईणं भन्नइ—

अट्ठण्हमणुक्कोसो तेयालाणमजहन्नगो बंधो।
णेओ हि चउविगप्पो सेसतिगे होइ दुविगप्पो ॥६५॥

व्याख्या–'**अट्ठण्हमणुक्कोसो**' त्ति 'अट्ठण्हमणुक्कोसो' '**णेओ हि चउविगप्पो**' त्ति संबज्झइ, तेयकम्मइगसरीरपसत्थवन्नगंधरसफासअगुरुलहुगणिम्माणामिति। एएसिं अट्ठण्हं पगईणं अणुक्कोसो अणुभागबंधो साइयाइचउविगप्पोवि लब्भइ। कहं ? भन्नइ एएसिं अट्ठण्हं कम्माणं अपुव्वकरणखवगस्स तीसाणं बंधवोच्छेयसमए उक्कोसो अणुभागबंधो भवइ एक्कं समयं, तब्बंधकेसु अच्चंतविसुद्धो त्ति काउं, तं मोत्तूण सेसं सव्वं अणुक्कोसं जाव जहन्नंपि। उवसामगंमि बंधवोच्छिन्ने उवसंतकसायो जाओ, तओ परिवडित्तु तं ठाणं पत्तस्स अणुक्कोसं बंधंतस्स साइओ भवति, तं ठाणमपत्तपुव्वस्स अणाइओ, ध्रुवाऽध्रुवौ पूर्ववत्। '**सेसतिगे होइ दुविगप्पो**' त्ति उक्कोसजहन्नाजहन्नेसु साइओ अद्धुवो य। कहं भन्नइ, उक्कोसस्स साइअद्धुवत्तं पुव्वुत्तं, एएसिं अट्ठण्हं जहन्नगं सन्निमिच्छद्दिट्ठिम्मि पज्जत्तगम्मि उक्कोससंकिलिट्ठंमि लब्भइ एक्कं वा दो वा समया, तओ विसुद्धो अजहन्नं बंधइ, पुणो कालंतरेण संकिलिट्ठो जहन्नयं बंधइ, एवं जहन्नाजहन्नेसु सव्वे संसारत्था जीवा परिभमंति त्ति दोसु वि साइओ अद्धुवो य। '**तेयालाणमजहन्नगो बंधो णेओ हि चउविगप्पो**' त्ति पंच णाणावरणा नव दंसणावरणा मिच्छत्तं सोलस कसाया भयदुगंच्छअपसत्थवन्नगंधरसफासउवघायपंचअंतराइगमिति। एयासिं तेयालीसाए पगईणं अजहन्नो अणुभागबंधो साइयाइचउविगप्पोवि लब्भइ। कहं ? भन्नइ, । पंच णाणावरणं चत्तारि दंसणावरणं पंचण्हमंतराइगाणं जहन्नगो अणुभागबंधो सुहुमरागखवगस्स चरिमसमए वट्टमाणस्स

1 'तओ सेस' इति जे.।

लब्भइ एक्कं समयं तं साइयं अधुवं, तं मोत्तूण सेसं सव्वं अजहन्नं जाव उक्कोसंपि, उवसामगंमि बंधे वोच्छिन्ने तओ परिवडंतस्स साइयाइया योज्या पूर्ववत् । चउण्ह संजलणाण अणियट्टिखवगम्मि अप्पप्पणो बंधवोच्छेयसमए जहन्नगो अणुभागबंधो एक्केक्कं समयं लब्भइ, सो साइओ अद्धुवो य । उवसमसेढीए बंधवोच्छेयं करेत्तु, पुणो परिवडतस्स अजहन्नस्स साइयाइयो योज्या पूर्ववत् । णिद्दा-पयलाअप्पसत्थवण्णाइउवघायभयदुगुंछाणं अपुव्वकरणखवगम्मि अप्पप्पणो बंधवोच्छेयसमए जहन्नगो अणुभागबंधो एक्केक्कं समयं लब्भइ, तं मोत्तूण सेसं सव्वं अजहन्नं, उवसमसेढीए बंधवोच्छेयं करेत्तु पुणो बंधकस्स अजहन्नस्स साइयाई योज्या पूर्ववत् । चउण्हं पच्चक्खाणावरणीयाणं देसविरओ संजमं पडिवज्जिउकामो अच्चंतविसुद्धो चरिमसमयदेसविरओ मव्वजहन्नं अणुभागं बंधइ तब्बंध-गेसु सव्वविसुद्धो त्ति काउं एकं समयं, सो साइओ अद्धुवो य । तं मोत्तूण सेसं सव्वं अजहन्नं, बंधवोच्छेयं काउं संजयठाणाओ पुणो परिवडंतस्स अजहन्नस्स साइयाई योज्या पूर्ववत् । चउण्हं अपच्चक्खाणावरणीयाणं असंजयसम्मद्दिट्ठी खइगसम्मत्तं संजमं च जुगवं पडिवज्जिउंकामो अच्चंतविसुद्धो चरिमसमयअसंजयसम्मद्दिट्ठी सव्वजहन्नमणुभागं बंधइ एगं समयं, तं मोत्तूण सेसं सव्वं अजहन्नं, बंधवोच्छेयं काउं संजयदेसविरइठाणाओ वा परिवडंतस्स साइयाई योज्या । थीणगिद्धितिगमिच्छत्तस्स चउण्हमणंताणुबंधीणं अट्ठण्हं कम्माणं मिच्छद्दिट्ठी सम्मत्तं संजमं च जुगवं पडिवज्जित्तुकामो अच्चंतविसुद्धो चरिमसमयमिच्छद्दिट्ठी सव्वजहन्नाणुभागं बंधइ एगं समयं, तं साइयं अद्धुवं । तं मोत्तूण सेसं सव्वमजहन्नं, बंधवोच्छेयं करेत्तु संजय-संजयासंजय-असंजयसम्मद्दिट्ठीठाणाओ परिवडंतस्स अजहन्नबंधकस्स साइयाईया योज्या पूर्ववत् । '**सेसतिगे होइ दुविगप्पो**' त्ति जहन्नुक्कोसाणुक्कोसेसु अणुभागबंधो साइओ अद्धुवो य । कहं ? भन्नइ, जहन्नगे कारणं पुव्वुत्तं, एतेसिं तेयालीसाए पगडीणं उक्कोसं सन्निपंचिंदिओ मिच्छद्दिट्ठी सव्वपज्जत्तगो सव्वसंकिलिट्ठो बंधइ एक्कं वा दो वा समया, तं च साइयमद्धुवं, पुणो विसुद्धो अणुक्कोसं बंधइ; तस्स साइओ, पुणोवि कालंतरेण सव्वुक्कोससंकिलिट्ठो उक्कोसं बंधइ, एवं पुणो विसुद्धो अणुक्कोसं बन्धति, एवं पुणो उक्कोसं; एवं उक्कोसअणुक्कोसेसु परिभमंति सव्वे संसारत्था जीवा इति सव्वत्थ साइयमधुवं ति ॥ ६५ ॥

उक्कोसमणुक्कोसो जहन्नमजहन्नगो य अणुभागो ।
साईअद्धुवबंधो पयडीणं होइ सेसाणं ॥ ६६ ॥

व्याख्या—'**उक्कोसाणुक्कोसो**' त्ति उक्कोसो अणुक्कोसो जहन्नो अजहन्नो य अणुभागबंधो सेसाणं सव्वपगईणं ७३ साइओ अद्धुवो य, कहं ? अध्रुवबन्धत्वादेव ॥ ६६ ॥

साइयअणाइयपरूवणा कया । इयाणिं सुभासुभाणं पगईणं उक्कोसजहन्नाणुभागं केण णिव्वत्तेइ त्ति तन्निरूवणत्थं भन्नइ—

सुभपयडीण विसोहीइ तिव्वमसुहाण संकिलेसेणं ।
विवरीए उ जहन्नो अणुभागो सव्वपयडीणं ॥ ६७ ॥

व्याख्या— '**सुभपगडीण विसोहीइ तिव्वं**' ति सव्वसुभपगईणं उक्कोसाणुभागं सव्व-विसुद्धो तब्बंधकेसु णिव्वत्तेइ । '**असुभाण संकिलेसेणं**' ति सव्वअसुभाणं पगईणं उक्कोसाणुभागं तब्बंधकेसु सव्वुक्कोससंकिलिट्ठो बंधइ । '**विवरीए उ जहन्नो अणुभागो सव्वपगडीणं**' उक्तविवरीयाओ जहन्नगं भवइ, सुहपगईणं तब्बंधकेसु सव्वसंकलिट्ठो जहन्नयं बंधइ । असुभपगईण तब्बंधकेसु सव्वविसुद्धो जहन्नाणुभागं बंधइ ॥ ६७ ॥

सुभासुभपगइणिरूवणत्थं भन्नइ—

बायालंपि पसत्था विसोहिगुणउक्कडस्स तिव्वाओ ।
बासीइमप्पसत्था मिच्छुक्कडसंकिलिट्ठस्स ॥ ६८ ॥

व्याख्या—'**बायालंपि पसत्था विसोहिगुणउक्कडस्स तिव्वाओ**' त्ति सायावेयणीयं, तिरियमणुयदेवाउगाणि, मणुयगई देवगई, पंचिंदियजाई, पंचसरीराणि, समचउरंससंठाणं, वज्ज-रिसभणारायसंघयणं, तिन्नि अंगोवंगाणि, पसत्थवन्नगंधरसफासमणुयदेवाणुपुव्विअगुरुलहुपरा-घायउस्सासआयवउज्जोयपसत्थविहायगइतसाइदसगं णिम्मेणं तित्थगरउच्चगोत्तमिति । एयाओ बायालीसं सुभगपगईओ विसोहिगुणेणं जो '**उक्कडो**'-प्रकृष्टो तस्स '**तिव्वाओ**' त्ति तिव्वाणु-भागाओ भवंति । '**बासीइमप्पसत्था मिच्छुक्कडसंकिलिट्ठस्स**' त्ति पंच णाणावरणा, णव दंसणावरणा, असायवेयणीयं, मिच्छत्तं, सोलस कसाया, णव नोकसाया, निरयाउगं, णिरयगई, तिरि-यगई, एगिंदियविगलिंदियजाई, आइमवज्जाणि संठाणसंघयणाणि, अप्पसत्थवन्नगंधरसफासणिरय-तिरियाणुपुव्वी उवघाय अपसत्थविहायगई थावराइदसकं णीयागोयं पंच अंतराइकमिति । एयाओ बासिई असुभपगईओ मिच्छद्दिट्ठिस्स उक्कोससंकिलेसे वट्टमाणस्स तिव्वाओ उक्कोसाणुभागाओ भवंति ॥६८॥

बायालीसं सुभपगईओ विसोहिगुणउक्कडस्स तिव्वाओ भवंति त्ति सामन्नेणं भणियं, तस्स विभागदरिसणत्थं भन्नति—

आयवनामुज्जोयं माणुसतिरियाउगं पसत्थासु ।
मिच्छस्स हुंति तिव्वा सम्मद्दिट्ठिस्स सेसाओ ॥६९॥

व्याख्या—'**आयवणामुज्जोयं माणुसतिरियाउगं पसत्थासु । मिच्छस्स होंति तिव्व**' त्ति आयवणामं, उज्जोयणामं, मणुयाउगं, तिरियाउगं च । पसत्थपगईसु एयाओ चत्तारि पगईओ मिच्छद्दिट्ठिस्स तिव्वाणुभागाओ भवंति । कहं ? भन्नइ, तिरियाउगआयवुज्जोय-

णामाणं बंध एव सम्मदिट्ठीणं णत्थि, मणुयाउगस्स उक्कोसो तिपलिओवमठिईसु लब्भइ । तिरियमणुया सम्मद्दिट्ठिणो मणुस्साउगं ण बन्धंति, देवणेरइगा सम्मद्दिट्ठिणो मणुस्साउगं कम्मभूमिजोग्गं बन्धंति, कम्मभूमिसु उव्वज्जंति त्ति काउं, भोगभूमिजोग्गं ण बन्धंति त्ति । कम्हा ? तेसु ण उववज्जंति त्ति काउं, तम्हा एयासिं चउण्हं उक्कोसो मिच्छादिट्ठिस्सेव । 'सम्मदिट्ठिस्स सेसाउ' त्ति एयाओ चत्तारि मोत्तूण सेसाओ सव्वाओवि सुभपगईओ सम्मद्दिट्ठिस्स उक्कोसाणुभावाओ भवंति । कहं ? भन्नइ, मिच्छद्दिट्ठीओ सम्मद्दिट्ठी अणंतगुणविसुद्धो त्ति काउं ॥ ६९ ॥

इयाणिं विसेससामित्तं भन्नइ—

देवाउमप्पमत्तो तिव्वं खवगा करिंति बत्तीसं ।
बन्धंति तिरियमणुया एक्कारस मिच्छभावेणं ॥७०॥

व्याख्या—'देवाउगमप्पमत्तो' त्ति देवाउगस्स अप्पमत्तसंजओ तिव्वाणुभागं बंधइ । कहं ? भन्नइ, तब्बंधकेसु अच्चंतविसुद्धो त्ति काउं । मिच्छद्दिट्ठी असंजयसम्मद्दिट्ठी संजयासंजय-पमत्तअप्पमत्तसंजया य परंपराओ अणंतगुणविसुद्ध त्ति । 'तिव्वं खवगा करेंति बत्तीसं' ति बत्तीसाए पगईणं खवगा तिव्वाणुभागं बंधंति । कहं ? भन्नइ, देवगई, पंचिंदियजाई, वेउव्वियआहारगतेयगकम्मइगसरीरं, समचउरंससंठाणं वेउव्वियआहारगअंगोवंगं, पसत्थवन्नगंधरसफासदेवगइपाओग्गाणुपुव्वी, अगुरुलहुगं पराघायं उस्सासं पसत्थविहायगई तसाइदसकं जसकित्तिवज्जं, णिम्मेणतित्थकरमिति । एयासिं एगूणतीसाए पगईणं अपुव्वकरणो खवगो तीसाए कम्मपगईणं बंधवोच्छेयसमए वट्टमाणो तिव्वाणुभागं बंधइ, एक्कं समयं । कहं ? तब्बंधकेसु अन्नो तो विसुद्धो णत्थि त्ति । सायावेयणीयजसकित्तिउच्चागोत्ताणं सुहुमसंपरायखवगो चरिमसमए वट्टमाणो उक्कोसाणुभागं बंधइ, एक्कं समयं । कहं ? भण्णइ, दुचरिमसमयाओ चरिमसमए अणंतगुणविसुद्धो त्ति काउं । 'बंधंति तिरियमणुया एक्कारस मिच्छभावेणं' ति देवाउगवज्जाणि तिन्नि आउगाणि निरयदुगं विगलिंदियतिगं सुहुमं अपज्जत्तकं साधारणमिति एयासिं एक्कारसण्हं पगईणं उक्कोसाणुभागं तिरियमणुया मिच्छद्दिट्ठीणो बंधंति । कहं ? भन्नइ, तिरियमणुयाउवज्जाओ सेसाओ णववि पगईओ देवणेरइगा भवपच्चएणं ण बंधंति । मणुयतिरियाउगाणं उक्कोसाणुभागो भोगभूमिगेसु होइ, तेसु देवणेरइगा ण उववज्जंति त्ति अओ तेसु उक्कोसो ण लब्भइ त्ति । तम्हा तिरियमणुया सन्निणो मिच्छद्दिट्ठिणो तप्पाओगविसुद्धा तिरियमणुयाउगाणं उक्कोसाणुभागं बंधंति, तओ विसुद्धतरा देवाउगं बंधंति, अच्चंतविसुद्धो आउगं न बंधइ, तम्हा तप्पाओगविसुद्ध त्ति । णिरयाउगस्स तप्पाओग्गसंकिलिट्ठो उक्कोसाणुभागं बंधइ अच्चंतसंकिलिट्ठस्स आउगबंधो णत्थि त्ति । णिरयगइणिरयाणुपुव्वीणं उक्कोससंकिलिट्ठो उक्कोसाणुभागं बंधइ एक्कं वा दो वा समया, उक्कोस-

संकिलेसस्स एत्तिओ कालो त्थि । विकलसुहुमतिकाणं तिरियमणुया सन्निणो मिच्छद्दिट्ठी तप्पाओग्गसंकिलिट्ठा उक्कोसाणुभागं बंधंति । तओ संकिलिट्ठतरा नरयगइपाओग्गं बंधंति त्ति तम्हा तप्पाओग्गगहणं ॥७०॥

पंच सुरसम्मदिट्ठी सुरमिच्छो तिन्नि जयइ पयडीओ ।
उज्जोयं तमतमगा सुरनेरइया भवे तिण्हं ॥ ७१ ॥

व्याख्या—'**पंच सुरसम्मदिट्ठि**' त्ति मणुयगई ओरालियसरीरं ओरालियअंगोवंगं वज्जरिसभणारायसंघयणं मणुयाणुपुव्वी य । एएसिं पंचण्हं पगईणं उक्कोसाणुभागं देवो सम्मद्दिट्ठी अच्चंतविसुद्धो बंधइ, एक्कं वा दो वा समया, विसुद्धिएवि एत्तिओ कालो, मिच्छद्दिट्ठीओ सम्मद्दिट्ठो अणंतगुणविसुद्धो त्ति । णेरइगावि सम्मद्दिट्ठिणो अच्चंतविसुद्धा एताओ बंधंति, तेसिं किं उक्कोसं ण भवति इति चेत् ? उच्यते, णेरइगा तिव्ववेयणाभिभूतत्वात् संकिलिट्ठतरा । अन्नं च तित्थकररिद्धिदंसणपवयणसुणणाओ[1] देवाणं तिव्वा विसोही भवति, णेरइकाणं तं णत्थि, तम्हा देवेसु चेव उक्कोसो लब्भइ । '**सुरमिच्छो तिन्नि जयइ पगईओ**' त्ति एगिंदियआयवथावराणं उक्कोसाणुभागं ईसाणाओ हेट्ठिल्ला देवा बंधंति । कहं ? भन्नइ, ते अच्चंतसंकिलिट्ठा एगिंदियपाओग्गं बंधंति त्ति काउं । आयवस्स तप्पाओग्गविसुद्धो, कहं ? जो एगिंदियजाईए सव्वखुड्डुलं ठिइं बंधइ तव्वंधकेसु अच्चंतविसुद्धो 'सुभपयडीण विसोहीइ' [गाथा ६७] त्ति वयणाओ । तओ विसुद्धो बेइंदियजाइं बंधइ, तओ विसुद्धो तेइंदियजाइं, तओ विसुद्धो चउरिंदियजाइं, तओ विसुद्धो पंचिंदियतिरियपाउग्गं, तओ विसुद्धो मणुयगइपाओग्गं बंधइ त्ति, तम्हा तप्पाओग्गगहणं । '**जयइ**' त्ति बंधइ । '**उज्जोयं तमतमगा**' त्ति उज्जोवणामं तमतमाए णेरइगो तिन्नि करणाइं करेत्तु संमत्तं पडिवज्जिउकामो चरिमसमयमिच्छद्दिट्ठी उज्जोयणामस्स उक्कोसमणुभागं बंधइ । कहं ? भवपच्चयाओ तिरिगइपाओग्गं बंधइ, तब्बंधकेसु अन्नो तव्विसुद्धो णत्थि त्ति काउं । '**सुरनेरइया भवे तिण्हं**' ति तिरियगइसेवट्टसंघयणतिरियाणुपुव्वीणं देवणेरइका सव्वसंकिलिट्ठा उक्कोसाणुभागं बंधंति, तिरियमणुया अच्चंतसंकिलिट्ठा णिरयपाओग्गं बंधंति त्ति तेसु ण लब्भइ । छेवट्ठस्स उक्कोसो ईसाणंतेसु देवेसु ण लब्भइ । कहं ? ते अच्चंतसंकिलिट्ठा एगिंदियपाओग्गं बंधंति ति काउं ॥ ७१ ॥

सेसाणं चउगइया तिव्वगुभागं करिंति पयडीणं ।
मिच्छद्दिट्ठी नियमा तिव्वकसाउक्कडा जीवा ॥ ७२ ॥

व्याख्या—'**सेसाणं चउगइय**' त्ति भणियसेसाणं सव्वपगईणं उक्कोसाणुभागं चउगइकावि मिच्छादिट्ठीणो तिव्वकसाया तिव्वसंकिलिट्ठा य जीवा बंधंति । कहं ? भन्नइ, सव्वेसिं सव्वाओ

1 'पवयणसुणणाओ' इति मु.

जोग्गाओ त्ति काउं । णाणावरणं दंसणावरणं असायवेयणीयं मिच्छत्तं सोलसकसाया नपुंसकवेयअरइ-सोकभयदुगुंच्छा हुंडसंठाणं अप्पसत्थवण्णगंधरसफासउवघायअप्पसत्थविहायगईअथिरअसुभदुभगदुस्सर-अणाएज्जअजसकित्तिणीयागोत्तपंचअंतराइगमिति । एएसिं कम्माणं चउगइकावि मिच्छादिट्ठिणो सव्व-संकिलिट्ठा उक्कोसाणुभागं बंधंति । हासरइइत्थिवेयपुरिसवेयआइअंतवज्जसंठाणसंघयणाणं तप्पाओग-संकिलिट्ठो त्ति वत्तव्वं । [117]जइ तिरियमणुया तो णिरयगइसहियं बद्धमाणा एएसिं ज्ञानावरणादीनां उक्कोसमणुभागं बंधंति, जाव अट्ठारससागरोवमकोडाकोडीओ बंधंति । तओ विशुद्धतरा एगिंदियजाइ-सुहुमअपज्जत्तगसाहारणतिगसहियं तिरियगइणामं अट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीओ बंधंति । तओ विसुद्धतरा बेइंदियजाइं सेवट्टसहियं अट्ठारस किंचूणं । तओ विसुद्धतरा तेइंदियजाइसहियं अट्ठारस-सागरोवमं किंचूणं । तओ चउरिंदियसहियं अट्ठारससागरोवमं । तओ वामणं कीलियं च पंचिंदियजाइ-सहियं अट्ठारससागरा किंचूणा बंधंति, एवं जाव सोलससागरोवमकोडाकोडीओ बंधंति । तओ विसुद्धतरो खुज्जअद्धनारायसहियं तिरियगइपाओग्गं सोलससागरोवमकोडाकोडीओ बंधइ जाव पन्नरस त्ति । तओ विसुद्धतरो अतीयसंठाणसंघयणसहियं मणुस्सगइपाओग्गं पन्नरससागरोवमकोडाकोडीओ बंधन्ति, तओ विसुद्धतरो साइणारायसहियं चोद्दससागरोवमकोडाकोडीओ बंधन्ति, तओ विसुद्धतरो निग्गोहसंठाणवज्जणारायसंघयणसहियं बारससागरोवमकोडाकोडी बंधन्ति, एएसिं पंचण्हं संठाण-संघयणाणं अप्पप्पणो उक्कोसठिइबंधे उक्कोसाणुभागसंभवो होज्जा, असुभत्ताओ, तम्हा आइअंति-मवज्जाणं तप्पाओगसंकिलिट्ठो त्ति वत्तव्वं । जइ देवणेरइगा तो पुव्वुत्ताणं उक्कोसं उक्कोस-संकिलिसेणं तिरियगइहुंडसेवट्टसहियंबंधंति, तओ विसुद्धतरा वामणकीलियसहियं, तत्तो विसुद्धतरा खुज्जअद्धणारायसहियं, तओ विसुद्धयरा साइणारायसहियं, ततो विसुद्धतरा णिग्गोहसंठाणवज्जणा-रायसहियं उक्कोसं बंधंति । जइ ईसाणंता देवा तो पुव्वुत्ताणं उक्कोसं वीसं सागरोवमकोडाकोडी थावरएगिंदियजाइसहियं बंधंति । ततो विसुद्धतरा पंचिंदियजाइतससेवट्टसहियं अट्ठारस, तओ विसुद्धयरा वामणखीलियसहियं किंचूणं अट्ठारससागरोवमकोडाकोडी बंधंति । तओ विसुद्धयरा खुज्जद्धणारायसहियं सोलसागरोवमकोडाकोडीओ । तओ विसुद्धतरा मणुस्सगइसहियाणि ताणि चेव अईयसंठाणसंघयणाणि पन्नरससागरोवमकोडाकोडी । तओ विसुद्धतरा सादिणारायसहियं चोद्दस-

(११७) सेसाणं चउगइ [ये]' त्यादिगाथाचूर्णौ 'जइ तिरियमणुया तो नरयगइ-सहियं बंधमाणे' त्यादि । तिर्यञ्चो मनुष्याश्च नरकगतावेव बध्यमानायामासां षट्पञ्चाशतो मतिज्ञानावरणादीनां प्रकृतीनामुत्कृष्टसंक्लेशबन्धनीयोत्कृष्टाऽनुभागानां नरकगतेरेवोत्कृष्टस्थितेः विंशतेर्यावदष्टादशकोटीकोटयस्तावदुत्कृष्टमनुभागं 卐 बध्नन्ति । अष्टादशकोटिकोटिबन्धप्रस्ताव एव तिर्यग्गतियोग्यबन्धसम्भवेन मनागध्यवसायमान्द्यात्सर्वासामप्यनुत्कृष्टानुभागबन्धसद्भावादिति ।

卐 टिप्पनकृदाशयं वयं न विद्मः, यतोऽशुभप्रकृतीनामुत्कृष्टरसबन्ध उत्कृष्टस्थितेरेवा बन्धेन सह प्राप्यत इति कर्मप्रकृतिबन्धनकरणस्यानुकृष्टयधिकारेण ज्ञायते ।

सागरोवमकोडाकोडी। तओ विसुद्धतरा णिग्गोहवज्जणारायसहियं बारससागरोवमकोडाकोडी। तम्हा एएसिं तप्पाओग्गसंकिलिट्ठो त्ति वत्तव्वं, एत्थ सम्मदिट्ठिमिच्छदिट्ठि त्ति जं नामग्गहणं कयं,तं तेसु चेव सम्मदिट्ठिमिच्छदिट्ठिसु उक्कोसाणुभागपाओग्गाणं पयडीणं जाणावणत्थं। **'तिव्व-कसाउक्कड'** त्ति जं भणियं; तत्थ इगविगलअसण्णिपंचेंदियअपज्जत्तगनरतिरियअसंखेज्जवासाउय-मणुओववायदेवा य एएसिं सव्वाणणुक्कोससंकिलिट्ठ त्ति उक्कोसाणुभागबंधप्पाउग्गा न भवन्ति त्ति तेसिं पडिसेहणत्थं भणियं॥७२॥ उक्कोसाणुभागबंधो भणिओ, इयाणिं जहन्नाणुभागबंधो भण्णइ।

चोद्दस सरागचरिमे पंचगमनियट्टि नियट्टिएक्कारं।

सोलस मंदणुभागं संजमगुणपत्थिओ जयइ ॥ ७३ ॥

व्याख्या—**'चोद्दस सरागचरिमे'** त्ति पंचणाणावरणं चउदंसणावरणं पंचण्हमंतरा-इगाणं एतेसिं चोद्दसण्हं कम्माणं सुहुमसंपरायखवगो चरिमसमए वट्टमाणो जहन्नाणुभागं करेइ, कहं? तब्बंधकेसु अच्चंतविसुद्धो त्ति काउं, एगं समयं लब्भति। **'पंचगमनियट्टि'** त्ति पुरिस-वेयस्स चउण्हं संजलणाणं य, अणियट्टिखवगो अप्पप्पणो बंधवोच्छेदसमए वट्टमाणो जहन्नाणुभागं करेइ एक्केक्कं समयं। कहं? तब्बंधकेसु विसुद्धो त्ति काउं। **'नियट्टि एक्कारं'** ति णिद्दा-पयलाअप्पसत्थवन्नगंधरसफासउवघातहासरतिभयदुगुंछाणं एतेसिं एक्कारसण्हं अपुव्वकरणखवगो एएसिं अप्पप्पणो बंधवोच्छेदसमए वट्टमाणो जहन्नाणुभागं करेइ एक्केक्कं समयं, तब्बंधकेसु सव्वविसुद्धो त्ति। **'सोलस मंदणुभागं संजमगुणपत्थिओ जयति'** त्ति थीणगिद्धितिगं मिच्छत्तं संजलणवज्जबारसकसाया एएसिं सोलसण्हं कम्माणं संजमं से काले पडिवज्जत्ति त्ति तस्स जहन्नं भवति। कहं? थीणगिद्धितिगमिच्छत्ताणंताणुबंधीणं एतेसिं अट्ठण्हं कम्माणं चरिमसमय-मिच्छदिट्ठी से काले संमत्तं संजमं च जुगवं पडिवज्जिउकामो जहन्नाणुभागं करेइ। अप्पच्चक्खाणा-वरणाणं असंजयसम्मदिट्ठी से काले संजमं पडिवज्जिउकामो जहन्नं करेइ,कारणं भणियं। पच्चक्-खाणावरणाणं देसविरयस्स से काले संजमं पडिवज्जिउकामस्स जहन्नं भवति, कारणं भणियं ॥७३॥

आहारमप्पमत्तो पमत्तसुद्धो उ अरइसोगाणं।

सोलस माणुसतिरिया सुरनारगतमतमा तिन्नि ॥ ७४ ॥

व्याख्या—**'आहारमप्पमत्तो'** त्ति आहारदुगस्स अप्पमत्तसंजओ से काले पमत्तभावं पडिवज्जिउकामो मंदाणुभावं करेति। कहं? तब्बंधकेसु अच्चंतसंकिलिट्ठो त्ति काउं। **'पमत्त-सुद्धो उ अरतिसोगाणं'** ति अरतिसोगाणं पमत्तसंजओ से काले अप्पमत्तभावं पडिवज्जि-उकामो जहन्नं करेइ। कहं? तब्बंधकेसु अच्चंतविसुद्धो त्ति काउं। **'सोलस माणुसतिरिय'** त्ति चत्तारि आउगाणि णिरयदेवगतितदाणुपुव्वीओ वेउव्वियसरीरं वेउव्वियंगोवंगं विगलतिगं सुहुमं अपज्जत्तगं साहारणं ति एतेसिं सोलसण्हं कम्माणं तिरियमणुया जहन्नाणुभागं करेंति।

कहं ? भन्नइ, णिरयाउगस्स जहन्नाणुभागं दसवाससहस्सियं ठितिं णिव्वत्तेंतो तप्पाओग्गविसुद्धो बंधइ, विसुद्धस्स बंधो णत्थि त्ति। सेसाणं तिण्हमायुगाणं अप्पप्पणो जहन्नकं ठितिं णिव्वत्तेंतो तप्पाओग्गसंकिलिट्ठो जहन्नाणुभागं करेइ, अइसंकिलिट्ठस्स बंधो णत्थि त्ति काउं। देवणेरइगा तिरियमणुयाउगाणं जहन्नियं ठितिं ण णिव्वत्तेंति, तेसु ण उववज्जंति त्ति काउं। निरयदुगस्स अप्पप्पणो जहन्नठिइं बंधमाणो तप्पाओग्गविसुद्धो जहन्नाणुभागं करेइ, तब्बंधकेसु अच्चंतविसुद्धो त्ति काउं। विसुद्धयरा तिरियगइयाइं[1] बंधंति त्ति तप्पाओग्गगहणं। वेउव्वियदुगस्स जहन्नाणुभागं निरयगइसहियं वीसं सागरोवमकोडाकोडिं बंधमाणो बंधति। कहं ? भन्नइ, तब्बंधकेसु अच्चंतसंकिलिट्ठो त्ति काउं। देवदुगस्स अप्पप्पणो उक्कोसठितिं बंधमाणो तप्पाओग्गसंकिलिट्ठो जहन्नं करेइ, तब्बंधकेसु अच्चंतसंकिलिट्ठो त्ति काउं। तओ संकिलिट्ठतरो मणुस्सगतिआदि बंधति त्ति तप्पाओग्गगहणं। विगलतिगसुहुमतिगाणं तप्पाओग्गविसुद्धो जहन्नं करेइ, जइ विसुद्धो तो पंचेंदियजाइं बंधइ त्ति तेण तप्पाओग्गगहणं, एयाओ भवपच्चयाओ देवणेरइका ण बंधंति त्ति। 'सुरणारगतमतमा तिन्नि' त्ति सुरणारगा तिन्नि तमतमा तिन्नि त्ति ओरालियसरीरं ओरालियंगोवंगं उज्जोवमिति एतासिं तिण्हं जहन्नाणुभागं देवा णेरइगा तिरियगतिसहियं वीसं सागरोवमकोडाकोडिं बंधमाणा, तत्थवि उक्कोसे संकिलेसे वट्टमाणा बंधंति, तब्बंधकेसु अच्चंतसंकिलिट्ठा त्ति काउं। तिरियमणुया अच्चंतसंकिलिट्ठा णिरयगइपाओग्गं बंधंति त्ति तेण तेसु ण लब्भति, ओरालियअंगोवंगस्स ईसाणंतेसु देवेसु जहन्नं ण लब्भइ। कहं ? ते अच्चंतसंकिलिट्ठा एगिंदियजातिं बंधंति त्ति। 'तमतमा तिन्नि' त्ति तिरियगतितिरियाणुपुव्विणीयागोत्ताणं अहे सत्तमपुढविणेरइको सम्मत्ताहिमुहो करणाइं करेत्तु चरिमसमए मिच्छद्दिट्ठी भवपच्चएण ते तिन्निवि बंधइ, जाव मिच्छत्तभावो, तस्स सव्वजहन्नो अणुभागो भवति। कहं ? तब्बंधकेसु अच्चंतविसुद्धो त्ति ॥ ७४ ॥

एगिंदियथावरयं मंदणुभागं करेंति तिगईया।
परियत्तमाणमज्झिमपरिणामा नेरइयवज्जा ॥ ७५ ॥

व्याख्या—'**एगिंदियथावरयं**' ति एगिंदियजातिथावरणामाणं जहन्नाणुभागं णेरइगे मोत्तूण सेसा तिगतिगावि परियत्तमाणमज्झिमपरिणामा बंधंति, परावृत्य परावृत्य पगतीओ बंधंति त्ति परियत्तमाणं, जहा एगिंदियं थावरयं, पंचिंदियं तसमिति। तेसु वि जे मज्झिमपरिणामो, जइ विसुद्धो तो पंचिंदियजातितसणामाणं तिव्वाणुभागं करेति, अह संकिलिट्ठो तो एगिंदियजातिथावरणामाणं अणुभागं तिव्वं करेति, तम्हा मज्झिमपरिणामो तुलादंडवत्। णेरइका भवपच्चएण ण बंधंति त्ति ॥ ७५ ॥

---

1 तिरियगइ' इति जे०।

आसोहम्मायावं अविरइमणुओ य जयइ तित्थयरं।
चउगइउक्कडमिच्छो पन्नरस दुवे विसोहीए ॥ ७६ ॥

व्याख्या—'**आसोहम्मायावं**' ति आसोहम्मो त्ति सोहम्मग्गहणात् ईसाणोवि गहिओ, एकश्रेणित्वात् आसोहम्मा देवा आतवनामस्स सव्वसंकिलिट्ठा एगिंदियजातिं वीसं सागरोवम-कोडाकोडिं बंधमाणा आतवस्स जहन्नं अणुभागं बंधंति, तब्बंधकेसु अच्चंतसंकिलिट्ठ त्ति काउं। '**अविरइमणुओ य जयति तित्थकरं**' ति असंजतसम्मद्दिट्ठी मणुओ णरके बद्धायुगो णिरयाहिमुहो मिच्छत्तं से काले पडिवज्जिहि त्ति तित्थकरणामस्स जहन्नाणुभागं करेइ, तब्बंधकेसु अच्चंतसंकिलिट्ठो त्ति काउं। '**चउगतिउक्कडमिच्छो पन्नरस**' त्ति पंचिंदियजातितेजइक-कम्मइकसरीरं वन्नगंधरसफासा पसत्था अगुरुलघुपराघायउस्सासतसबायरपज्जत्तगपत्तेगणिम्माणमिति। एतासिं पन्नरसण्हं पगतीणं जहन्नाणुभागं चउगतिगावि मिच्छद्दिट्ठी सव्वसंकिलिट्ठा बधंति। कहं ? भन्नइ, निरियमणुया णिरयगतिसहिय उक्कोसं ठितिं बंधमाणा अतिसंकिलिट्ठा एतासिं जहन्नाणुभागं बंधंति, सुहाओ त्ति काउं। ईसाणंतवज्जा देवा णेरइगा तिरियगइपंचिंदियजाइसहियं बंधमाणा जहन्नाणुभागं करेंति, पंचेंदियजातितसणामवज्जाणं ईसाणंता देवा एगिंदियजातिसहियं बंधमाणा सव्वसंकिलिट्ठा जहन्नं बंधंति, पंचिंदियजातितसणामाणं तत्थ जहन्नं ण लब्भति। कहं ? विसुद्धतरो बंधति त्ति काउं। '**दुवे विसोहिए(य)**' त्ति णपुंसगइत्थिवेदाणं जहन्नं चउगतिगा मिच्छद्दिट्ठी तप्पाओग्गविसुद्धा बंधंति, तओ विसुद्धतरो पुरिसवेदं बंधंति त्ति काउं। तत्थवि णपुंसगवेदस्स जहन्नं संकिलिट्ठतरो बंधइ, तओ विसुद्धतरो इत्थिवेदस्स ॥ ७६ ॥

सम्मद्दिट्ठी मिच्छो व अट्ठपरियत्तमज्झिमो जयति।
परियत्तमाणमज्झिममिच्छद्दिट्ठीओ(उ) तेवीसं ॥७७॥

व्याख्या—'**सम्मद्दिट्ठी मिच्छो व अट्ठपरियत्तमज्झिमो जयति**' त्ति सातासातं थिराथिर सुहासुहं जसकित्तिअजसकित्ति एतेसिं अट्ठण्हं कम्माणं जहन्नाणुभागं सम्मद्दिट्ठी वा मिच्छाद्दिट्ठी वा बंधति। कहं ? सातावेदणीतस्स उक्कोसिया ठिती पन्नरससागरोवमकोडाकोडीओ तप्पाओग्गसंकिलिट्ठो बंधइ, [118] तओ पभिति जाव असातस्स उक्कोसिता ठिति त्ति ताव संकिलिट्ठो संकिलिट्ठतरो संकिकिट्ठतमो य उत्तरुत्तरं बंधति, तेण एतेसु ठितिट्ठाणेसु जहन्नयं

(११८) जघन्यानुभागबन्धाधिकारे 'सम्मद्दिट्ठी' इत्यादिगाथाचूर्णौ "तप्पभिइ" त्ति। सा सातोत्कृष्टास्थितिः प्रभृतिरादिर्यत्र तत्तथा। क्रियाविशेषणमेतत्। अत्र च प्रभृतिशब्दस्योपलक्षणार्थत्वे-नातद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिर्द्रष्टव्यो, यथा-पर्वतादिकं क्षेत्रं नद्यादिकं वनमिति। यतः समयोत्तर-सातोत्कृष्टस्थितेरेव प्रारभ्य सजातीयप्रकृत्यन्तरबन्धाऽसम्भवेनाऽपरावृत्तपरिणामभावादेकान्तसंक्लेश-सम्भव इति।

1 टिप्पनानुसारिपाठ एवं सम्भाव्यते-'तप्पभिइ' इति।

ण लब्भति, संकिलिट्ठो त्ति काउं । [119]समयूणाओ[1] उक्कोसठितिओ आढवेत्तु जाव असातस्स सम्मद्दिट्ठिजोग्गा जहन्नठिती ताव एतेसु ठितिठाणेसु सम्मद्दिट्ठिमिच्छद्दिट्ठिजोग्गेसु सव्वेसुवि सव्वजहन्नगो परिणामो [120] तत्तुल्लो लब्भति, परियत्तिय परियत्तिय ठिइं बंधमाणस्स सम्मद्दिट्ठिजोग्गअसायजहन्नठितिओ आढवेत्तु जाव सातस्स सम्मद्दिट्ठिजोग्गा जहन्निया ठिति त्ति ताव विसुद्धो विसुद्धतरो विसुद्धतमो य ऊणूणं ठितिं बंधति त्ति एतेसु ठितिठाणेसु जहन्नयं न लब्भति; जो एक्कं चेव पगतिं बंधइ सो संकिलिट्ठो वा विसुद्धो वा भवति त्ति, तेण परियत्तमाणमज्झिमपरिणामग्गहणं, पगतिओ पगतिसंकमणे मंदो परिणामो लब्भति त्ति । एवं थिराथिरसुहासुहजसकित्तिअजसकित्तिणं भावेयव्वं । **'परियत्तमाणमज्झिम-मिच्छद्दिट्ठीओ तेवीसं'** ति मणुयगती तयाणुपुव्वी छसंठाणं छसंघयणं विहायगतिदुगं सुभगदुभगं सुस्सरदुस्सरं आएज्जअणाएज्जं उच्चागोत्तमिति एतासिं तेवीसाए पगडीणं चउगतिगावि मिच्छद्दिट्ठी परियत्तिय परियत्तिय ते बंधमाणा मज्झिमपरिणामे जहन्नाणुभागं बंधंति । कहं ? भन्नइ, सम्मद्दिट्ठीसु एतासिं परियत्तणं णत्थि त्ति काउं । कथं नास्ति इति चेत् ! भन्नइ, सम्मद्दिट्ठी जो मणुयदुगवज्जरिसभाणं बंधको सो देवदुगं ण बंधति, देवदुगबंधको मणुयदुगवज्जरिसभं ण बंधति । समचउरंसपसत्थविहायगतिसुभगसुस्सरआदेज्जउच्चागोत्ताणं पडिवक्खा सम्मद्दिट्ठिसु णत्थि त्ति तेण ण लब्भति । [121]सुभपगतीणं अप्पप्पणो उक्कोसठितिओ आढवेत्तु जाव असुभपगतीणं

(११९) *'समयूणा सा उक्कोसठिइ'* त्ति अत्राऽपरावृत्तबन्धार्हाऽसातस्थितिप्रथमस्थानापेक्षया समयोना पञ्चदशकोटीकोटिप्रमाणत्वेन या सातस्योत्कृष्टास्थितिस्तत आरभ्य यावत्प्रमत्तसंयतरूपसम्यग्दृष्टिबन्धार्हाऽन्तःकोटीकोटिरूपाऽसातस्य जघन्या स्थितिस्तावत्सातासातयोर्बन्धपरावृत्तिसम्भवेन सर्वत्र जघन्यानुभागबन्धस्तत्तुल्यो लभ्यत इति ।

(१२०) *तत्तुल्लो'* इति च । स एवैकः परं तुल्यः सन्निति । तत्र प्रमत्तसंयताद्यावदविरतसम्यग्दृष्टिस्तावत्सम्यग्दृष्टिबन्धार्हाण्येव सातासातयोर्जघन्यानुभागबन्धयोग्यस्थितिस्थानानि । तदुपरि तु यावत्पञ्चदशसागरोपमकोटीकोटयस्तावन्मिथ्यादृष्टिरेव । तत ऊर्ध्वं तु परावृत्यसम्भवेनासातस्यैवैकान्तसंक्लिष्टबन्धप्रायोग्यानि स्थितिस्थानानि यावत् त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटयस्तावल्लभ्यन्ते । अप्रमत्तसंयतप्रभृति तु यावत्सूक्ष्मसंपरायस्तावदेकान्तशुद्धबन्धप्रायोग्याण्युत्कृष्टानुभागभाञ्जि सातस्यैव स्थितिस्थानानीति । अत्र चौर्णे पदे यथाश्रुत व्याख्यायमाने कर्मप्रकृतिसंग्रहण्या अत्रैव स्थिराऽस्थिरादिपरिवर्तमानप्रकृतिजघन्यानुभागमार्गणानुसारेण च सह महान्विरोधः संपद्यते, अत इत्थं संवाद्य व्याख्यायत इति ।

(१२१) *'सुभपगईणं'* मित्यादि । शुभप्रकृतयो मनुष्यद्विक-आद्यसंस्थान-संहनन-शुभविहायोगत्यादयो नव त्रयोविंशत्यन्तर्गताः । उत्कृष्टाऽबस्थितिर्मनुष्यद्विकस्य पञ्चदशसागरोपमकोटीकोटयः; शेष सप्तकस्य दशेति । अशुभप्रकृतयश्च यथास्वं तिर्यग्द्विकादयश्चतुर्दशेति ।

1 समऊणाओ इति मु० ।

अप्पप्पणो सव्वजहन्निया ठिइ त्ति ताव एत्थंतरेसु सव्वठितिठाणेसु ण विसुद्धो णाधमो संकिलेसो, पगतीओ पगतिसंकमे लब्भति त्ति तेण एत्थ सव्वजहन्नाणुभागो तेवीसाए पगतीणं । [122]छसंठाण-छसंघयणाणंपि हुंडासंपत्तवज्जाणं अप्पप्पणो उक्कोसठितीओ आढवेत्तु समचउरंसवज्जरिसभ-नारायवज्जाणं जाव अप्पप्पणो जहन्निया ठिति त्ति एत्थंतरे सव्वजहन्नाणुभागो लब्भति । हुंडासंपत्ताणं वामणखीलियसंठाणसंघयणाणं उक्कोसप्पभिति जाव अप्पप्पणो जहन्नगो ठितिबंधो ताव एतेसु ठितिठाणेसु जहन्नगं लब्भति । समचउरंसवज्जरिसभाणं अप्पप्पणो उक्कोसठितीओ जाव णिग्गोहं वज्जनारायं जहन्निया ठिती ताव एतेसु ठितिठाणेसु जहन्नगं लब्भइ, हेट्ठओ विपक्खाभावात् विसुद्धत्वाच्च जहन्नाणुभागो ण लब्भति, जाओ तप्पाओग्गविसुद्धस्स संकिलिट्ठस्स वा अक्खाताओ पगतीओ तासिं सव्वासिं एस कमो ॥ ७७ ॥

सामित्तं भणितं, इयाणिं घातिसुभासुभठाणपच्चयविपाका य पदंसिज्जंति, अणुभागसभाव त्ति काउं पढमं घातिसंज्ञा, सव्वाओ पगतीओ सामन्नेणं तिप्पगाराओ हवंति, तं० सव्वघाती देसघाती अघाती त्ति । तत्थ सव्वघातिनिरूवणत्थं भन्नइ—

केवलनाणावरणं दंसणछक्कं च मोहबारसगं ।
ता सव्वघाइसन्ना हवंति मिच्छत्त वीसइमं ॥ ७८ ॥

व्याख्या—'**केवलनाणावरणं**' ति केवलणाणावरगं चक्खुअचक्खुओहिदंसणवज्जाणि छावि दंसणाणि संजलणवज्जा बारसकसाया एते सव्वघातिणामा भवंति, '**मिच्छत्त वीसइमं**' ति । कहं ? णाणदंसणसद्दहणचारित्ताणि सव्वं घातेंति त्ति सव्वघाइणो, केवलणाणावरणं सव्वाव-बोहावरणं, सेसचउणाणविसएसु तस्स आवरणविसयो णत्थि, जइ होज्ज अचेयणा जीवा होज्जा । "**सुट्ठुवि मेहसमुदए होंति पभा चंदसूराणं**" ति तेसिं मेघाणं सभावादेव तारिसी सत्ती णत्थि, जहा सव्वं न किंचि दीसति, एवं केवलणाणावरणस्सवि सहावादेव तारिसी सत्ती णत्थि जहा ण किंचि जाणइ त्ति । मेघावरियसेसपहाए अन्ने पुणो वाघायकरा कडकवाडादयो तरतमेण जहा ण किंचिवि दीसति तेहिंपि तम्मत्ताभासं अत्थि, एवं केवलणाणावरणेणावरियसेसस्स णेयविसयस्स तस्स य चत्तारि वाघातकरा मतिणाणावरणादयो, तेसिं खयोवसमतरतमेण विन्नाणविवुड्ढी भवति, एगिंदियादि जाव सव्वक्खओवसमलद्धिसंपन्नोत्ति । एवं सव्वत्थ सव्वदेसघातिम्मि जोएज्जा ।

---

(१२२) 'छसंठाणे' त्यादिना तु विशेषापेक्षित्वात् संस्थानसंहननयोः पृथग्भावनामाह–इह प्रथमाविकयोर्द्वयोः संस्थानसंहननयोर्दशादयो द्वि त्रिद्वा विंशतिपर्यन्ताः सागरोपमकोटीकोटयः परा-स्थितिः । ततश्च वामनकीलिकाख्ययो संस्थानसंहननयोरुत्कृष्टस्थितेरुपरि, अपरावस्त्येव बन्धाज्ज-घन्यानुभागबन्धाऽसम्भवेन हुण्डासंप्राप्तयोर्वर्जनमिति । अत एवानयोः पञ्चमसंस्थानसंहननोत्कृष्ट-स्थितिप्रभृत्येवाधस्ताज्जघन्यानुभागमाह–'हुण्डासंपत्ताण' मित्यादिना ।

'दंसणछक्कं' ति णिद्दापणगं केवलदंसणावरणं च एतेसिं उदए वट्टमाणो सव्वंपि पेक्खियव्वं ण पेक्खइ, सव्वस्स दंसणमावरेंति ण देसस्स, जओ णिद्दावत्थायामवि केतियोवि अचक्खुदंसणविसयो अत्थि, एत्थवि पुव्वुत्तमेहदिट्ठंतो [1]दट्ठव्वो। अहवा को वि राया कस्सवि रुट्ठो सव्वस्स हरणादि अवराहाणुरूवं दंडं करेइ, एवं सव्वघातितम्मचे ठाति, दंडियसेवस्स दव्वस्स सरीरादिस्स वा अन्ने दायिकादयो विणासकरा तरतमेण उट्ठेज्ज, जाव सरीरविणासो त्ति। एवं सव्वघातिअणावरिए दरिसणविसए अन्ने चक्खुदंसणावरणादिणो तिन्नि तद्देसमावरेंति तेसिं खयोवसमतरतमेण दरिसणवुड्ढी भवति एगिंदियादि जाव सव्वखयोवसमलद्धिसंपन्नो त्ति। चक्खुअचक्खुओहिदंसणपाओग्गे अत्थे ण पेक्खइ त्ति केवलदंसणावरणोदयो ण भवति, किंतु तेसिं चेव तिण्णमावरणेण ण पेक्खइ, एतेसिं जे अप्पाओग्गे अत्थे ण पेक्खति त्ति सो केवलदंसणावरणोदयो। केवलिस्स तयावरणखए छउमत्थविसयाऽणवबोह, विषयभेदात् ? इति चेत् तन्न, सर्वज्ञेयावबोधलाभे देशलाभानुप्रवेशात्, ग्रामलाभे क्षेत्रलाभादिवत्। चरित्त मोह बारसगं पि भगवया [2]पणीतं पंचमहव्वयसहियं[3] अट्ठारससीलंगसहस्सकलियं चारित्तं घाएंति त्ति सव्वघाइणो, ण देस- [विरइ]घाइणो, [4]तेसिं खओवसमविसेसेण मंसविरयादि [123]जाव चरिमाणुमति त्ति विरतिविसेसो न भवति। जइवि अचंतोदओ तहावि अयोग्गाहारादिविरति भवति, एत्थवि मेघदिट्ठंतो। मिच्छत्तं सव्वन्नुवीयरागोपदिट्ठतत्तपदत्थरुचिपडिघातं करेति त्ति सव्वघाति, तस्स खओवसमविसेसेण माणुससद्दहणादि जाव जीवादीणं च सद्दहणता। अचंतोदएवि केसिंचि दव्वविसेसाणं सद्दहणता भवति, एत्थवि मेघदिट्ठंतो ॥ ७८ ॥

इयाणिं देसघातीओ भन्नति—

नाणावरणचउक्कं दंसणतिगमंतराइए पंच।
पणुवीस देसघाई संजलणा नोकसाया य ॥ ७९ ॥

व्याख्या—'नाणावरणचउक्कं' ति केवलणाणावरणवज्जाणि चत्तारि णाणावरणाणि, चक्खुअचक्खुओहिदंसणावरणाणि तिन्नि, पंचवि अंतराइगाणि, चत्तारि वि संजलणा, णव णोकसाया एते देसं घायंति देसघाइणो, कहं ? भन्नइ आभिणिबोहिय णाणावरणादीणि चत्तारिवि केवलणाणावरणीएण अणावरियणेयविसयदेसो तं घाएंति त्ति देसघातिणो, पंचण्हमिंदियाणं

(१२३) जाव चरिमाणुमइ' त्ति। इह त्रिधानुमतिः-परिभोगानुमतिः प्रतिश्रवणानुमतिः, संवासानुमतिश्चेति। तत्र परिभोगानुमतिराधाकर्मोपभोक्तुरिव षट्कायवधे। प्रतिश्रवणानुमतिस्तदामन्त्रितप्रतिपत्तुरिव। संवासानुमतिस्तद्भोगिमध्यवासिन इव। यदुक्तम्-"सावज्जसंकिलिट्ठेसु ममत्तभावो संवासानुमइ।" [कर्मप्रकृतिचूर्णि-उपशमनाकरण गा.२९]"चरमाचैवंव।

1 'दत्तव्वो' 2 'पन्नत्तियं' इति मु. प्रतौ पाठः। 3 'मतिगं' इति जे. प्रतौ। 4 'जओ न तेसिं' इति जे.।

मणोछट्ठाणं जे विसया ते आवरेति त्ति आभिणिबोहियणाणावरणं, तव्विसयातीते अत्थे न जाणति त्ति तस्सोदयो ण भवति। एवं सुयणाणविसया जे अत्था ते आवरेइ त्ति सुयणाणावरणं। रूविदव्वाणि ण जाणइ त्ति ओहिणाणावरणं, अरूवीणि ण जाणइ त्ति तस्सोदयो ण भवति। अणंताणंतपएसियखंधविसए अत्थे आवरेइ त्ति मणपज्जवणाणावरणीयं तव्विसयअतीए पोग्गले अरूविदव्वे य ण जाणइ त्ति तदुदयो ण भवति त्ति। चक्खुदंसणादीणि तिन्निवि दंसणाणि केवलदंसणावरणीयेण अणावरियदंसणविसयदेसो तं घाएंति त्ति देसघातिणो। गुरुलघुकाणंतपदेसियाणि खंधाणि आवरेति त्ति चक्खुदंसणावरणं, सेसे पोग्गले अरूविदव्वाणि य ण पेक्खति त्ति तस्सोदयो ण भवति। सेसिंदियमणोविसए अत्थे आवरेति त्ति अचक्खुदंसणावरणं, तव्विसयातीते अत्थे ण पेक्खति त्ति तस्सोदओ ण भवति। ओहिदंसणं ओहिणाणवत्। दाणंतराइगादीणि पंचवि देसं घाएंति। कहं भन्नइ-गहणधारणजोग्गाणि पोग्गलदव्वाणि ताणि ण देइ, ण लहइ, ण भुंजइ, ण परिभुंजइ त्ति, दाणलाभभोगपरिभोगंतरायिकाणि सव्वदव्वाणमणंतिमे भागे तेसिं विसयो, तमेव उवघातंति त्ति देसघाइणो, सव्वदव्वाइं ण देति, ण लहति, न भुंजति त्ति, न परिभुंजइ त्ति, तेसिं उदओ ण भवइ, अशक्यत्वात् ग्रहणधारणस्य। एतेसिं खयोवसमविसेसाओ अणेगा लद्धिविसेसा उप्पज्जंति। वीरियंतराइस्स देसघातित्तं कहं? भन्नइ-सव्वं वीरियं आवरेइ त्ति (सव्वघाई), एवं णत्थि. जओ एगिंदियस्स वीरियंतराइगस्स कम्मस्स अच्चुदए वट्टमाणस्सवि आहारपरिणामणकम्मगहणगत्यन्तरगमणादि अत्थि, तओ पभिति वीरियविसेसं घातेति त्ति देसघाती, देसघाइयस्स खओवसमविसेसेण एगिंदियादि उत्तरुत्तरं वीरियवुड्ढी अणेगभेयभिन्ना जाव केवलि त्ति। केवलिंमि खयसंभूयं सव्ववीरियं, सव्वं वीरियं ण घातेति त्ति देसघाति। **'संजलणा णोकसाया य'** त्ति लद्धस्स चारित्तस्स देसघाते वट्टंति। कहं? भन्नइ-मूलुत्तरगुणातियारो एतेसिं उदयाओ भवति त्ति। उक्तं च-

"सव्वेवि य अतियारा संजलणाणं तु उदयओ होंति। मूलच्छेज्जं पुण होइ बारसण्हं कसायाणं ॥१॥"

कसायसहवत्तिणो णोकसाया ॥१॥

अवसेसा पयडीओ अघाइया घाइयाहि पलिभागा।
ता एव पुन्नपावा सेसा पावा मुणेयव्वा ॥८०॥

व्याख्या—**'अवसेसा पयडीओ अघाइया घाइयाहि पलिभाग'** त्ति सेसाओ वेयणियायुगणामगोत्तपगईओ अघाइयाओ। कहं? णाणदंसणचरित्तादिगुणे ण घातेंति त्ति। **'घाइयाहि पलिभाग'** त्ति घाइकसदृशा इत्यर्थः। तेहिं सहिया तत्तुल्ला भवंति, जहा अचोरो स्वभावात् चोरसहयोगेन चोरो भवति, एवं अघातिणोवि घातिसहिता तग्गुणा भवंति, दोषकरा इत्यर्थः। इहाणिं सुभासुभ त्ति **'ता एव पुन्नपावा सेसा पावा मुणेयव्व'** त्ति **'ता एव'**

त्ति अघाइणो 'पुन्नपाव' त्ति बायालीसं पसत्थपगतीओ पुन्नं सुभमित्यर्थः। वेयणियाउगनामगोत्तेसु जाओ अपसत्थपगतीओ ताओ पावं असुभमित्यर्थः। 'सेसा पाव' त्ति सेसाणि घाति कम्माणि पावाणि असुभानीत्यर्थः ॥८०॥

इदाणिं ठाण त्ति—

आवरणदेसघायंतरायसंजलणपुरिससत्तरस ।
चउविहभावपरिणया तिविहपरिणया भवे सेसा ॥८१॥

व्याख्या—'**आवरणदेसघायंतरायसंजलणपुरिससत्तरस**' त्ति चत्तारि णाणावरणाणि, तिण्णिदंसणावरणाणि पंच अंतराइगा, चत्तारिवि संजलणा पुरिसवेद इति एयाओ सत्तरस कम्मपगतीओ '**चउविहभावपरिणय**' त्ति एगठाणदुगठाणतिठाणचउठाणभावसंजुत्ता । कहं ? अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गएसु एतेसिं कम्माणं एगट्ठाणिगो अणुभागबंधो भवति। सेसाणि तिन्निवि ट्ठाणाणि संसारत्थाणं, तत्थ पव्वयराइसमाणकोहस्स चउट्ठाणिगो रसो भवति, भूमिराइसमाणकोहस्स तिठाणिओ, वालुगउदगराइसमाणकोहस्स दुट्ठाणिओ; घोसातकि-णिबादीणं[124] जातिरसतुल्लो एगठाणिओ रसो, तस्सवि अणेगा भेदा, [125] जहा पाणीयदुभागतिभागचउब्भागसंमिस्सादि जाव अंतिमो जातिरसलवो बहुपाणीयमिस्सो वा। दो भागा कढिज्जमाणा २ एगभागावट्ठितो एरिसो दुट्ठाणिओ रसो, तस्सवि अणेगभेया पूर्ववत्। तिन्नि भागा कढिज्जमाणा २ एगो भागो अवट्ठिओ एरिसो तिठाणिओ रसो, तस्सवि अणेगभेया पूर्ववत्। चत्तारि भागा कढिज्जमाणा २ एगभागावट्ठिओ एरिसो चउट्ठाणिको, तस्सवि अणेगभेदा पूर्ववत्, एवं सव्वाऽसुभाणं। सुभाणं तु कम्माणं दगवालुगराइसमाणेणं कोहोदएण चउट्ठाणिओ रसो बज्झति, भूमिराइ—समाणेणं कोहोदएणं[1] तिठाणिगो रसो भवति, पव्वयराइसमाणेणं कोहोदएणं दुट्ठाणिओ रसो भवति, एत्थ क्षीरेक्षुविकारादि दृष्टान्ता योज्याः इति। '**तिविधपरिणया भवे सेस**' त्ति जाओ सत्तरसपगतीओ भणिताओ ताओ मोत्तूण सेसाणं सुभाणमसुभाणं च सव्वपडीणं तिन्नि ठाणाणि भवंति कहं तं— चउट्ठाणिओ तिट्ठाणिओ बिट्ठाणिओ त्ति। एगट्ठाणिओ ण संभवति; कहं ? भण्णइ—

(१२४) ['जातिरसे' त्यादि] जात्यादि-क्वाथादिविशेषाधानमन्तरेण जन्मनैव रसो विपाकदानशक्तिलक्षणो जातिरसः स्वाभाविक इत्यर्थः।

(१२५) 'जहे' त्यादि। द्वितीयो भागो द्विभागोऽर्धमित्यर्थः। एवं त्रिभाग-चतुर्भागावपि, पश्चात् पदत्रयस्य द्वन्द्वः। पानीयस्य जलस्य द्विभाग-त्रिभाग-चतुर्भागैस्तैः सम्मिश्रो व्याप्त इति विग्रहः। स आदिर्यस्य स तथादिः। आदिशब्दात् पञ्चम-षष्टमभागादिसम्मिश्रग्रहः। तथा द्वि-त्रि-चतु:प्रभृतिभिः

1 'कोहेएणं' इति जे.

[126]अणियट्टिपभितीसु [127]सेसाणं असुभपगतीणं बंधो णत्थि त्ति, तेण सेसअसुभाणं एगठाणिओ रसो नत्थि। सुभपगतीणं कहं? भन्नइ—जाणि चेव संकिलेसठाणाणि ताणि चेव विसोहिठाणाणि पच्चयाति-चडणोत्तरणपदवत्। संकिलेसठाणेहिंतो विसोहिठाणाणि विसेसाहियाणि। कहं? भन्नइ, जो खवग-सेढिं पडिवज्जति सो ण णियट्टति, तेहिं विसोहिठाणेहिं विसोहिट्ठाणाणि अधिकाणीति। सेढिंवज्जि-एसु[1]जाणि विसोहिसंकिलेसठाणाणि तेसु एगठाणियरसभावो णत्थि। जो असुभपगतीणं चउ-ठाणबंधको सो सुभपगतीणं दुठाणियं रसं बंधति। जो सुभपगतीणं चउट्ठाणबंधको सो असुभ-पगतीणं दुठाणबंधको, खवगसेढिं (उवसमसेढिं च)[2] पडुच्च एगठाणबंधको वा, तेण सुभपगतीणं एगठाणिओ रसो ण संभवति ॥८१॥

इदाणिं पगतीणं पच्चयणिरूवणत्थं भन्नइ—

चउपच्चय एग मिच्छत्तसोलस दु पच्चया य पणतीसं।
सेसा तिपच्चया खलु तित्थयराहारवज्जाओ ॥८२॥

व्याख्या—'**चउपच्चय एग**' त्ति एगा पगती मिच्छत्तादिचउपच्चइका। कहं? सातावेद-णीयं मिच्छद्दिट्ठिम्मि बंधं एति त्ति मिच्छत्तपच्चइकं, सेसा पच्चया तदंतग्गया, सासणादि जाव असंजओ त्ति एतेसु मिच्छत्तअभावे वि बंधो अत्थि त्ति असंजम पच्चओ, सेसपच्चयदुगं तदंतग्गतं, पमत्तादि जाव सुहुमरागो एतेसु मिच्छत्ताऽसंजमाभावे वि बंधो अत्थि त्ति कसायपच्चयओ, उवसंत कसायादिसु तिसु एतेसु मिच्छत्ताऽसंजमकसायाऽभावेऽवि बंधो अत्थि त्ति जोगपच्चइगो त्ति। '**मिच्छत्त सोलस**' त्ति जाओ मिच्छत्तंताओ सोलसपगतीओ ताओ मिच्छत्तपच्चयाओ, कहं?

पालीयमार्गश्च सम्मिश्रैकरसमार्गग्रहः। अत एवाह—'जाव अंतिमो जाइरसलवो' त्ति। अत्र रसो-दाहरणश्लोकः—

"शुभाशुभागास्तुल्याः स्युः, गुडखण्डसिताऽमृतैः।
इतरे निम्ब-कञ्जीर-विषहालाहलैः समाः॥ [ ]

तथा— "घोसाडइनिंबुवमो, असुहाण सुहाण खीरक(ख)ण्डुवमो।
एगट्ठाणो उ रसो, अणंतगुणिया कमेणेत्तो॥" [पञ्चसं० द्वा० ३ गा. ३३]

(१२६) '**अनियट्टी**' त्यादि। केवलज्ञानकेवलदर्शनावरणयोर्द्विस्थानिकरसबन्धि(धे)ऽप्य-निवृत्तिबादर-सूक्ष्मसंपराययोरविवक्षयोक्तम्।

(१२७) '**सेसाणं असुभपगईण बंधो णत्थि**' त्ति स्वभाव एव तयोः सर्वघातिनो द्विस्थानिकरसस्य तत्र बन्धात्।

---

1 'खवगसेढिवज्जेसु' इति मु.। 2 'उवसमसेढिं च' इति पाठोऽत्रावश्यकः प्रतिभाति, कर्मप्रकृतावुपशमनाकरणे उप-शामकस्यैकस्थानिकरसप्रतिपादनात्।

मिच्छत्ताभावे बंधं ण एंति त्ति। 'दुपच्चया य पणतीसं' ति सासणसम्माद्दिट्ठी असंजमसम्मादिट्ठीअंताओ पंचतीसं पगइओ मिच्छत्तअसंजयपच्चयाओ। कहं? एतेसिं मिच्छद्दिट्ठिम्मि बंधो अत्थि त्ति मिच्छत्तपच्चइकाओ, सासणादिसु वि तीसु बंधो अत्थि त्ति असंजमपच्चतिकाओ। **सेसा तिपच्चया खलु'** त्ति सेसाओ तित्थकराऽऽहारगवज्जाओ सव्वपगतीओ जाओ संजयाऽसंजयपमत्ताऽपमत्तअपुव्वाऽणियट्टिसुहुमरागंताओ ताओ मिच्छत्ताऽसंजमकसायपच्चइकाओ। कहं? मिच्छादिट्ठिम्मि बंधं एंति त्ति मिच्छत्तपच्चइकाओ, असंजएसुवि बंधं एंति त्ति असंजमपच्चइकाओ, कसायसहिएसुवि बंधं एंति त्ति कसायपच्चइयाओ त्ति। तित्थकराऽऽहारणामाणं पच्चओ पुव्वुत्तो ॥८२॥

इयाणिं विवाकनिरूवणत्थं भन्नइ--

पंच य छत्तिन्नि छ पंच दोन्नि पंच य हवंति अट्ठेव।
सरिराई फासंता पयडीओ आणुपुव्वीए ॥८३॥

व्याख्या--पंच छ तिन्नि छ पंच दोन्नि पंच अट्ठ त्ति सरीरातिफासंता पगतीओ **'आणुपुव्वीए'** त्ति सरीरा ५ संठाणा ६ अंगोवंगा ३ संघयणा ६ वन्न ५ गंध २ रस ५ फासा ८ यथासंखेण घेतव्वाणि, पंच सरीराणि छसंठाणाणि त्ति (एवमाइ) ॥८३॥

अगुरुलहुग उवघायं परघा उज्जोय आयव निम्मेणं।
पत्तेयथिरसुभेयरनामाणि य पोग्गलविगागा ॥८४॥

व्याख्या-अगुरुलहुगं उवघायं पराघातं उज्जोयं आतवणाम णिम्मेणं **'पत्तेयथिरसुभेतरणामाणि य'** त्ति पत्तेगं साहारणं थिराथिरसुभासुभणामाणि य एताणि सव्वाणि पोग्गलविवागाणि। कहं? भन्नइ-卐 पोग्गलो विवागो अस्सेति, 卐 पोग्गलेसु वा विवागो अस्सेति पोग्गलविवागा, पंचण्हं सरीरकम्माणं उदए वट्टमाणो तप्पाओग्गपोग्गले घेत्तूण सरीरत्ताए परिणामेइ त्ति सरीराणि पोग्गलविवागाणि। एवं गहिएसु चेव पोग्गलेसु संठाणअंगोवंगसंघयणवन्नगंधरसफासअगुरुलहुपराघायउवघायआयवउज्जोवनिम्मेणनामपत्तेगथिरसुभाणि सेयराणि नामाणि विवागं गच्छंति त्ति पोग्गलविवागिणो पोग्गलधम्मा सव्वे त्ति करेत्तु ॥ ८४ ॥

आऊणि भवविवागा खित्तविवागा य आणुपुव्वीओ।
अवसेसा पयडीओ जीवविवागा मुणेयव्वा ॥ ८५ ॥

व्याख्या-**'आऊणि भवविवाग'** त्ति देहो भवो त्ति वुच्चइ देहमाश्रित्य आऊणि विवागं देति। आह-अंतरगतीए वट्टमाणस्स णिरयसरीरं णत्थि त्ति तत्थ आउगोदयो कहं? भन्नइ-

卐......卐 स्वस्तिक द्वयान्तर्गतः पाठो जे. प्रतौ नास्ति।

णिरयपाओग्गोदयसहिओ कम्मइगसरीरोदयो णिरयभवो वुच्चइ तम्हा ण दोसो, एवं सव्वत्थ । **'खेत्तविवागा य आणुपुव्वीओ'** त्ति खेत्तमागासं तम्मि उदओ जेसिं ते खित्तविवागिणो, अंतरगतीए वट्टमाणस्स चउण्हमाणुपुव्वीणं उदओ तदुपग्रहत्वात् , मीणस्स जलवत् । **'अवसेसा पगतीओ जीवविवागा मुणेयव्व'** त्ति पोग्गलविवागि आउग आणुपुव्वीओ य मोत्तूण सेसाओ सव्वपगतीओ जीवविवागाओ । कहं ? भन्नइ–णाणावरणोदयपरिणओ जीवो अन्नाणी भवति जीवम्मि अस्स विवागो त्ति जीवविवागी, मद्यपीतपुरुषपरिणामवत् । दंसणावरणोदएणं अदंसणी, सायाऽसायोदएणं सुही दुक्खी, मोहोदया दंसणं चारित्तं च प्रति व्यामोहं गच्छति; गतिजाति-ऊसासविहायगतितसथावरबादरसुहुमपज्जत्ताऽपज्जत्तसुभगदुभगसुस्सरदुस्सरआएज्जअणाएज्जजसा-ऽजसतित्थकरउच्चाणीयपंचअंतराइगमिति, एतेसिं उदए वट्टमाणो जीवो तं तं भावं परिणमति, द्रव्याश्रयं प्रतीत्य स्फटिकपरिणामवत् । पोग्गलविवागिआयुगाणुपुव्वीणं जीवविपाकत्ता जीवविपाकाओ कहं ण भवंति ? इति चेदुच्यते, तत्प्रधाननिर्देशात् जीवस्स होंतमवि पुद्गलमाश्रित्य विपाको, नारकतिर्यग्मनुष्याऽमरभवमाश्रित्य विपाकः, विग्रहगतावन्यत्रोदयाभावात् (तमाश्रित्य विपाकः), पोग्गलभवखेत्तविवागिणो वुच्चंति त्ति । उत्तरपयडिहिंतो सव्वत्थवि सव्वमूलपयडीणं सम्मं परूविय-व्वा सुभासुभपरूवणादीया ।।८५।। अणुभागबंधो भणिओ ।

इयाणि पएसबंधस्स अहक्कमं पत्तस्स परूवणा किज्जइ । पुव्वं ताव ताइं पोग्गलदव्वाइं कहिं ठियाइं ? कहं गेण्हइ ?केरिसाइ ? केरिसगुणोववेताइं ? केत्तियाइं ति ! तं णिरूवणत्थं भन्नइ-

एगपएसोगाढं सव्वपएसेहिं कम्मणो जोगं ।
बंधइ जहुत्तहेउं साईयमणाइयं वावि ।।८६।।

व्याख्या-**'एगपदेसोगाढं'** ति एगम्मि पएसे ओगाढं एगपएसोगाढं, केण समं ? भन्नइ–जीवपएसेहिं समं, एगम्मि आकासपएसे ठिए पोग्गलदव्वे **'सव्वपएसेहिं'** त्ति सर्वात्मप्रदेशैः जीवपएसाणं अन्नोन्नं सह संबंधो शृंखलावत् , तेण अन्नोन्नोपकारे वट्टंति त्ति, सव्वजीवपदेसेहिं सव्वजीवपदेसत्थे **'कम्मणो जोग्गं'** ति कम्मणो जोगे पोग्गले घेत्तूण कम्मत्ताए परिणामेइ, जीवपएसबाहिरखेत्तट्ठिए पोग्गले ण गेण्हइ, किं कारणं अनाश्रितस्य तत्परिणामाभावात् , जहा अग्गी तव्विसयट्ठीए तप्पाओग्गे दव्वे अग्गिताए परिणामेइ त्ति, ण अविसयगए इति, तहा जीवोवि तप्पएसट्ठिए गेण्हइ, ण परतो, कम्मणो जोग्गं ति वुत्तं । केरिया कम्मजोग्गा ? केरिसा वा अजोग्ग त्ति जोग्गाजोग्गवियारणत्थं वग्गणाओ परूविज्जंति–परमाणुवग्गणा अग्गहणवग्गणा, दुपए-सियवग्गणा अग्गहणवग्गणा, तिपदेसियवग्गणा अग्गहणवग्गणा, एवं चउपएसियपंचछजावसंखेज्जा-ऽसंखेज्जपदेसियवग्गणा अग्गहणवग्गणा, अणंतपएसियवग्गणा अग्गहणवग्गणा, अणंताणंतपदेसिय-वग्गणाणं केइ गहणपाओग्गा, केइ अग्गहणपाओग्गा, जे गहणपाओग्गा ते तिण्हं ओरालियवेउव्वियआहारग-

सरीराणं [128]आहारगवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवइओ ? विसेसाहिओ, को विसेसो ? तस्सेवाणन्तिमो भागो, तस्सुवरिं एक्के रूवे छूढे अग्गहणवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवइओ ? तो अणंतगुणो, को गुणकारो ? अभव्वसिद्धिएहिं अणंतगुणो सिद्धाणं अणंतइमो भागो, तस्सुवरि एक्के रूवे छूढे तेजइकसरीरवग्गणाजहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवइओ ? तो विसेसाहिओ, को विसेसो ? तस्सेव अणंतिमो भागो, तस्सुवरि एक्के रूवे छूढे अग्गहणवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवइओ ? अणंतगुणो, को गुणकारो ? अभव्वसिद्धिकेहिं अणंतगुणो सिद्धाणमणंतइमो भागो । तस्सुवरिं एक्के रूवे छूढे भासादव्ववग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवतिओ ? विसेसाहिओ, को विसेसो ? तस्सेव अणंतिमो भागो । तस्सुवरिं एक्के रूवे छूढे अग्गहणवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केत्तिओ ? अणंतगुणो, को गुणकारो ? अभव्वसिद्धिएहिं अणंतगुणो सिद्धाणमणंतइमो भागो । तस्सुवरिं एक्के रूवे छूढे आणापाणुवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवतिओ ? विसेसाहिओ, को विसेसो ? तस्सेव अणंतिमो भागो । तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे अग्गहणवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवतिओ ? अणंतगुणो, को गुणकारो ? अभव्वसिद्धिएहिं अणंतगुणो सिद्धाणमणंतिमो भागो । तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे मणोदव्ववग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवतिओ ? विसेसाहिओ, को विसेसो ? तस्सेव अणंतइमो भागो । तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे अग्गहणवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवतिओ ? अणंतको गुणो, को गुणकारो ? अभव्वसिद्धिकेहिं अणंतगुणो सिद्धाणं अणंतिमो भागो । तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे कम्मइगसरीरवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवइओ ? विसेसो, को विसेसो ? तस्सेव अणंतिमो भागो । तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे धुवाचित्त-

(१२८) *'आहारकवग्गणा जहन्न'* त्ति । आहार एव आहारक स्वार्थे कन्, तस्य आहारकस्य वा जन्तोः कावलिकाद्यन्यतरमाहारमाहारयतो योग्यत्वेन वर्गणा दलिकक्रमप्रचयरूपा आहारवर्गणाः । आद्यतनुत्रययोग्यं दलिकमित्यर्थः । यस्मादेतदनुपादाने विग्रहगत्यादौ तदन्यतैजसादिद्रव्यग्रहणेऽपि जीवोऽनाहारक इति व्यपदिश्यते आसां चाद्या जघन्येति । तदिहेदमवबुध्यते-यदुत ग्रहणप्रायोग्यवर्गणा आदिवर्गणायाः प्रभृति आ उत्कृष्टवर्गणाया अविशेषेण सर्वा निरन्तरतया यथोत्तरमादिशरीरत्र[य] प्रायोग्यद्रव्या इति । यत्पुनरन्यत्रौदारिकवैक्रियाहारकवर्गणाः पृथगधस्तादुपरि चाऽयोग्यवर्गणा समनुगताः प्रतिपाद्यन्ते-'एवमजोग्गा जोग्गा पुणो अजोग्गाओ वग्गणाणंता । ओरालियाइयाणं [1]नेयं तिविगप्पमेक्केक्कं' । इति वचनात्तन्मतान्तरं मतान्तरं बीजं च सर्वविद्वेद्यमिति । तैजसशरीरवर्गणा आहारपरिपाकादिगुणस्य तैजसशरीरस्य योग्यद्रव्या इति । भाषावर्गणाश्च चतसृणां भाषाणां पटह भेरी-काहला-जलदशब्दादिपरिणामस्य च योग्यद्रव्या इति । आनप्राणवर्गणाश्चोच्छ्वासनिःश्वासतया ग्राह्यद्रव्या इति । एतत्प्ररूपणा च पृथक् कर्म प्र(कृ)ति प्राभृते [त] त्संग्रहण्यां च न दृश्यते । यदाह संग्रहणिकारः—

1 'वेउव्वियाइयाणं' इति विशेषावश्यके, स च शुद्धपाठ इति ।

[111]वग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केत्तिओ? अणंतगुणो, को गुणकारो? सव्वजीवाणं अणंतगुणो। तस्सुवरिं एक्के रूवे छूढे [112]अधुवाचित्तवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवइओ? अणंतगुणो, को गुणकारो? सव्वजीवाणं अणंतगुणो। तस्सुवरिं एक्के रूवे छूढे पढमसुन्नवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवइओ? अणंतगुणो, को गुणकारो? सव्वजीवाणमणंतगुणो। तस्सुवरिं एक्के रूवे छूढे पत्तेगशरीरवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केत्तिओ? असंखेज्जगुणो, को? गुणकारो! पलिओवमस्स असंखेज्जइमो भागो। तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे बिया सुन्नवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवइओ! असंखेज्जगुणो, को गुणकारो! असंखेज्जाणं लोगाणं असंखेज्जइमो भागो, सोवि भागो असंखेज्जालोगा। तस्सुवरिं एक्के रूवे छूढे बायरनिगोयवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवत्तिओ? असंखेज्जगुणो, को गुणकारो? पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो। तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे तातिता सुन्नवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवत्तिओ? भन्नइ, असंखेज्जगुणो, को गुणकारो? अंगुलस्स असंखेज्जतिभागमेतस्स खेतस्स जावइया आवलियाऽसंखेज्जइभागे समया तावइयाइं वग्गमूलाइं घेप्पंति तत्थ चरिमवग्गमूलस्स असंखेज्जइभागे जावइया आगास-

---

"परमाणु १ संख २ संखा ३ ऽणंतपएमा अभव्वणंतगुणा।
सिद्धाणणंतभागो, आहारगवग्गणा तितणू ४॥" [कर्मप्र० बं० क० १८]

'तितणु' त्ति' तिस्रस्तनवः औदारिकाद्याः कार्यतया यासां सन्ति तास्त्रितनव इति।

'अग्गहणंतरियाओ तेयग ५ भासा ६ मण ७ य कम्मे ८ य त्ति'

(१२९) 'धुवाऽचित्तवग्गणा' त्ति। ध्रुवाश्च नैरन्तर्येण कृतावस्थाना, अचित्ताश्च जीवग्रहणाऽविषयत्वात्, ध्रुवाचित्ताः। अत्र ध्रुवशब्दोऽन्तदीपकः। तेन एतदन्ता प्राग्वर्गणा परमाणुवर्गणाप्रभृतयः सर्वापि सामान्येन निरन्तरव्यवस्थानात् ध्रुवाः, अचित्तध्वनिश्चादिदीपकः। तेन एतदादयः आ महास्कन्धात् वर्गणा जीवेनाग्रहणादचित्ता इति।

(१३०) 'अधुवाऽचित्तवग्गण' त्ति। अध्रुवाश्चाऽनिरन्तराः, एकोत्तरवृद्ध्या कदाचित्कासाञ्चिदवयमासां मध्येऽभावात्। अचिताश्चेति प्राग्वदध्रुवाचिताः। ताश्चताः वर्गणाश्चेति विग्रहः। सर्वा अपि शून्यवर्गणाः पुनः प्राग्वर्गणानामवसानस्थानादुपरि एकोत्तरवृद्ध्या उपरितनाशून्यवर्गणा प्रथमस्थानादधस्तात्तथाक्रमवर्तुलिकविकलान्येवानतानि संख्यास्थानानि तल्लक्षणाः। प्ररूपणा पुनरासां उपरितनवर्गणानां वर्लिकस्य बाहुल्यख्यापनार्थमिति। प्रत्येकशरीरवर्गणाश्च प्रत्येकशरीरिणां साधारणविलक्षणानां पृथिवीकायादीनां यानि यथासंभवमौदारिकवैक्रियाहारकतैजसकार्मणानि शरीरनामकर्माणि तेषामेकैकप्रदेशस्य जीवव्यापारमन्तरेणैव विस्रसापरिणामोपचिताः स्वजघन्यस्थानात् सर्वजीवानन्तगुणोत्तरवृद्धय आवेष्टनपरिवेष्टनकारिण्यः पुद्गलश्रेणय इति। बादरसूक्ष्मनिगोदवर्गणा अप्येवं रूपा एव बादरसूक्ष्माणां बादरसूक्ष्मनामकर्मोदयवतामनन्तकायिकानां यान्यौदारिकतैजसकार्मणशरीरनामकर्माणि तत्प्रदेशाश्रयेण वक्तव्याः।

पएसा तेसिं असंखेज्जइभागो गुणकारो। तस्सुवरिं एक्के रूवे छूढे सुहुमणिगोदवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केत्तिओ ? असंखेज्जगुणो, को गुणकारो ? आवलियाए असंखेज्जइभागो। तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे चउत्थ सुन्नवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केत्तिओ ? असंखेज्जगुणो, को गुणकारो ? असंखेज्जाओ सेढीओ पतरस्स असंखेज्जतिभागो। तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे महाखंधवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवतिओ ? असंखेज्जगुणो, को गुणकारो ? पलिओवमस्स संखेज्जइभागो [१३१]'असंखेज्जइभागो त्ति वा पाठः। एतासिं अत्थो जहा कम्मपगडिसंगहणीए, जाओ अग्गहणवग्गणाओ ताओ सव्वओ हेट्ठिल्लोवरिल्ललक्खणाओ त्ति दुविहाओ हवंति। एतासु कम्मइगसरीरवग्गणाओ जाओ ताओ कम्मपाओग्गाओ ताओ कम्मत्ताए बंधंति। 'जहुत्तहेउं' ति सामन्नविसेसपच्चता पुव्वुत्ता तेहिं बंधंति। 'साईयमणाइयं वावि' त्ति बंधवोच्छेदकाउं बंधंतस्स सातिओ बंधो, तम्मि वा अन्नंमि वा काले बंधवोच्छेदमकरेत्तु बंधंतस्स अणादिओ बंधो संतत्या, अपिशब्दाद् ध्रुवाऽध्रुवावपि सूइया, कम्मइगसरीरवग्गणापाओग्गा कम्मस्स सेसाओ अजोग्गाओ॥८६॥

कम्मजोग्गाणं दव्वाणं वण्णादिणिरूवणत्थं भन्नइ—

पंचरसपंचवन्नेहि संजुयं दुविहगंधचउफासं।
दवियमणंतपएसं सिद्धेहि[1] अणंतगुणहीणं॥ ८७॥

व्याख्या–'पंचरस' ताइं एक्केक्काइं खंधदव्वाइं पंचवन्नाई, दुगंधाइं, पंचरसाइं, निद्धुण्हं णिद्धमीयलं, लुक्खुण्हं, लुक्खसीयलं [१३२]मउयं लहुयमिति चउ फासाइं, 'दवियं' ति एगदव्वं 'अणंतपदेसं' ति अणंताणंतपरमाणूणं संघातो, तं कियत्परिमाणं इति चेत् ? 'जीवेहिं अणंतगुणहीणं', जीवा सिद्धाः, सुद्धज्ञानदर्शनसहितत्वात्, संपूर्णजीवलक्षणा इति, तेहि अणंतगुणहीणाणं परमाणूणं अभविएहि अणंतगुणब्भहियाणं समुदाएणं एक्को खंधो, सव्वेऽवि तल्लक्खणा खंधा जहा भणिता। केत्तिया ते ? अभविताणं अणंतगुणा सिद्धाणमणंतभागमेत्ता खंधा एगसमएणं गहणं एंति कम्म-

(१३१) 'असंखेज्जभागो त्ति वापाठ.' इति। अत्राभिलापः 'जहण्णाए महाखंधवग्गणाए उक्कोसो केवत्तिओ ? विसेसाहिओ, को विसेसो ? तीए चेव असंखेज्जतिभागो'। यदुक्तं कर्मप्रकृतिप्राभृते "जहण्णाओ महाखंधदव्ववग्गणाओ उक्कोसा विसेसाहिया. केत्तियमेत्तो विसेसो सव्वजहण्ण महाखंधवग्गणाए पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेण अवहरिदाए जं भागलद्धं तत्तियमेत्तो विसेसो त्ति। एतच्च मतान्तरं। एताश्च महास्कन्धवर्गणा टंककूटादिप्रतिष्ठिताः, विस्रसापरिणामोपचिताः, अतिसूक्ष्मपरिणतयः पुद्गलप्रचया इति।

(१३२) 'मउयं लहुय' इति। यदत्र मृदुलघुस्पर्शाभ्यामवस्थायिभ्यां युक्तत्वेन स्निग्धमुष्णमित्यादिभिश्चतुर्भिश्च द्विकसंयोगैश्चतुःस्पर्शत्वमुक्तं यद्व्याख्याप्रज्ञप्त्यादिभिः सह विरुद्धमिव भाति तत्र स्निग्ध रुक्ष-शितोष्णरूपाणामेव चतुर्णां स्पर्शानां कर्मद्रव्येष्वभिधानात्।

1 'जीवेहिं' इति पाठ एव चूर्ण्यनुसारीति।

त्ताए । ते य बंधगा मूलपगतीणं चउव्विहा, तं० एगविहबंधगा, छव्विहबंधगा, सत्तविहबंधगा, अट्ठविहबंधगा य । जो एकविहं बंधति तस्स तम्मि समए जहन्नेण वा उक्कोसेण वा अजहन्नुक्कोसेण वा जोगेण गहियं सव्वमेव एक्कस्स वेयणिज्जस्स कम्मणो भवति । जो छव्विहं बंधति तस्स तमेव दलियं छण्हं कम्माणं छ भागा भवंति । जो सत्तविहं बंधति तस्स तमेव दलियं सत्तण्हं कम्माणं सत्तभेदं भवति । जो अट्ठविहं बंधति तस्स तमेव दलियं अट्ठण्हं कम्माणं अट्ठभेदं भवति । एगसमयगहियं दलियं अट्ठविधादिबंधत्ताए किह परिणमति ? इति चेद् , उच्यते, तस्स अज्झवसाणमेव तारिसं हवइ जेण अट्ठविहा(इ) बंधत्ताए परिणमत्ति, जहा कुंभकारो मृत्पिंडे मल्लग-सरावादीणि णिव्वत्तेइ, तस्स तारिसो परिणामो, जहा एत्थ एक्करूवाइं अणेगरूवाणि वा एत्तियाइं दव्वाइं णिप्फाएमि त्ति एवं सव्वन्नुदिट्ठो परिणामो, एतेण परिणामेण संजुत्तस्स अट्ठविधादित्ताए दलियं परिणमति ॥८७॥

तहिंपि एतस्स कम्मुणो अमुकं अमुकं एत्तियं दलियंति, एवं विभत्तस्स दलियस्स परिमाण-णिरूवणत्थं भण्णइ—

आयुगभागो थोवो णामे गोए समो तओ अहिओ ।
आवरणमंतराए तुल्लो अहिगो य मोहे वि ॥ ८८ ॥
सव्वुवरि वेयणीए भागो अहिगो अ कारणं किं तु ।
सुहदुक्खकारणत्ता ठिईविसेसेण सेसाणं ॥ ८९ ॥

व्याख्या– **आयुगभागो'** त्ति जो अट्ठविहबंधको तस्स आयुगस्स भागो सव्वत्थोवो, णामगोत्ताणं दोण्हवि भागो तुल्लो, आउगभागाओ विसेसाहिओ । **'आवरणमंतराए तुल्लो अहिगो य'** त्ति णाणावरणदंसणावरणअंतराइयाणं भागो तिण्हवि तुल्लो, णामगोत्तेहिं विसेसाहिगो **'मोहे वि'** त्ति मोहणिज्जस्स भागो विसेसाहिगो **'सव्वुवरि वेयणीए भागो अहिगो'** त्ति मोहणीज्जभागाओ वेयणीयभागो विसेसाहिओ त्ति । **'कारणं किं तु'** त्ति किं कारणं आउगादि-वेदणीयपज्जवसाणाणं भागविभागो त्ति भन्नइ **'सुहदुक्खकारणत्त'** त्ति वेयणीयस्स सव्वम-हंतो भागो सुहदुक्खकारणंति बहूहिं दलिएहिं सुहदुक्खाइं फुडीभवंति, आहारवत् , जहा आहारे असणपाणखाइमाणं बहूहिं दव्वेहिं तित्ती भवति, साइमेण थोवेणवि, असणाइतुल्लं वेयणीज्जं साइम-तुल्लाणि सेसाणि, विषवत्ता सेसाणि त्ति स्तोकमपि विषं स्फुटीभवति । **'ठिईविसेसेण सेसाणं'** ति सेसाणि आउगादीणि मोहपज्जवसाणाणि ठितिविसेसादेव तेसिं दलियविसेसो । एवं चेव आउ-गाओ णामगोत्ताणं संखेज्जगुणं पावइ ? सच्चं, आउगाधारत्वात् शेषप्रपंचस्य, तम्हा आउगस्स बहुगं दलितं तहावि णामादयो धुवबंधिणो त्ति काउं विसेसाहिकाणि । आह–णाणावरणादिहिंतो मोह-णिज्जस्स भागो संखेज्जगुणो पावति ठितिविशेषत्वात् ? सच्चं, चरित्तमोहस्स चत्तालीसंति काउं

णाणावरणाओ विसेसाहिय एव, [133]मिच्छत्तदलियं चरित्तमोहस्स अणंतिमो भागो त्ति तं अहिकिच ण भणितं ॥ ८८-८९ ॥

इयाणिं सादियणाइयपरूवणत्थं भन्नइ—

छण्हंपि अणुक्कोसो पएसबंधो चउव्विहो बंधो ।
सेसतिगे दुविगप्पो मोहाउ य सव्वहिं चेव ॥ ९० ॥

व्याख्या–[134]''छण्हंपि अणुक्कोसो पदेसबंधे चउव्विहो बंधो' त्ति णाणावरणदंसणावरणवेदणीयणामगोत्तमंतराइगाणं एएसिं छण्हं कम्माणं अणुक्कोसगो पदेसबंधो सादियाइचउविगप्पो भवति । कहं ? भन्नइ-एएसिं छण्हं कम्माणं उक्कोसगो पदेसबंधो मोहणिज्जस्स बंधे वोच्छिन्ने

---

(१३३) मिच्छत्तदलिय' मित्यादि । इह भावनाष्टविधबन्धादौ 'आउयभागो थोवो' इत्यादि क्रमेण मूलप्रकृतीनां प्रदेशविभागेऽपि उत्तरप्रकृत्यपेक्षया यथास्वं पुनः प्रतिविभागः प्रवर्तते । तत्रापि केवलज्ञानावरणादीनां सर्वघातिप्रकृतीनां ज्ञानदर्शनावरणमोहनीयकर्मसु योग्यमनन्ततमं ।दलिकभागमपनीय शेषस्य देशघातिप्रकृतिसंख्यापेक्षया विभागः प्रवर्तते, तद्यथा-ज्ञानावरणे मतिश्रुतावधिमनः-पर्यायाऽवरणापेक्षया चतुर्धा । दर्शनावरणे चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणवशात् त्रिधा । मोहनीये च कषाय-नोकषाययोर्विभागभावाद् द्विधा । तत्रापि कषायभागलब्धं संज्वलनानामेव भावाच्चतुर्धा । नोकषायलब्धं च पञ्चधा । वेदत्रयेऽन्यतरवेदस्य [हास्यरत्यरतिशोकलक्षणयोर्युगलयोरन्यतरयुगलस्य भयकुत्सयोश्च पञ्चानामेव युगपद्बन्धात् । सर्वघातिलब्धं च ज्ञानावरणकर्मणि एकस्यैव केवलज्ञानावरणस्य भागभावादेकधा । दर्शनावरणे निद्रापञ्चकस्य केवलदर्शनावरणस्य च विभागात् षोढा । मोहनीये च दर्शन-चारित्रमोहनीयतया विभागाद् द्विधा । तत्र दर्शनमोहलब्धं मिथ्यात्वस्यैव भवति । चारित्र मोहप्राप्तं च द्वादशधा, द्वादशानामादिकषायाणां सर्वघातित्वात् । शेषकर्मसु च यावत्यो युगपद्बध्यन्ते प्रकृतयस्तावन्तो दलिकविभागाः । उक्तं च—

जं सव्वघाइपत्तं, सगकम्मपएसणंतिमो भागो ।
आवरणाण चउद्धा, तिहा य अह पंचहा विग्घे ॥१॥
मोहे दुहा चउद्धाय, पंचहा वा वि [व]ज्जमाणीणं ।
वेयणियाउयगोएसु बज्जमाणीज भागो सिं ॥२॥ [कर्मप्र० सं० बं० क० २५-२६]
पिंडपगईसु वज्झंतिगाणं············। ति

पिण्डप्रकृतयो नामप्रकृतयः । इत्यभिप्रायादुक्तं 'मिच्छत्तदलिय'मित्यादि ।

(१३४) 'छण्हं पि अणुक्कोसो पएसबंधे चउव्विहो बंधो' य एव चूर्णौ वेदनीयस्यापि सूक्ष्मसंपरायगुणस्थाने उत्कृष्टयोगिनः प्रदेशबन्ध उत्कृष्टः प्रतिपाद्यते । स कषायवद्बन्धृबन्धापेक्षयेति । अन्यथोपशान्तमोहवीतरागादयस्त्रय एव उत्कृष्टयोगिनो वेद्योत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः; यतः सकलमपि कर्मदलिकमेवां केवलवेद्यकर्मतयैव परिणमतीति प्राग्गुणस्थानकाऽपेक्षया एषामेतस्य प्रदेशबन्धः सद्भूयगुण इति । यदुक्तम्—

सुहुमसंपराइगस्स उवसामगस्स खवगस्स वा उक्कोसे जोगे वट्टमाणस्स उक्कोसो लब्भति एक्कं वा दो वा समया। हेट्ठिलोवि उक्कोसो जोगो लब्भति, तहिं आउगस्स मोहणिज्जस्स य भागो लब्भति त्ति तहिं उक्कोसो पदेशबंधो ण भवइ। एत्थ दोण्हं विभागा एतेसु छसुवि पविट्ठत्ति काउं उक्कोसो लब्भति, स सादिओ अधुवो य। बंधवोच्छेदं करेत्तु पुणो बंधंतस्स अणुक्कस्स सादिओ, अहवा सुहुमरागस्स आदीए उक्कोसो लद्धो, तओ उक्कोसो फिट्टे अणुक्कोसं बंधंतस्स अणुक्कोसस्स सादिओ, तं ठाणमपत्तपुव्वस्स अणादिओ धुवाऽधुवो पूर्ववत्। 'सेसतिगे दुविगप्पो' त्ति उक्कोसजहन्नाजहन्नेसु सादिओ अधुवो य, कहं? उक्कोसे कारणं भणितं। एतेसिं छण्हं जहन्नको पदेसबंधो सुहुमणिगोयस्स अपज्जत्तगस्स सव्वमंदवीरियलद्धिस्स पढमसमए वट्टमाणस्स सत्तविहबंधकस्स लब्भइ एकसमयं; ततो बितियसमयादिसु अजहन्नस्स सादिओ बन्धो, पुणो परिब्भमिय संखेज्जेण वा असंखेज्जेण वा कालेण सुहुमणिगोदअपज्जत्तगअप्पलद्धिपढमसमयभावं पत्तस्स जहन्नो, एवं जहन्नाजहन्नेसु जोगेसु संसारत्था जीवा परिभमंति त्ति काउं सव्वत्थ सादिओ अधुवो य। 'मोहाउ य सव्वहिं चेव' त्ति मोहाउगाणं उक्कोसाणुक्कोसजहन्नाजहन्नो पएसबंधो साइओ अधुवो य। कहं? आउयस्स अधुवबंधित्तादेव सिद्धं, मोहणिज्जस्स सत्तविहबंधगस्स [1]उक्कोसजोगिस्स उक्कोसो पएसबंधो लब्भइ, सो य सम्मदिट्ठिमिच्छदिट्ठीणं सामन्नो, तम्हा मिच्छदिट्ठिस्स लब्भइ त्ति काउं मिच्छदिट्ठि उक्कोसाणुक्कोसेसु परियत्तणं करेइ त्ति दोसुवि साईओ अधुवो य। जहन्ना-

अप्पं बायर मउयं, बहुं च ल(लु)क्खं च सुक्किलं चेव।
मंदं महव्वयं पि य, सायव्वहियं ज तं कम्मं ॥१॥
[ ]

अस्य व्याख्या-तत्केवलयोगप्रत्ययोपात्तं कर्म सद्वेद्यं। किं विशिष्टमित्याह-'अल्पं' स्तोकं कषायाभावेन तत्प्रत्ययस्थित्यनुभागापोढतया अल्पस्थित्यनुभागत्वात्। तथाहि-तत्कर्मप्रथमसमये बद्धं द्वितीयसमये वेदितं तृतीयसमये निर्जीर्यत इति। अनुभागस्तु सर्वजघन्याऽनुभागस्थानकस्य सर्वजघन्यस्पर्धकादप्यनन्तगुणहीनरसमिति। बादरं स्थूलं, तथाविधसूक्ष्मपरिणामविरहात्। मृदु कर्कशादिस्पर्शाऽभावेन। बहु च कषायवज्जीवैकसमयप्रबद्धप्रदेशापेक्षया सङ्ख्येयगुणप्रदेशत्वात्। रूक्षं चिरकालावस्थानानुगतत्वात्। 'च'शब्दात् सुगन्धि सुच्छायं च। शुक्लं उत्कटशेषवर्णचतुष्टयाभावेन कुमुदोदरगौरं। चशब्दः समुच्चये, एवशब्दोऽवधारणे, स च सर्वत्र सम्बन्धनीयः। ततोऽल्पमेव बादरमेवेत्येवं सर्वत्र विपक्षक्षेपो द्रष्टव्यः। मंद्रं मधुरं शर्कराद्यतिशायिरसत्वात्। महाव्ययं बन्धतृतीयसमये सर्वनिर्जरणाच्छेषकर्मणां गुणश्रेणिनिर्जरणाऽविनाभावित्वात्। वा अपि चेति समुच्चये। सदेव सातं, शुभप्रकृतिवेद्यं। व्यथनं व्यथितं पीडेत्यर्थः, न विद्यते व्यथितं यत्र तदव्यथितं। सातं च तदव्यथितंच साताऽव्यथितं। एतद्धि देवमानुषसुखेभ्यो बहुतरसुखोत्पादक बुभुक्षातृषादिव्यथाप्रकर्षप्रमाथि चेति भावः। इति गाथार्थः।

1 'उक्कोसजोगिस्स' इति मु. प्रतौ नास्ति।

जहन्नभावणा सुहुमनिगोयजीवे, जहा नाणावरणस्स तहा भाणियव्वं, तम्हा मोहणिज्जस्स मूलपगती पडुच्च चत्तारिवि सादिय अधुवा य ॥९०॥

इदाणिं उत्तरपगतीणं भन्नइ—

तीसण्हमणुक्कोसो उत्तरपयडीसु चउविहो बंधो ।
सेसतिगे दुविगप्पो सेसासु य चउविगप्पो वि ॥ ९१ ॥

व्याख्या–'**तीसण्हमणुक्कोसो उत्तरपगतीसु चोव्विहो बंधो**' त्ति पंचणाणावरणाणि, थीणतिगवज्जाणि छ दंसणावरणाणि, अणंताणुबंधिवज्जा बारस कसाया, भयदुगुंछा पंचअंतरायइगमिति एतासिं तीसाए कम्मपगतीणं अणुक्कोसो पदेशबंधो सादिआइचउविगप्पो भवति । कहं ? भन्नइ-पंचण्हं णाणावरणाणं सुहुमसंपराइगस्स छव्विहं बंधगस्स पुव्ववत् भावना, मोहाउगभागोवि लब्भइ त्ति । चउण्हं दंसणावरणाणंपि एमेव मोहाउगभागा लब्भंति, सजातियभागलंभो य । णिद्दादुगस्स सत्तविहबंधगस्स उक्कोसजोगिस्स सम्मद्दिट्ठिस्स थीणगिद्धितिगभागो लब्भति त्ति असंजतादि अपुव्वकरणं तेसु उक्कोसो लब्भति, एक्कं वा दो वा समया, सो य सादिओ अधुवो य । उक्कोसाओ परिवडंतस्स बंधवोच्छेदाओ वा अणुक्कोसस्स सादिओ, सम्मत्तभावे उक्कोसजोगं अपत्तपुव्वस्स अणादियो, ध्रुवाऽध्रुवौ पुर्ववत् , अप्पच्चक्खाणावरणस्स असंजयसम्मद्दिट्ठिस्स उक्कोसजोगिस्स उक्कोसो भवति, मिच्छत्तअणंताणुबंधीणं भागो लब्भइ एक्कं वा दो वा समया । ततो परिवडंतस्स अबंधातो वा अणुक्कोसस्स सादिओ, असंजयसम्मद्दिट्ठिभावे उक्कोसजोगं अपत्तपुव्वस्स अणादियो ध्रुवाऽध्रुवौ पूर्ववत् । पच्चक्खाणावरणस्स संजतासंजतो उक्कोसजोगी उक्कोसं करेइ त्ति, मिच्छत्त-अणंताणुबंधिअप्पच्चक्खाणावरणाणंपि भागो लब्भति त्ति एक्कं वा दो वा समया, सेसं जहा अप्पच्चक्खाणावरणस्स तहा भाणियव्वं । भयदुगुंच्छाणं संमदिट्ठिस्स उक्कोसजोगिस्स असंयतादि जाव अपुव्वकरणो त्ति एतेसु उक्कोसो लब्भइ, एक्कं वा दो वा समया, । कहं ? भन्नइ–मिच्छत्तभागो लब्भति त्ति । सेसभावणा जहा निद्दापयलाणं तहा भाणियव्वा । कोहसंजलणाए अणियट्टिस्स चउव्विह-बंधगस्स उक्कोसजोगिस्स उक्कोसो लब्भति, एक्कं वा दो वा समया । कहं ? भन्नइ–णोकसाय-भागो लब्भति त्ति काउं, उक्कोसाओ परिवडंतस्स बंधवोच्छेदाओ वा सादिओ, तं ठाणमपत्तपुव्वस्स अणादिओ, ध्रुवाऽध्रुवौ पुर्ववत् । माणसंजलणाए तस्सेव तिविहं बंधगस्स कोहसंजलणाए भागो लब्भति त्ति । शेषप्रपञ्चः पुर्ववत् । मायाए दुविहबंधकस्स माणभागो लब्भति त्ति शेषं पुर्ववत् । लोभसंजलणाए तस्सेव एगविहबंधगस्स उक्कस्स जोगिस्स उक्कोसो भवति, सव्वमोहभागो तस्स त्ति । शेषं पुर्ववत् । पंचण्हमंतराइगाणं सुहुमसंपराइगस्स छव्विहबंधगस्स उक्कोसजोगे वट्टमाणस्स उक्कोसो लब्भइ । कहं ? मोहाउग भागो लब्भइ त्ति। शेषं पुर्ववत् । '**सेसतिगे दुविगप्पो**' त्ति उक्कोसजहन्नाजहन्नेसु सादिओ अधुवो य । कहं ? उक्कोसे कारणं पुव्वुत्तं, जहन्नाजहन्नेसु जहा

मूलपगतीणं तहा भणियव्वं । 'सेसासु य चउविगप्पो वि' त्ति थीणगिद्धितिगमिच्छत्तणंताणुबंधिणामधुवबंधीणं परियत्तमाणीणं च सव्वासिं उक्कोसोऽणुक्कोसो जहन्नोऽजहन्नो य सादिओ अधुवो य । कहं ? भन्नइ–परियत्तमाणीणं अध्रुवबन्धित्वादेव सिद्धं, थीणगिद्धितिगमिच्छत्तणंताणुबंधीणं उक्कोसो सत्तविहबंधकस्स मिच्छदिट्ठिस्स लब्भइ, एक्कं वा दो वा समया, सम्मदिट्ठिस्स एतेसिं बंध एव णत्थि, तओ परिवडंतस्स अणुक्कोसस्स सादिओ, तओ पुणो उक्कोसजोगं पत्तस्स उक्कोसो, एवं उक्कोसाणुक्कोसेसु परिभमंति त्ति दोसुवि सादिओ अधुवो य । णामधुवाणं णवण्हवि मिच्छदिट्ठी, सत्तविहबंधको उक्कोसजोगी णामस्स तेवीसबंधको उक्कोसं बंधति, एक्कं वा दो वा समया, सेसनामाण भागो तहिं लब्भति त्ति, सम्मदिट्ठिम्मि एतेसिं उक्कोसो ण लब्भइ, तम्हा मिच्छदिट्ठी, उक्कोसाणुक्कोसेसु परिब्भमइ त्ति, दोसुवि सादिओ अधुवो य । एतेसिं धुवबंधीणं अधुवबंधीणं वा सुहुमणिगोदाऽपज्जत्तकस्स अप्पविरियलद्धिजुत्तस्स पढमसमए वट्टमाणस्स सव्वजहन्नो पदेसबंधो, तओ जहन्नाजहन्नेसु परिवत्तइ त्ति दोसुवि सादिओ अधुवो य ॥ ९१ ॥

एवं सादियाऽणादियपरूवणा भणिया, इदाणिं सामित्तं मूलुत्तरपगतीणं भन्नइ–

आउक्कस्स पएसस्स पंच मोहस्स सत्त ठाणाणि ।
सेसाणि तणुकसाओ बंधइ उक्कोसगे जोगे ॥ ९२ ॥

व्याख्या–'आउक्कस्स पएसस्स पंच' त्ति मिच्छदिट्ठि अमंजतादि जाव अप्पमत्तसंजओ एतेसु पंचसुवि आउगस्स उक्कोसो पदेसबंधो लब्भइ । कहं ? सव्वत्थ उक्कोसो जोगो लब्भइ त्ति काउं ।

अन्ने पढंति 'आउक्कोसस्स पदेसस्स छ' त्ति सासणोवि उक्कोसं बंधति त्ति । तं ण, जेण अणंताणुबंधीणं मिच्छदिट्ठिम्मि उक्कोसो पदेसबंधो दिट्ठो त्ति जइ सासणेवि अणंताणुबंधीणं उक्कोसो पदेसबंधो होज्ज, तो अणंताणुबंधीणं अणुक्कोसो सादियादिचउव्विहो बंधो लभेज्ज, मिच्छत्तभागो लब्भइ त्ति । अन्नं च 'सेसपएसुक्कडं मिच्छो' त्ति उवरिं भणिहिति तेण सासणस्स उक्कोसो जोगो न लब्भति त्ति । तेण पंच जणा उक्कोसं करेंति । 'मोहस्स सत्तठाणाणि' त्ति सासणसम्मामिच्छदिट्ठिवज्जा मोहणिज्जबंधगा सत्तविहबंधकाले [1]सव्वेवि उक्कोसपदेसबंधं बंधंति । कहं ? भन्नइ, सव्वेसुवि उक्कोसो जोगो लब्भति त्ति ।

अन्ने पढंति 'मोहस्स णव उ ठाणाणि' त्ति सासणसम्मामिच्छेहिं सह । तं ण संभवति । कहं ? सासणस्स कारणं पुव्वुत्तं, सम्मामिच्छदिट्ठिम्मि जइ उक्कोसो लभेज्ज तो 'अजईबितियकसाए' त्ति उवरिं भणिहिति तं ण भणेज्जा, असंजयसम्मदिट्ठिसम्मामिच्छदिट्ठीणं जोगं मोत्तूणं अन्नो अप्पतरादिविसेसो मूलुत्तरपगतिबंधे भेदो णत्थि त्ति तेण सत्त मोहणिज्जस्स उक्कोस-

1 सव्वेसि' इति जे. ।

पदेसबंधं बंधंति । सासणसम्मामिच्छेसु उक्कोसो जोगो ण लब्भति त्ति तेण ते ण गहिया । 'सेसाणि तणुकसाओ बंधइ उक्कोसगे जोगे' त्ति सेसाणि मोहाउवज्जाणि 'तणुकसाओ' सुहुमसरागो उक्कोसजोगे वट्टमाणो उक्कोसं बंधति; कहं ? मोहाउगाणं भागो लब्भति त्ति काउं; उक्कोसजोगाऽभावे तस्सवि उक्कोसो ण लब्भइ त्ति ॥ ९२ ॥

इदाणिं जहन्नगसामित्तं भन्नइ—

सुहुमनिगोयाऽपज्जत्तगस्स पढमे जहन्नगे जोगे ।
सत्तण्हं तु जहन्नं आउगबंधेवि आउस्स ॥ ९३ ॥

व्याख्या-'**सुहुमणिगोयाऽपज्जत्तगस्स पढमे जहन्नगे जोगे । सत्तण्हं तु जहन्न**' त्ति सुहुमस्स णिगोदस्स अणंतकाइगस्स अपज्जत्तकस्स लद्धीए अप्पलद्धिस्स वीरियं पडुच्च पढमसमए वट्टमाणस्स आउगवज्जाणं सत्तण्हं कम्माणं जहन्नको पदेसबंधो भवति, एक्कं समयं । कहं ? अप्पज्जत्तका सव्वेवि असंखेज्जगुणेणं जोगेणं समए समए वड्ढन्ति त्ति बितियसमयाइसु जहन्नगो पदेसबंधो न लब्भइ सव्वजहन्नजोगी पढमसमए लब्भति त्ति काउं । '**आयुगबंधेवि आउस्स**' त्ति सो चेव सत्तण्हं जहन्नकसामी अप्पणो आउतिभागपढमसमए वट्टमाणो आउगस्स पदेसबंधं जहन्नगं करेइ, एक्कं समयं । कहं ? बीयसमए असंखेज्जगुणेणं जोगेण वड्ढति त्ति ण लब्भति त्ति ॥ ९३ ॥

मूलपगईणं सामित्तं भणियं, इयाणिं उत्तरपगतीणं सामित्तं भन्नइ, तत्थ पुव्वमुक्कोसं भन्नति-

सत्तर सुहुमसरागो पंचगमनियट्टि सम्मगो नवगं ।
अजई बितियकसाए देसजई तइयए जयइ ॥ ९४ ॥

व्याख्या-'**सत्तर सुहुमसरागो**' त्ति पंच णाणावरणाणं चत्तारि दंसणावरणाणं सातावेदणीयं जसकित्तिउच्चागोयं पंचण्हमंतरायिगाणं एतेसिं सत्तरसण्हं कम्माणं सुहुमरागो उक्कोसे जोगे वट्टमाणो उक्कोसं बंधति । कहं ? भन्नइ-सव्वेसिं मोहाउगभागा लब्भंति, त्ति । चउण्हं दंसणावरणीयाणं जसकित्तीए य सजातिभागलंभो अत्थि त्ति हेट्ठओ उक्कोसं ण लब्भति, तदभावात् । '**पंचगमणियट्टि**' त्ति पुरिसवेदस्स चउण्हं संजलणाणं अणियट्टि उक्कोसजोगे वट्टमाणो उक्कोसं पदेसबंधं बंधति । कहं ? भन्नइ-अणियट्टि पंचविहबंधको पुरिसवेदस्स उक्कोसं करेइ, हासरतिभयदुगुंछाणं भागो लब्भइ त्ति काउं । कोहसंजलणाए चउव्विहबंधको उक्कोसजोगी उक्कोसं करेइ, पुरिसवेयस्स भागो लब्भइ त्ति काउं । माणस्स तिविहबंधको उक्कोसं बंधइ, कोहभागो लब्भइ त्ति । मायाए दुविहबंधको उक्कोसजोगी उक्कोसं करेइ, माणभागो लब्भइ त्ति । लोहसंजलणाए एगविहबंधको उक्कोसं करेइ, सव्व मोहभागो तस्सेति । '**सम्मगो णवगं**' ति णिद्दादुग-

छणोकसायतित्थकरणामाणं जो सम्मद्दिट्ठी उक्कोसजोगी सो उक्कोसं पदेसं बंधति। कहं? भण्णइ-णिद्दादुगस्स असंजतप्पभिति जाव अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जइमो भागो त्ति ताव एतेसु सव्वेसुवि उक्कोसो पदेसो लब्भति, थीणगिद्धितिगभागो लब्भति त्ति काउं, सम्मामिच्छस्स उक्कस्सजोगाभावे तंमि ण लब्भति त्ति। हासरतिअरतिसोकभयदुगुंछाणं जे जे तब्बंधका सम्मद्दिट्ठिणो ते ते उक्कोसजोगे वट्टमाणा उक्कोसं पदेसबंधं करेंति मिच्छत्तभागो लब्भति त्ति काउं सव्वेसिं सामन्नं, विसेसाभावा। तित्थगरणामस्स देवगतिपाओग्गं तित्थगरसहितं एगूणतीसं बंधमाणाणं उक्कोसजोगीणं असंजतादि-अपुव्वंताणं उक्कोसो पदेसबंधो भवति, सव्वेसिं तप्पाओग्गं ति काउं, तीसएक्कतीसबंधेसु उक्कोसो पदेसबंधो ण लब्भति, बहुगा भागा भवंति त्ति काउं। 'अजई बितियकसाय' त्ति असंजय-सम्मद्दिट्ठी उक्कस्सजोगी अपच्चक्खाणावरणीयाणं उक्कोसं पदेसं बंधति त्ति। कहं? मिच्छत्तअणंताणुबंधीणं भागो लब्भति त्ति, सम्मामिच्छे योगाऽल्पत्वादेव ण लब्भति। 'देसजई तइयए कसाए' त्ति संजतासंजओ पच्चक्खाणावरणाणं उक्कोसजोगी उक्कोसं पदेसं बंधति त्ति, कहं? मिच्छत्ताऽणंताणुबंधिअपच्चक्खाणावरणाणं भागो लब्भति सेसेसु तदभावा ण लब्भति ॥ ९४ ॥

तेरस बहुप्पएसं सम्मो मिच्छो व कुणइ पयडीओ।
आहारमप्पमत्तो सेसपएसुक्कड मिच्छो ॥ ९५ ॥

व्याख्या—'तेरस बहुप्पएसं सम्मो मिच्छो व कुणइ पगतीओ' त्ति असातावेदणीय-मणुयदेवाउगदेवदुगवेउव्वियदुगसमचउरंसवज्जरिसभणारायपसत्थविहायगतिसुभगसुस्सरादेज्जणामाणं एतेसिं तेरसण्हं पगतीणं सम्मद्दिट्ठिस्स वा मिच्छद्दिट्ठिस्स वा (१३५)सत्तविहबंधकस्स उक्कस्सजोगिस्स उक्कोसो पदेसबंधो भवति। कहं? भण्णइ-जो असातं बंधति सो सम्मद्दिट्ठी मिच्छद्दिट्ठी वा सत्तविहबंधको, तेसिं दोण्हवि अविसिट्ठो उक्कोसो जोगो, तेण दोसुवि उक्कोसपदेसबंधो अविरुद्धो। एवं मणुस्सदेवाउगाणि दोण्हवि अविरुद्धाणि। देवदुगवेउव्वियदुगसमचउरंसपसत्थविहायगतिसुभग-सुस्सरादेज्जणामाणि देवगतिपाओग्गं अट्ठावीसं बंधमाणस्स बंधं एंति, हिट्ठिल्लेसु ण एंति, तेण सम्म-द्दिट्ठिमिच्छद्दिट्ठीणं उक्कोसजोगाणं उक्कोसो पदेसबंधो अविरुद्धो, एगूणतीसादिसु एतेसिं उक्कोसो ण लब्भति, बहुगा भाग त्ति काउं। वज्जरिसभणारायसंघयणं मणुयगतिपाओग्गं वज्जरिसभणाराय-सहियं[1] एगूणतीसं बंधमाणस्स बंधं एति, हेट्ठिल्लेसु ण एंति तेण दोण्हवि उक्कोसजोगीणं उक्कोसो पदेसबंधो ण विरुद्धो, मिच्छादिट्ठिस्स तिरियगतिएवि सम्मं लब्भति, उज्जोवतित्थगरसहिए य तीसइ बंधे वज्जरिसहस्स उक्कोसो पदेसबंधो ण लब्भति बहुगा भाग त्ति काउं। 'आहारमप्पमत्तो' त्ति

(१३५) सत्तविहे' इत्यादि। अयोदशसु प्रकृतिस्वेकावशापेक्षयैव समविषबन्धकत्वमभिहितं। द्वयोः पुनर्नरामरायुषोरष्टविधबन्धकायेति द्रष्टव्यम्। तच्च सुगमत्वाच्चूर्णिकृता न विवक्षितम्।

1 'वज्जरिसभसंघयणसहिय' इति जे.।

आहारकदुगस्स अप्पमत्तो त्ति अप्पमत्ताऽपुव्वकरणा य दोवि गहिता, तेसिं उक्कोसजोगीणं देवगतिपाओग्गं आहारकदुगसहितं तीसं बंधमाणाणं उक्कोसो पदेसबंधो भवति, एक्कतीसे उक्कोसो ण लब्भति, बहुगा भागा भवंति त्ति काउं । 'सेसपदेसुक्कडं मिच्छो' त्ति भणियसेसाण कम्माणं उक्कोसपदेसबंधं मिच्छद्दिट्ठी बंधइ । कहं ? थीणतिगमिच्छत्ताणंताणुबंधीणपुंसगित्थिवेद-निरयदुगतिरियदुगणिरयतिरियाउगणीयागोत्ताणं समद्दिट्ठिस्स बंधो णत्थि. मिच्छद्दिट्ठी सत्तविह-बंधको उक्कोसं बंधति, आउगभागो लब्भति त्ति काउं । अन्नेसिंपि सम्मद्दिट्ठिअयोग्गाणं योग्गाणं च पगतीणं सो चेव । णामस्स जाओ तेवीसबंधे बधं एंति तासिं तहिं चेव उक्कोसो, पगतीओ सव्वथो-वाओ त्ति आउगबंधकालं मोत्तूण उक्कोसजोगिस्स । जासिं तेवीसे बंधो णत्थि मणुयदुगविगलिंदिय-पंचिंदियजातिओरालियंगोवंगसेवट्टपराघायउस्सासतसपज्जत्तकथिरसुभ[1]णामाणं एतासिं उक्कोसो पदेसबंधो पणुवीसबंधगस्स भवति, हेट्ठओ ण लब्भति उवरिंपि बहुकाओ पगतीओ त्ति उक्कोसो ण लब्भति । आयावुज्जोवाणंछव्वीस बंधकेसु, णिरयदुगअप्पसत्थविहायगइदुस्सरणामाणं अट्ठावीस-बंधगस्स उक्कोसो पदेसबंधो, उवरिं बहुकाओ त्ति ण लब्भति, मज्झिल्लसंघयणसंठाणाणं एगूण-तीसबंधगस्स उक्कोसो पदेसबंधो, उवरिं ण लब्भति ॥ ९५ ॥

इयाणिं उक्कोसजहन्नपदेसबंधसामीणं सरूवणिद्धारणत्थं भन्नइ—

सन्नी उक्कडजोगी पज्जत्तो पयडिबंधमप्पयरो ।
कुणइ पएसुक्कोसं जहन्नगं जाण विवरीए ॥ ९६ ॥

व्याख्या—'**सन्नी उक्कडजोगी पज्जत्तो पयडिबंधमप्पयरो । कुणइ पदेसुक्कोसं**' ति जो मणोपुव्वं किरियं करेइ तस्स सव्वजीवेहिंतो तिव्वा चेट्ठा भवति त्ति सन्निग्गहणं । सन्नीसुवि जहन्नुक्कोसजोगिणो अत्थि त्ति तेण जहन्नजोगिवुदासत्थं उक्कोसजोगिग्गहणं । सन्नि अप्पज्जत्तगस्सवि तप्पाओग्गो उक्कोसो जोगो अत्थि त्ति तव्वुदासत्थं पज्जत्तगग्गहणं । सोवि सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तगस्स सव्वुक्कोसो जोगो लब्भइ त्ति सव्वुक्कोसजोगीसुवि जो पगतिओ बहुकाओ बंधइ तस्स भागा बहुगा हुंति त्ति थोकं दलियं लब्भइ, जहा दस कुंभा पंचण्हं दिन्ना ते चेव दिन्ना दसण्हं अद्धं लब्भति तेण पगतिअप्पतरबंधगग्गहणं '**कुणइ पएसुक्कोसं**' ति सो तारिसो तब्बंधकेसु उक्कोसं पदेसबंधं बंधति, जहासंभवं एतेण बीजेण जहिं जहिं जस्स जस्स कम्मस्स उक्कोसो लब्भति तस्स तस्स तहिं तहिं चिंतेतु भाणियव्वं । '**जहन्नगं जाण विवरीए**' त्ति असन्नीएसुवि जहन्नजोगी, तेसुवि सव्वाऽपज्जत्तको लद्धीए, तेसुवि बहुकाओ पगतीओ बंध-माणो सव्वपगतीणं तब्बंधकेसु जो एरिसो सो सव्वजहन्नं पदेसबंधं करेति । एतेण बीजेण वक्ष्यमाणं जहन्नगं नेतव्वं जहासंभवं ॥ ९६ ॥

---

1 '[जसकित्ति]' इति पाठो मु० प्रतौ कोष्ठके वर्तते तथापि जे प्रतौ तस्याभावादनाघटमानत्वाच्च न लिखितः ।
2 'पज्जत्तयरो तस्स' इति मु. ।

घोलणजोगि असन्नी बंधइ चउ दोन्नि अप्पमत्तो उ ।
पंचासंजयसम्मो भवाइ सुहुमो भवे सेसा ॥ ९७ ॥

व्याख्या—'**घोलणजोगि असन्नी बंधइ चउ**' त्ति णिरयदेवाउगं णिरयदुगं एतेसिं चउण्हं कम्माणं असन्निपंचिंदिओ सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तको अपज्जत्तगस्स बंधो णत्थि त्ति, '**घोलणजोगि**' त्ति परिवत्तमाणजोगी, वाक्कायचेट्ठा तस्स अच्चंतमप्पा भवति त्ति, अपरिवत्तमाणजोगिस्स तिव्वा चेट्ठा भवति, तत्थवि असन्नी पज्जत्तकपाओग्गे सव्वजहन्ने जोगे वट्टमाणो मूलपगतीणं अट्ठविहं बंधमाणो जहन्नं पदेसबंधं बंधति, हेट्ठिल्ला ण बंधति भवपच्चयाओ । सन्नीसु किं न भवति इति चेत् ? भन्नइ,असन्निपज्जत्तकउक्कोसजोगाओ सन्निपज्जत्तगजहन्नगत्तजोगो असंखेज्जगुणो त्ति तेण ण भवति, '**दोन्नि अप्पमत्तो उ**' त्ति घोलणजोगी अप्पमत्तसंजओ अट्ठविहबंधको णामपगतीणं एक्कतीसं बंधमाणो आहारकदुगस्स जहन्नगं पदेसबंधं बंधति । '**पंचासंजयसम्मो भवाइ**' त्ति देवदुगं वेउव्वियदुगं तित्थकरणामाणं एएसिं पंचण्हं असंजयसंमद्दिट्ठी भवादिसमए वट्टमाणो जहन्नगं पएसबंधं बंधति, कहं ? भन्नइ, देवणेरइयाणं तित्थकरणामबंधकाणं तओ चुताणं मणुएसु उववज्जंताणं उप्पत्तिपढमसमए चेव देवगतिपाओग्गं तित्थकरणामसहितं एगूणतीसं बद्धमाणाणं सव्वजहन्नजोगीणं देवदुगवेउव्वियदुगाणं सव्वजहन्नो पदेसबंधो । असन्निसु किं न भवति ? इति चेत् , भन्नइ—असन्नि अपज्जत्तकद्धाए वट्टमाणो देवगतिणेरइयगइपाओग्गे ण बंधइ, सन्निअपज्जत्तगजोगाओ असन्निपज्जत्तगजोगो असंखेज्जगुणो त्ति काउं जहन्नगो पदेसबंधो ण भवति । तित्थकरणामस्स मणुओ तित्थकरणामबंधको कालं काउं देवेसु उववन्नो तस्स पढमसमए मणुयगतिपाओग्गं तित्थकरणामसहितं तीसं बंद्धमाणस्स सव्वजहन्नजोगिस्स सव्वजहन्नो पदेसबंधो, अन्नत्थ ण लब्भति । '**भवाइ सुहुमो भवे सेस**'त्ति भवाइ त्ति दोण्हवि सामन्नं, णिरयदेवाउगं देवदुगं निरयदुगं वेउव्वियदुगं आहारदुगं तित्थगरणामं च मोत्तूण सेसाणं सव्वपगतीणं सुहुमो अपज्जत्तगो भवादिसमए वट्टमाणो हीणवीरिओ अप्पप्पणो ठाणे सव्वबहुकाओ पगतीओ बंधमाणो सव्वजहन्नजोगी सव्वेसिं जहन्नं पदेसबंधं करेइ । णामे अपज्जत्तकसुहुमसाधारणाणं पणुवीसबंधगो, एगिंदियआयवथावराणं छव्वीसबंधको, मणुयदुगस्स एगूणतीसबंधको, सेसाणं णामपगतीणं तीसबंधको जहन्नं पदेसबंधं करेति, सो चेव आउगाणं दोण्हं आउगतिभागादिसमए वट्टमाणो सव्वजहन्नं करेइ । कारणं पुव्वुत्तं । आदिशब्दात् गहितं सामित्तं भणितं ॥ ९७ ॥

इदाणिं पगतिठितिअणुभागपदेसाणं बंधकारणणिरूवणत्थं भन्नइ—

जोगा पयडिपएसं ठिइअणुभागं कसायओ कुणइ ।
कालभवखित्तपेक्खो उदओ सविवागअविवागो ॥ ९८ ॥

व्याख्या--'जोगा पयडिपएसं ठिइअणुभागं कसायओ कुणइ' त्ति जोगाओ पगतिबंधो पदेसबंधो य भवति, कहं ? भण्णइ, जोगाओ पएसगहणं पदेसविरहिओ पगतीणं बंधो णत्थि, तेण जोगा पगतिपदेसबंधो। ठितिबंधं अणुभागबंधं च कसायतो करेइ। कहं ? भण्णइ, कम्मस्स [1]ठिइ णिद्धता रसभावो य कसायतो भवति, ते चेव ठितिअणुभागा। एत्थ अद्दहण-तंदुलदिट्ठंतो, अद्दहणतुल्लो अणुभागो, तंदुलत्थाणीया पदेसा, जो रद्धो सो चिरकालठाति, इतरो वा पगतीबलातिकरणं। एवं बद्धस्स कम्मस्स विपाकणिरूवणत्थं भण्णइ 'कालभवखेत्तपेक्खो उदओ सविवागअविवागो' त्ति पंच णाणावरणा, उवरिल्ला चत्तारि दंसणावरणा, मिच्छत्तं तेजइककम्मइगसरीरं वण्णगंधरसफासा अगुरुलहुगथिराथिरसुभासुभणिम्मेणं पंच अंतराइगमिति एताओ सत्तावीसं पगतीओ धुवोदयाओ सव्वकालं भव्वजीवाणं अत्थि। एआओ मोत्तूण सेसाओ कालं भवं खेत्तं च पडुच्च उदयं देंति। णिद्दापणगकसायणोकसायादयो कालाइ पेक्खिणो। णेरइगतिरियमणुयदेवाणं जाणि एक्कंतप्पाओग्गाणि ताणि तं तं भवं पडुच्च उदयं देंति त्ति भवापेक्खाओ। आकासं खेत्तं तं पप्प आणुपुव्विमादीणं उदयो। संखेवेणं एत्तिओ उदयभावो विभागतो अणेगभेयभिन्नो। 'उदओ सविवाग अविपागो' त्ति, अप्पणो सभावेण उदेति जो सो सविपाको, जहा मणुयस्स मणुयगति अन्नपगतीभावेणं उदये न देति त्ति। अविपाकी जहा तस्सेव मणुयस्स सेसाओ तिन्नि गतीओ थिबुगसंकमेणं मणुस्सगतिउदयसमए मणुयगतिभावेण परिणता वेदिज्जंति त्ति। अविपाकिणो जत्तिया ते सव्वेवि अप्पप्पणो जातिए वेदिज्जमाणम्मि परिणता तब्भावेण वेदिज्जंति अणुदिन्नस्स खयो नत्थि त्ति ॥ ९९ ॥

इयाणिं जोगठितिबंधज्झवसाणठाणाणं अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणं च एतेसिं बंधकारणाणं कज्जाणं च पगतिठितिअणुभावपदेसाणं अप्पबहुगणिरूवणत्थ भन्नइ--

सेढिअसंखेज्जइमे जोगट्ठाणाणि होंति सव्वाणि।
तेसिमसंखिज्जगुणो पयडीणं संगहो सव्वो ॥ ॥९९॥
तासिमसंखिज्जगुणा ठिईविसेसा हवंति नायव्वा।
ठिइबंधज्झवसायाणिऽसंखगुणियाणि एत्तो उ ॥ १०० ॥
तेसिमसंखिज्जगुणा अणुभागे होंति बंधठाणाणि।
एत्तो अणंतगुणिया कम्मपएसा मुणेयव्वा ॥ १०१ ॥
अविभागपलिच्छेया अणंतगुणिया भवंति एत्तो उ।
सुयपवरदिट्ठिवाए विसिट्ठमतओ परिकहिंति ॥ १०२ ॥

---

1 'णिबद्धस्स ठिई रसभावो' इति मु.।

व्याख्या—'**सेढिअसंखेज्जइमे जोगट्ठाणाणि होंति सव्वाणि**' त्ति 'जोगो' त्ति जोगो वीरियं थामो उच्छाहो परक्कमो चेट्ठा सत्ती सामत्थमिति एगट्ठं, तेसिं ठाणाणि जोगट्ठाणाणि। सव्वजहन्नाओ जोगट्ठाणाओ आढवेत्तु अणंतराऽणंतरं विसेसाहियं जोगट्ठाणं एताए जोगवुड्ढीए ताव गंतव्वं जाव उक्कोसं जोगट्ठाणं ति। '**सेढिअसंखेज्जइमे**' त्ति ताणि सव्वाणि जोगट्ठाणाणि केत्तियाणि ? भन्नइ, लोकसेढिए असंखेज्जतिभागे जत्तिया आकासपदेसा तत्तियाणि जोगट्ठाणाणि सव्वाणिति। '**तेसिमसंखेज्जगुणो पगतीणं संगहो सव्वो**' त्ति तेहिं जोगट्ठाणेहिंतो असंखेज्जगुणो पगतीणं समुदयो। कहं ? भन्नइ, ओहिणाणओहिदंसणावरणाणं पगतीओ असंखेज्जलोकाकासपदेसमेत्ताओ, तेसिं खयोवसमभेदा वि तत्तिया चेव। चउण्हं-माणुपुव्विणामाणं असंखेज्जाओ पगतीओ, लोगस्स वि संखेज्जतिमे भागे जत्तिया आकासपदेसा तत्तियाओ। सेसा पसिद्धा। एते अहिकिच्च जोगट्ठाणेहिंतो असंखेज्जगुणाओ पगतीओ एक्केक्के जोगट्ठाणे वट्टमाणाणं एताओ सव्वाओ बंधंति त्ति। **तासिमसंखेज्जगुणा ठिइविसेसा हवंति नायव्व**' त्ति तासिं पगतीणं असंखेज्जगुणा ठितिविसेसा ठितिभेदा इत्यर्थः। कहं ? भन्नइ, एक्केक्काए पगतीए जहन्नकठितीओ आढवेत्तु ताव जाव उक्कोसठिती एतासिं मज्झे जत्तियाणि तरतमजोगेणं समयोत्तरवड्ढिताणि ठितिठाणाणि (ठिइविसेसाणि) ताणि पगतिसमूहेहिंतो असंखेज्जगुणाणि, एक्केक्कंमि असंखेज्जभेदा लब्भंति त्ति काउं। '**ठिइबन्धअज्झवसाणाणि असंखेज्जगुणाणि एत्तो उ**' त्ति ठिइविसेसेहिंतो ठिइबंधज्झवसाणाणि असंखेज्जगुणाणि। कहं! भन्नइ, ठितिं निवत्तेंति जाणि अज्झवसाणठाणाणि ताणि ठितिबंधज्झवसाणठाणाणि [136]

(१२६) 'ठितिबंधज्झवसाणे' त्यादि। स्थितिर्जीवप्रदेशाऽविभागेन कर्मणोऽवस्थानशक्तिस्तस्याबाधाविधानं स्थितिबन्धः। अध्यवसायः कषायोदयपरिणामः। स एव स्थानं, तिष्ठति जीवोऽस्मिन्निति कृत्वाऽध्यवसायस्थानं। स्थितिबन्धस्याध्यवसायस्थानं स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानं। एवमनुभागबन्धाध्यवसायस्थानमपि। परमनुभागो रसोऽनु पश्चात् बन्धस्य भज्यते सेव्यत इति कृत्वा। तत्रानेकैरपि स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानैरेकमेव स्थितिबन्धस्थानमुत्पद्यते। अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि तु स्वसंख्ययाऽनुभागस्थानानामुत्पादकानि। अनुभागस्थानं नाम एकसमयगृहीतस्य ज्ञानावरणादिकर्मप्रदेशप्रचयस्य रसः। उक्तं च—

"किं ठाणं णाम ? एगसमये जो दीसति कम्माणुभागो तं ठाणं णाम"

[ ]

स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानानामनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानां च कः प्रतिविशेषः ? इति चेत्, उच्यते—न कश्चिदैकान्तिक, तथा ह्येकैकस्य स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानस्याऽसंख्यलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदलक्षणानि सहकारिकारणानि सन्ति। ततः तदेकमपि द्रव्यतया एकमपि स्थितिबन्धविशेषं कुर्वाणं तत् तत् सहकारिकारणवशादाविर्भूततत्तच्छक्तिविशेषं तत्रैव स्थितौ तावतोऽनुभागबन्धः स्थानविशेषाणा (विशेषा) नुत्पादयतीति। न चैतदनुपपन्नं नाम, अनेक-

कसायोदयावि वुच्चंति, ताणि अंतोमुहुत्तमेत्तकालपरिमाणाणि ताइं च जहन्नके ठितिठाणे असंखेज्जलोकाकासपदेसमेत्ताणि जहन्नगाओ आढवेत्तु उवरिमाणि छट्ठाणवड्ढियाणि, तओ समउत्तराए ठितिए ठितिबंधज्झवसाणठाणाणि अन्नाणि, असंज्जलोगागासपदेसमेत्ताणि, तओ विसेसाहिकाणि, तओवि समउत्तराए ठितिए ठितिबंधज्झवसाणठाणाणि अपुव्वाणि असंखेज्जलोगागासपदेसमेत्ताणि तेहिंतो विसेसाहिकाणि एवं सेढीए नेयव्वं जाव उक्कोसिया ठिति त्ति । एक्केक्के ठितिठाणे असंखेज्जलोगागासपदेसमेत्ताणि ठितिबंधज्झवसाणठाणाणि लब्भंति त्ति ठिइविसेसेहिंतो ठितिअज्झवसाणठाणाणि असंखेज्जगुणाणि । '**तेसिमसंखेज्जगुणा अणुभागे होंति बंधठाणाणि**' त्ति तेसिं ठितिबंधज्झवसाणठाणाणं असंखेज्जगुणाणि अणुभागबंधज्झवसाणवठाणाणि । कहं ? भन्नइ, ठितिबंधज्झवसाणठाणाणि णाम कसायोदयपरिणामो गामणगरादिपरिणामवत् , तेसिं उच्चणीयमज्झिमकुडुंबविहवविसेसवत् तेषु ठितिबंधज्झवसाणेसु तिव्वमंदमज्झिमपरिणामाणि, अणुभागभेदभिन्नाणि जहन्नेणेक्कसमयपरिणामपरिमाणाणि, उक्कोसेणऽट्ठसमयपरिणामपरिमाणाणि, अणुभागबंधज्झवसाणठाणाणि असंखेज्जेगुणाणि वुच्चंति, ताणि असंखेज्जलोकाकासपदेसमेत्ताणि एक्केक्कंमि ठितिबंधज्झवसाणठाणे, तेण अणुभागबंधज्झवसाणठाणाणि असंखेज्जगुणाणि भवन्ति । '**एत्तो अणंतगुणिया कम्मपदेसा मुणेयव्वा**' त्ति '**एत्तो**' त्ति अणुभागबंधज्झवसाणठाणाहिंतो कम्मपोग्गला ते अणंतगुणा कहं ? भन्नइ, कम्मपोग्गलगहणसमए जो परिणामो सो अणुभागबंधज्झवसाणठाणपरिणामो वुच्चति, किं कारणं ? भन्नइ, तओ परिणामविसेसाओ तेसु पोग्गलेसु रसविसेसो भवति त्ति । ते च कम्मपोग्गला अभव्वसिद्धिकेहिं अणंतगुणा

शक्तिप्रचितस्य वस्तुनस्तत्तत्सहकारिकारणवशेन उपाध्या (धि)भेदात् स्फटिकप्रतिच्छायावत् । सा सा क्रिया शक्तिरभिव्यक्तीभवति । उक्तं चैतदर्थानुपाति कर्मप्रकृतिप्राभृते—"सव्वविसुद्धसंजमाभिमुहचरमसमयमिच्छाइट्ठिस्स णाणावरणजहन्नठिइबंधपाउग्गाणि असंखेज्जलोगमेत्त विसोहिठाणाणि होन्ति । पुणो तेसिं उक्कस्स चरमविमोहिए असंखेज्जलोगउत्तरकारण [1][सट्टायाए बज्झमाणुभागट्ठाणाणि असंखेज्जलोगमेत्ताणि अत्थि एवं द्विचरमादिविशुद्धस्थानेष्वपि वाच्यम् ।" एवं च तदेकमपि स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानं तत्तत्सहकारिकारणवशात् तत्तदनुभागबन्धाध्यवसायमिति व्यपदिश्यत इति नात्यन्तिको ऽमीषां भेद इति । न चैतानि कश्चिदेको युगपद् बध्नाति, समयबद्धानुभागस्यैकस्थानकत्वात् । यदुक्तं '**किं स्थानं ? समयबद्धोऽनुभाग**' इति । यच्चूर्णि [कृ] ताऽनुभागस्थान प्ररूपणायां ग्रामनगरादिसमयेषु स्थितिबन्धाद्यध्यवसायस्थानेषूच्चनीचादिकुलकल्पत्वकल्पनयाऽनुभागबन्धाध्यवसायस्थानविभागो कृत (कृतः) स यद्यपि यो (यौ) गपद्यभावभ्रममुत्पादयति तथाप्येकस्थानेके विशेषा इति ख्यापनपरतयाऽत्र बोद्धव्यो, न तु यौ (यौ)गपद्यप्रवृत्तिप्रतिपादनपरतया बद्धं भिन्न तत्सहकारिकारणसहायमेकं स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानमभित्सन्..... नानाजीवानपेक्ष्य """बोध्यमेवान्यनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि स्युरिति ॥छ॥ शतकचूर्णिविषमकतिपयपदविवरणं समाप्तम् ॥छ॥

[1]बृहत्कोष्ठद्वयान्तर्गतपाठः कर्मप्रकृतिचूर्णिटिप्पनतो योजितः

सिद्धाणमणंतभागमेत्ता एक्केक्कंमि समए गहणं एंति । एवमणुसमयं एक्केक्कंमि परिणामम्मि अणंताणंतकम्मपोग्गला लब्भंति त्ति काउं अज्झवसाणठाणेहिंतो कम्मपोग्गला अणंतगुणा । **अविभाग पलिच्छेदा अणंतगुणिया हवंति एत्तो उ'** त्ति 'एत्तो उ' त्ति कम्मपोग्गलेहिंतो अविभागपलिच्छेदा अणंतगुणिता । कहं ? भन्नइ, जहा अद्दहणविसेसाओ सित्थेसु रसविसेसो दिट्ठो तहा अज्झवसाणविसेसाओ कम्मखंधेसु रसविसेसो भवति, अज्झवसाणाइं अद्दहणतुल्लाइं तंदुलत्थाणीया कम्मप्पदेसा । जो एक्कंमि सित्थे रसो सो विभज्जमाणो २ भागं ण देइ सो अविभागपलिच्छेदो । एवं कम्मखंधेसु जो अणुभागरसो सो केवलणाणेण विभज्जमाणो विभज्जमाणो भागं ण देति सो अविभागपलिच्छेदो वुच्चति, तारिसा अविभागा पलिच्छेदा **एक्केक्कंमि कम्मपदेसम्मि सव्वजीवाणं** अणंतगुणा लब्भंति, उक्तं च

"गहणसमयंमि जीवो उप्पाएउं गुणे सपच्चयतो । सव्वजियाणंतगुणो कम्मपदेसेसु सव्वेसु ॥ १ ॥" त्ति [कर्मप्र० बं० २९]

तेण कम्मपदेसेहिंतो अविभागपलिच्छेदा अणंतगुणिता । **सुयपवरदिट्ठिवाए विसिट्ठ-मतयो परिकहेंति'** त्ति सुयं दुवालसंगं-पवरं प्रधानं-सुए पवरं सुयपवरं, किं तत् ? उच्यते दिट्ठिवादो, तम्मि दिट्ठिवाए दिट्ठवादत्थे विशिष्टा प्रधाना प्रकृष्टा मतिर्बुद्धिर्येषां ते विशिष्टमतयो दृष्टिवादार्थज्ञा इत्यर्थः, ते एवं दिट्ठिवायत्थं तु परिकहंति ॥९९॥१००॥१०१॥१०२॥

इदाणिं उवसंहरणणिमित्तं भन्नइ—

एसो बंधसमासो बिंदुक्खेवेण वन्निओ कोइ ।
कम्मप्पवायसुयसागरस्स णिस्संदमेत्ताओ ॥ १०३ ॥

व्याख्या-**'एसो'** त्ति जो भणिओ **'बंधसमासो'** त्ति बंधाणं पगतिठितिअणुभागपदेसाणं संखेवो **'बिंदुक्खेवेण वन्निओ'** त्ति पिंडोत्क्षेपेण पिंडेणेव उद्धरिय कम्मपवाए जहा ठितं तहा उद्धरिय **'वन्निओ'** भणिओ **'कोइ'** त्ति किंचिमेत्तं, **'कम्मप्पवादसुत्तं'** त्ति कम्मविवागं जं भणइ सत्थं तं कम्मप्पवादं कर्मप्रकृतिरित्यर्थः, कम्मप्पवादसुतमेव सागरो कम्मप्पवादसुतसागरो, तस्स कम्मप्पवादसुतसागरस्स णिस्संदमेत्तको जहा घतघडादीणं णिस्संदो तुच्छो, तहा कम्मप्पवादसुतसागरस्स णिस्संदमेत्तो अत्यन्ताऽल्प इति भणियं भवति ॥ १०३ ॥

इयाणिं आयरिओ अप्पणो गारवणिग्हरणत्थं अन्नेसिं च बुद्धिपकरिसदरिसणत्थं छउमत्थबुद्धिलक्खणं च दरिसेंतो भन्नति—

बंधविहाणसमासो रइओ अप्पसुयमंदमइणा उ ।
तं बंधमोक्खणिउणा पूरेऊणं परिकहेंति ॥ १०४ ॥

व्याख्या-**'बंधविहाणसमासो'** त्ति बंधस्स विहाणं-भेदो तस्स समासो-संखेवो **'रइओ'** गहियो **'अप्पसुयमंदमइणा'** मंदं-तुच्छं मति-बुद्धि, अल्पश्रुतेन मंदमतिना, रतितो त्ति एवं

ज्ञात्वा सिद्धान्तविरुद्धं-विपरीतं वा '**तं बंधमोक्खनिउणा पूरेऊण परिकहेंति**' ति तं-विरुद्धं विपरीतं वा बंधमोक्खणिपुणा बंधमोक्खकुसला इत्यर्थः '**पूरेऊणं परिकहेंति**' त्ति पडिपुन्नं करेत्तु भणेज्जा ।।१०४।।

इय कम्मपगडिपगयं संखेवुद्दिट्ठं णिच्छियमहत्थं ।
जो उवजुज्जइ बहुसो सो णाहिति बंधमोक्खट्ठं ॥ १०५ ॥

व्याख्या–'**इय**' त्ति एवं **कम्मपगडीगयं** कम्मप्पगडिअहिगारं '**संखेवुद्दिट्ठ**' संखेवेण कहियं; '**णिच्छियमहत्थं**' ति परिच्छिन्नमहत्थं महार्थता कथमितिचेत्? भन्नइ, एतेण।बीएण सेसोवि महग्गंथो सुहमहिगम्मइ त्ति, जो पुरिसो '**उवजुज्जइ**' भुज्जो भुज्जो चिंतेइ, सो पुरिसो '**णाहिति**' जाणिहिति '**बंधमोक्खट्ठं**' बंधमोक्खसरूवं बन्धमोक्षार्थमिति ॥ १०५ ॥

[चूर्णिटिप्पनकृत्प्रशस्तिः–]

किञ्चिच्चूर्णिगिरां व्यधायि व्यवाद्(विलसद्)प्रज्ञाप्रकर्षाहृते,
ऽप्येतच्चवर्वनमञ्चितक्रमगुरुप्रौढप्रसादोदयात् ।।
संगृहणन्तु विशोधयन्तु विबुधामाव्या(?)न्तु तत्साम्प्रतम् ।
धीमन्तः सुजना. यतोऽञ्जलिमहं बद्ध्वा वा समभ्यर्थये ।।१।।
(शार्दूलविक्रीडितम्)

श्रीमच्चन्द्रकुलीनेन, मुनिचन्द्रेण सूरिणा ।
गुणचन्द्राभिधश्राव(श्राद्ध)–प्रार्थितेन सता कृतम् ।।२।।
(अनुष्टुब)

कि(वि)क्रमात् समतिक्रान्तै–रेकपञ्चाशताधिकैः ।
एकादशवर्षशतैः(११५१)टिप्पनं निर्मितं गतम् ।।३।।
(अनुष्टुब्)

यदत्र मतिमोहेन किञ्चिदागमवर्जितम् ।
बद्धं वस्तु मया तत्र, मिथ्यादुष्कृतमस्तु मे ।।४।।
(अनुष्टुब्)

इति शिताम्बरश्रीमुनिचन्द्रसूरिविरचितं शतकटिप्पनकं समाप्तम् ।

प्रत्यक्षरं निरूप्य तस्य, ग्रन्थमानं विनिश्चितम् ।।
शतानि नव पञ्चाश–दधिका पञ्चभिस्तथा ।। १ ।।
।। ग्रन्थाग्रं ९५५ ।।

यदक्षरं परिभ्रष्टं, मात्राहीनं च यद्भवेत् ।।
क्षन्तव्यं तद्बुधैः सर्वं, कस्य न स्खलते मनः ।। २ ।।

संवत् १३३४ वर्षे द्वि फागुणवदी ११ शनावद्येह श्रीमत्पत्तने महाराजश्रीसारंगदेवराज्ये श्री सज्जनेन शतकटिप्पनकं लिखापितं ।।छ।। कायजेन लिखितं ।।छ।। ।।छ।। ।।छ।।

इति श्रीमद्मुनिचन्द्रसूरिभिर्विरचितविषमपदटीप्पनकसमलङ्कृतया

चिरंतनाचार्यकृतचूर्ण्या विभूषितं

पूर्वधरवाचकवरश्रीशिवशर्मसूरीश्वरप्रणीतम्

बन्धशतकम्

॥ समाप्तम् ॥

अर्हम्

श्रीउदयप्रभसूरिविरचितटिप्पनयुतं पूर्वधरआचकवरश्रीशिवशर्मसूरीश्वर प्रणितं

बन्धशतकम्

प्रणम्य श्रीमहावीरं श्रीशतकस्य टिप्पक[न]म् ।
श्रीउदयप्रभसूरिः कुरुते बुद्धिवृद्धये ॥ १ ॥

अरहंते भगवंते अणुत्तरपरक्कमे पणमिऊणं ।
बंधसयगे निबद्धं संगहमिणमो पवक्खामि ॥ १ ॥

प्रक्षेपगाथेयम् सुगमा ॥

सुणह इह जीवगुणसन्निएसु ठाणेसु सारजुत्ताओ ।
वोच्छं कइवइयाओ गाहाओ दिट्ठिवायाओ ॥ २ ॥

श्रुणुत, अत्र प्रकरणे जीवगुणनामस्थानयोः सारः कर्मविचारप्रधानस्तेन युक्ताः । वक्ष्ये शिवशर्मसूरिरहं कियत्यो[तीर]पि शतमानाः । गीयन्ते प्रतिपाद्यन्तेऽर्थाः आभिरिति गाथाः । दृष्टिवाद ।द्वितायमग्रायणीयाख्यं पूर्वमस्ति तत्र प्रणिधिकल्पाख्यं पञ्चमं वस्तु । तत्राऽपि कर्मप्रकृतिप्राभृतं नाम प्राभृतं श्रुतविशेषरूपम् । (तत्रापि यत्कर्मप्रकृतिलक्षणं द्वारं) तस्मादुद्धृत्यैता गाथा वक्ष्ये इति भावार्थः । एतेन शास्त्रगौरवमापादितं मंगलं च । अभिधायकमिदं शास्त्रम् । शास्त्रार्थो अभिधेयः । ताभ्यां सबंधः । प्रयोजनं श्रोतृकर्त्रोरैहिकामुष्मिकफलमिति ॥२॥ द्वारगाथाद्वयमाहः--

उवयोगा जोगविही जेसु य ठाणेसु जत्तिया अत्थि ।
जप्पच्चईउ बंधो होइ जहा जेसु ठाणेसु ॥ ३ ॥
बंधं उदयोदीरणविहिं च तिण्हं पि तेसिं संजोगं ।
बंधविहाणे य तहा किंचि समासं पवक्खामि ॥ ४ ॥

उपयोगयोगयोर्विधयो-भेदाः ययोर्जीवगुणस्थानयोर्यावन्तः सन्ति तेऽत्राभिधास्यन्ते । चकारो भिन्नक्रमो, यत्प्रत्ययश्च बंधः सामान्यतो मिथ्यात्वादिहेतुभिः कर्मणां तच्चाभिधास्यते । 'होइ जह' त्ति. स एव बन्धः प्रत्येक ज्ञानावरणादिकर्मणां ज्ञानप्रत्यनीकतादिभिर्विशेषहेतुभिर्यथा तदप्यभिधास्ये, येषु गुणस्थानेषु बन्धोदयोदीरणाभेदास्तान्भणिष्यामि । तेषां संयोगं च-एतावतीः प्रकृतीर्बध्नन्नेतावतीर्वेदयत्युदीरयति च समं । बंधविधाने (बन्ध)भेदे च प्रकृतिस्थित्यनुभावप्रदेशलक्षणे समासं संक्षेपं किंचित्प्रवक्ष्यामीति योगः । 'तथा'यथा कर्मप्राभृतेषूक्तं । भावार्थस्त्वयम्-उपयोगो जीवस्वतत्त्वभूतो बोधः । स द्वेधा ज्ञानपञ्चकमज्ञानत्रिकं च । विशेषविषयः साकारः ।१। दर्शनचतुष्कं सामान्यविषयोऽनाकारः ।२। एव द्वादशधा ॥ योगो जीवस्य वीर्यं स मनोवाक्कायभेदात् त्रिधा,

त्रिविधोऽपि पंचदशधा यथा-सत्यम्, असत्यं, सत्यासत्यम् असत्यामृषेति चतुर्धा मनो वाक् च, काय औदारिक १ औदारिकमिश्र २ वैक्रिय ३ वैक्रियमिश्र ४ आहारक ५ आहारकमिश्र ६ कार्मण ७ कायाः एवं १५ ।। बंधविधानं-भेदः प्रकृत्यादि (:) मोदकवत् । ज्ञानाद्यपहारिणी प्रकृतिः । पक्षादिका स्थितिः । अनुभावः-स्निग्धमधुर एकगुणो द्विगुणो वा रसः । प्रदेश -कणिक्काप्रभृतिमानकमानः । एवं कर्मापि, ज्ञानाद्यावारिका प्रकृतिः । त्रिंशत्सागरकोटाकोटिका स्थितिः । एकस्थानादितीव्रमन्दादिको रसः । अल्पबहुः प्रदेशः । एष चतुर्विधोऽपि कर्मण उपादानकाल एव बध्यते ।।३-४।। जीवस्थानान्याह--

एगिंदिएसु चत्तारि हुंति विगलिंदिएसु छच्चेव ।
पंचिंदिएसु य तहा चत्तारि हवन्ति ठाणाइं ।। ५ ।।

जीवन्ति जीविष्यन्ति जीवितवन्त इति जीवाः, तेषां स्थानानि सूक्ष्मैकेन्द्रियादीनि चतुर्दशैव । तत्र एकेन्द्रियेषु सूक्ष्मोपि पर्याप्तापर्याप्तो बादरोपि पर्याप्तापर्याप्त इति चत्वारि जीवस्थानानि । विकलेन्द्रियेषु द्वित्रिचतुरिन्द्रियेषु पर्याप्तापर्याप्तभेदात् षडेव । पंचेन्द्रियेषु संज्ञ्यसंज्ञिरूपेषु पर्याप्तापर्याप्तभेदाच्चत्वारि, एवं सर्वाण्यपि चतुर्दश ।।५।। मार्गणास्थानेषु जीवस्थानान्याह--

तिरियगईए चउदस हवन्ति सेसाओ जाण दो दो उ ।
मग्गणठाणेसेवं नेयाणि समासठाणाणि ।। ६ ।।

तत्र — गई १ इन्दिय २ काये ३ जोए ४ वेए ५ कसाय ६ नाणे ७ य
संजम ८ दसण ९ लेसा १० भव ११ सम्मे १२ सन्नि १३ आहारे १४ ।।७।।

इति चतुर्दशमार्गणास्थानानि । मृग्यन्ते जीवादय एष्विति । तत्र तिर्यग्गतौ चतुर्दशापि जीवस्थानानि भवन्ति । शेषासु नारकनरदेवगतिषु द्वे द्वे सञ्ज्ञिपर्याप्तापर्याप्तरूपे । अपर्याप्तो लब्ध्या करणेन द्विधापि । तत्र योऽपर्याप्त एव म्रियते स लब्ध्यपर्याप्तः । यस्तु करणादीनि नाद्यापि पूरयति, परं पूरयिष्यति स करणाऽपर्याप्तः । नरेषूभयथापि भवति । नारकदेवयोः करणाऽपर्याप्त एव । असंज्ञ्यपर्याप्तो नरस्तु तिर्यग्गतौ ज्ञेयोऽल्पकालिकत्वाद्वा न तृतीयः प्रोक्तः । मार्गणास्थानेष्वेवं संक्षेपजीवस्थानानि ज्ञेयानि । 'इन्दिय' त्ति स्पर्शने सर्वाणि । रसने एकेन्द्रियसंभवीनि चत्वारि वर्जयित्वा शेषाणि दश । घ्राणे एक-द्वीन्द्रियसंभवीनि षड्वर्जयित्वा शेषाण्यष्टौ । चक्षुषि चतुः पंचेन्द्रियसंबंधीनि षट् । श्रवणे पंचेन्द्रियसंबंधीनि चत्वारि । 'काए' त्ति-पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिष्वेकेन्द्रियसंबंधीनि चत्वारि । त्रसेष्वेतानि वर्जयित्वा शेषाणि दश । 'जोए' त्ति मनोयोगे सञ्ज्ञिपर्याप्तरूप एक, वाग्योगे पर्याप्तद्वित्रिचतुरसञ्ज्ञिसंज्ञिरूपाणि पंच, काये चतुर्दशापि, 'वेए' त्ति-स्त्रीपुंवेदयोः पर्याप्त-करणापर्याप्तसंज्ञ्यसंज्ञिरूपाणि चत्वारि । लब्ध्यपर्याप्तः सर्वोऽपि नपुंसक एव । यच्चात्रासंज्ञिनि स्त्रीपुंसाभिधानं तत्कार्मग्रंथिकमतेन न सैद्धान्तिकेन । नरासंज्ञिनस्तु लब्ध्यपर्याप्त एव । नपुंसके चतुर्दशापि । वेदाभावे सञ्ज्ञिपर्याप्तरूपमेकम् । 'कसाय' त्ति-तेषु चतुर्दशापि, अभावे संज्ञिपर्याप्तः। 'नाणे' त्ति-मतिश्रुतावधिषु संज्ञिपर्याप्तकरणापर्याप्तरूपे द्वे । लब्ध्यपर्याप्तस्तु मिथ्यादृगेव । ननु सासादनः समतिश्रुतः पृथिव्यादिषूत्पद्यते, कथं द्वे एव ? आह अशुद्धत्वान्न विवक्षितः । मनःपर्यायकेवलयोः संज्ञिपर्याप्त एकः, द्रव्यमनसा केवली संज्ञी । मतिश्रुताज्ञानयोः सर्वाणि, विभंगे सञ्ज्ञिपर्याप्तः करणापर्याप्तश्च । 'संजम' त्ति-सामायिक

१ छेद २ परिहार ३ सूक्ष्म ४ यथाख्यात ५ देशविरतेषु ६ पर्याप्तसंज्ञी एकः। असंयमे चतुर्दश। 'दंसण'त्ति-चक्षुर्दर्शने पर्याप्तचतुरसंज्ञिसंज्ञिरूपाणि त्रीणि, करणापर्याप्तत्वे षडित्येके। अचक्षुषि चतुर्दश। अवधौ-अवधिज्ञानवत्। केवले केवलज्ञानवत्। लेस' त्ति-कृष्णनीलकापोतासु चतुर्दश। तेजःपद्मशुक्लासु संज्ञिपर्याप्तः करणापर्याप्तश्च। देवच्युतः करणापर्याप्त एकेन्द्रियः तूर्णिकृताल्पकालिकत्वान्न विवक्षितः। 'भव' त्ति-भव्याभव्ययोश्चतुर्दशापि। 'सम्म' त्ति क्षायिक-वेदक-क्षयोपशमिकेषु संज्ञिपर्याप्तः करणापर्याप्तश्च। कथं ? कश्चित् बद्धायुष्कः क्षायिकं कश्चित् क्षप्यमाणक्षायोपशमिकश्चरमग्रासरूपं वेदकं चोत्पाद्य गतिचतुष्केष्वपर्याप्तः क्षायिकोवेदकश्च लभ्यते, क्षायोपशमिकस्तु देवेभ्यश्च्युतस्तीर्थकरादिः। औपशमिके-पर्याप्तः संज्ञी, अपर्याप्तमपि केचित्। सासादने लब्धिपर्याप्ताः करणेन त्वपर्याप्ताः बादरैकद्वित्रिचतुरसंज्ञिनो लभ्यन्ते, संज्ञी लब्ध्या पर्याप्त एव, करणेन त्वपर्याप्तः पर्याप्तश्च। मिश्रे करणपर्याप्तः संज्ञी। मिथ्यात्वे चतुर्दश। 'सन्नि' त्ति संज्ञिनि पर्याप्तापर्याप्तरूपे द्वे, असंज्ञिनि-द्वादश। 'आहारे'त्ति-आहारके चतुर्दश, अनाहारके [अपर्याप्त] सूक्ष्मबादरैकेन्द्रियद्वित्रिचतुरसंज्ञिसंज्ञिरूपाणि विग्रहगतौ सप्त; [पर्याप्तः] संज्ञी केवलिसमुद्घाते ॥७॥ जीवस्थाने ष्पयोगानाह—

एक्कारसेसु तिगतिग दोसु चउक्कं च बारसेमि।
जीवसमासेसेवं उवओगविही मुणेयव्वा ॥ ८ ॥

पर्याप्तचतुरसंज्ञिसंज्ञिवर्जेष्वेकादशसु मतिश्रुताज्ञानाचक्षुर्दर्शनरूपास्त्रयः। द्वयोश्चतुरसंज्ञिनोस्तु त एव चक्षुर्दर्शनेन सह चत्वारः। एकस्मिन्संज्ञिपर्याप्ते द्वादश करणापर्याप्तस्(तीर्थकरः) पर्याप्तत्वेन गृहीत.॥८॥ जीवस्थानेषु योगानाह—

नवसु चउक्के एक्के योगा एक्को य दुन्नि पन्नरस।
तब्भवगएसु एए भवंतरगएसु काओगो ॥ ९ ॥

यथासंख्यं सूक्ष्मबादरपर्याप्तापर्याप्तैकेन्द्रिय ४ द्वित्रिचतुरसंज्ञिसंज्ञ्यपर्याप्ताः ५ एषु नवस्वेकः काययोगः सामान्यतः। विशेषतस्तु लब्ध्या करणेन चापर्याप्तेषु सप्तस्वप्यौदारिकमिश्रः॥ पर्याप्तस्य सूक्ष्मबादरैकेन्द्रियस्य वायुवर्जस्यौदारिकः। वायोस्तु बादरपर्याप्तस्य वैक्रियः २ मिश्रौदारिकश्च लभ्यते। चतुष्के करणपर्याप्तद्वित्रिचतुरसंज्ञिरूपे द्वौ औदारिक १ असत्यामृषावाक् च २ एकस्मिन् पर्याप्तसंज्ञिनि पंचदशापि। तद्भवगतेष्वेते। भवान्तरगतेषु तु विग्रहगतौ एकः कार्मणकाययोगः॥९॥

उवओगा योगविही जीवसमासेसु वन्निया एए।
एत्तो गुणेहि सह परिगयाणि ठाणाणि मे सुणह ॥ १० ॥

कण्ठ्य॥१०॥

मिच्छद्दिट्ठी सासण मिस्से अजए य देशविरए य।
नव संजएसु एए चउदसगुणनामठाणाणि ॥ ११ ॥

मिथ्या-विपर्यस्तं दर्शनम्-सम्यक्त्वं यत्र स मिथ्यादृष्टिः, तस्य गुणस्थानम् किंचित् ज्ञानसद्भावा-दन्यथा जीवस्याजीवत्वं स्यात्। अनाद्यनन्तमभव्यानाम्, अनादिसान्तं भव्यानाम् सादिसान्तं [सम्यक्त्व-पतितानाम्] ज० अंतर्मुहूर्तम् [उ० अपार्धपुद्गलपरावर्तम्,] ॥१॥ आयम्—औपशमिकलाभं सादयति आसादनम्, नैरुक्तो यलोपः, सह आसादनेन वर्तते १ सह आसातनया अनन्तानुबंधिरूपया वा वर्तते

सासादनः २ सह सम्यक्त्वरसास्वादनेन वर्तते सास्वादनः ३ स चासौ सम्यग्दृष्टिश्च तस्य गु० ज० समयः । उ० षडावलिकाः । कथं ? ग्रन्थिभेदानन्तरं जन्तुः स्थितित्रयमित्थं करोति ॥

△	△△△
□	अन्तरकर०
	अनिवृत्ति०
	अपूर्वकर०
	यथाप्रवृत्त०

प्रथमान्तर्मुहूर्तं मिथ्यात्वे तत्रापूर्वानिवृत्त्यन्तेऽन्तरकरणाद्यसमये औपशमिकस्तस्यान्तर्मुहूर्तान्त्यसमये षडावलिकासु वा औपशमिकं (त्य)जन् उपशमश्रेणिप्रतिपतितो वा सासादने वर्तते ॥२॥

सम्यक् च मिथ्या च दृष्टिर्यस्य स सम्यग्मिथ्यादृष्टिस्तस्य गु० औपशमिकादित्थं △ ▲ ◭ शुद्धार्धविशुद्धाशुद्धत्रिकं जीवकरणादेतस्मिन् कश्चिद्‌वृगच्छति अन्तर्मुहूर्तम् । ततो मिथ्यात्व सम्यक्त्वं वा । सैद्धान्तिकास्तु सम्यक्त्वान् मिथ्यात्वं याति न मिश्रमित्याहुः ॥३॥

विरमति स्म सावद्यात् विरत, गत्यर्थेति कर्तरि क्तः । न विरतो [ऽविरतः] स चासौ सम्यग् जानन्नपि द्वितीयकषायोदयाद् विरतिं न लाति ।ज० अन्तर्मुहूर्तं, उ० सागरास्त्रयस्त्रिंशत्साधिकाः ॥४॥

देशे विरतं यस्य स देशविरतः । तृतीयकषायोदयात् सर्वविरतिं नाप्नोति । ज० अन्तर्मुहूर्तं उ० देशोनपूर्वकोटिः ॥५॥

प्रमाद्यति स्म प्रमत्तः स चासौ संयतश्च प्र० तस्य गु० ज० समयः उ० अन्तर्मुहूर्तम्, (६) ।

न प्रमत्तं अस्य अस्ति अप्रमत्त; अर्शादेर्मत्वर्थीयोऽच् । अन्तर्मुहूर्तम् ॥७॥

अपूर्वकरणक.ल[लान्ते]एव निधत्तनिकाचने गते । अपूर्वं करणं स्थितिघात [1]रसघात [2]गुणश्रेणि[3]गुणसंक्रम[4] स्थितिबंधेषु[5]यस्य सो अपूर्वकरणः । तत्र द्वयं सुगमम् । १-२ । उपरितनस्थितेर्विशुद्धितोऽवतारितस्य दलिकस्यान्तर्मुहूर्तम् उदयक्षणादुपरि क्षिप्रतर क्षपणाय प्रतिक्षणमसंख्येयगुणवृद्धया विरचनं गुणश्रेणिः । ३। स्थापना △▽ एषा पूर्वगुणेषु कालतो दीर्घा दलिकरपृथ्वी । अत्र अ[च] कालतो ह्रस्वा दलिकैः पृथुतरा बध्यमानशुभाशुभप्रकृतिषु अबध्यमानाशुभप्रकृतिदलिकस्य प्रतिक्षणमसंख्येयगुणवृद्धया विशुद्धिवशान्नयनं गुणसंक्रमः ।४। कर्मणामशुद्धत्वात्पूर्वं दीर्घां स्थितिमत्र तु ह्रस्वां बध्नाति स्थितिबन्धः ।५। उदयोद्वर्तने अप्यत्रापूर्वे । अयं च द्विधा क्षपक उपशमको वा, अर्हत्वात् । न त्वसौ क्षपयति उपशमयति वा । अत्र च प्रविष्टानामसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणान्यध्यवसायस्थानानि स्युः, अध्यवसायनिवर्तनान्निवृत्तिरप्येतत् ॥८॥

युगपदिदं प्रविष्टानां शुद्धाध्यवसायनिवृत्तिर्नास्ति इति अनिवृत्तिः । बादरः स्थूलः संपरायः कषायोदयो यत्रासौ बादरसंपरायः अनिवृत्तिश्चासौ बादरसंपरायश्च अनिवृत्तिबादरसंपरायः, तस्य गु० ९ ॥अ०॥ अन्तर्मुहूर्तमानेऽस्मिन् यावन्तः समयाः तावन्त्यध्यवसायस्थानानि । एकसमये प्रविष्टा[ना] मेकमेवाध्यवसायस्थानं ॥ अत्र क्षपक उपशमको वा । अयं क्रोधमानमायासम्बन्धिनीः किट्टीर्लोभस्य तु बादरा किट्टीः क्षपयति । लोभस्य तु सूक्ष्माः सूक्ष्मसंपराये । तत्र सर्वजीवानन्तगुणरसयुक्तस्तावदेकोपि परमाणुस्तैः सिद्धानन्त(भ्र)मागवर्तिभिरभव्येभ्योऽनन्तगुणैः समरसैः परमाणुभिः कर्मस्कन्धास्तैर्वर्गणास्ततः स्पर्द्धकानि तेषामनन्तरसक्षयेऽतराणकिट्टीत्यन्ते ॥९॥

सूक्ष्मसम्परायः किट्टीकृतलोभोदयो यस्य स सूक्ष्मसंपरायः (ज०) क्ष० उ० अन्तर्मुहूर्तम् ॥१०॥

छाद्यते केवलं ज्ञानम् दर्शनं चात्मनो(ऽने)नेति छद्म तत्र तिष्ठति छद्मस्थः । वीतरागो मायालोभोदयरहितः । स क्षीणकषायोऽपि स्यात् अत उपशान्तकषायवितरागछद्मस्थः तस्य गु० । अत्रोपशमश्रेणिक्रमो वाच्यः । ज० स० उ० अन्तर्मुहूर्तम् ॥११॥ .... ॥१२॥

योगो वीर्यम् सह योगेन वर्तते सयोगः । सयोगी वा सर्वधनादेर्मत्वर्थीयेन० । स त्रिधा केवली मनःपर्यायैरनुत्तरसुरैश्च मनसा पृष्टा[ष्टो] मनसैवोत्तरं दत्ते, वाचा देशनां विधत्ते, कायेन कामति । देशोनां पूर्वकोटिं । ज० अन्तर्मुहूर्तम् ॥१३॥ नास्ति योगो अस्य असौ अयोगो अयोगी वा त्रिधापि योगः ॥१४॥११॥

卐 [सुरनारएसु चत्तारि हुंति तिरिएसु जाण पंचेव ।
गुणयगईए वि तहा चोद्दसगुणनामठाणाणि ॥१२॥

गाथा कण्ठ्या । गतिमार्गणासु गाथायामेवदर्शितत्वात् शेषेन्द्रियादिमार्गणासु गुणस्थानानि दर्श्यन्ते] इन्द्रियमार्गणा तत्रैकद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियेषु पर्याप्तापर्याप्तेषु मिथ्यादृष्टिर्लभ्यते । तेजो वायुवर्जप्रत्येकबादरैकेन्द्रिय-द्वित्रिचतुरसंज्ञिषु लब्ध्या पर्याप्तेषु करणेन त्वपर्याप्तेषु संज्ञिषु लब्ध्या पर्याप्तेषु करणेन तु पर्याप्ताऽपर्याप्तेषु सासादनः । शेषाणि मिश्रादीनि संज्ञिनि करणपर्याप्ते लभ्यन्ते । परं अविरते करणापर्याप्तोऽपि ॥२॥ काये-पृथ्व्यादौ षड्विधेऽपि मिथ्यादृष्टिर्लभ्यते । बादरपृथ्व्यप्प्रत्येकवनस्पतिषु लब्ध्या पर्याप्तेषु करणेनापर्याप्तेषु, त्रसेषु लब्ध्या पर्याप्तेषु करणेन त्वपर्याप्तपर्याप्तकेषु सासादनः । शेषाणि मिश्रादीनि १२ करणपर्याप्तेषु, परमविरतः करणाऽपर्याप्तपर्याप्तेषु च ॥३॥ योगेत्रिविधेऽपि अयोगिवर्जाणि(नि) त्रयोदश ॥४॥ वेदे,निवृत्त्यन्तानि अष्टौ, अनिवृत्तिस्तु यावद् वेदान् न क्षपयति उपशमयति वा तावद्गुणस्थानसंख्येयभागान् यावल्लभ्यते । तत ऊर्ध्वं सर्वेऽपि अवेदकाः ॥५॥ आद्यकषायेषु त्रिषु निवृत्त्यन्तान्यष्टौ अनिवृत्तिरपि यावन्न क्षपयति उपशमयति वा । लोभे तु सूक्ष्मान्तानि दश । उपर्यकषायाः ॥६॥ मतिश्रुतावधिष्वविरतादीनि क्षीणमोहान्तानि नव । मनःपर्याये प्रमत्तादीनि क्षीणमोहान्तानि सप्त । केवले सयोग्ययोगिद्वयं । अज्ञानत्रये मिथ्यात्व-सासादने ॥७॥ सामायिक-छेदयोः प्रमत्तादीनि चत्वारि । परिहारे प्रमत्ताप्रमत्तद्वयं । सूक्ष्मे सूक्ष्ममेकम् । यथाख्याते तूपशान्तादीनि चत्वारि । असंयमे मिथ्यात्वादीनि चत्वारि । संयमासंयमे देशविरतमेकम् ॥८॥ चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोर्मिथ्यात्वादीनि द्वादश । अवधिदर्शने त्वविरतादीनि नव, प्रज्ञप्तौ तु मिथ्यादृष्ट्यादीनामप्यवधिदर्शनमुक्तम् । एवं यदा सासादने मिश्रे वा विभंगज्ञानी तदा अवधिदर्शनमपि इत्यत्र क्षीणमोहान्तानि द्वादश । ये तु मिथ्यादृष्ट्यादीनामवधिदर्शनं न मन्यन्ते तत्र कारणं न विद्मः । केवलदर्शने सयोग्ययोगिद्वयं ॥९॥ षडपिलेश्या आद्यगुणस्थानचतुष्के केचिद्देशयतप्रमत्तयोरपि मन्यन्ते । यतः कृष्णनीलकापोता नामप्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणान्यध्यवसायस्थानानि, मन्दक्लेशेषु च तेषु विरतेरपि भावात् । देशयतप्रमत्ताप्रमत्तास्तूपरितनलेश्यात्रये । निवृत्त्यादयः सयोग्यन्ताः शुक्लायामेव । अयोगिस्त्वलेश्यः ॥१०॥ भवेषु (भव्येषु) चतुर्दशापि । अभव्येषु मिथ्यादृष्टिरेकम् ॥११॥ क्षायिकेऽविरतादयोऽयोग्यन्ताः । क्षायोपशमिकेऽविरतदेशप्रमत्ताप्रमत्ताः । औपशमिकेऽविरतादय उपशान्तान्ताः । मिथ्यादृष्टिमिथ्यात्वे । सासादनः सासादने । मिश्रो मिश्रे ॥१२॥ संज्यसंज्ञिषु मिथ्यादृक्सासादने । मिश्रादयः क्षीणान्ताः संज्ञिष्वेव । सयोग्ययोगी च न संज्ञी नाऽप्यसंज्ञी ॥१३॥ मिथ्यादृक्सासादनाविरतसयोगिन आहारकेष्वनाहारकेषु च । अनाहारत्वं केवलिनः समुद्घाते । शेषाणां विग्रहगतौ । अन्ये त्वयोगिवर्जा मिश्रादय आहारका एव विग्रहाभावात् ॥१२॥ गुणेषूपयोगानाह—

दुण्हं पंचउ छच्चेव दोसु एकंमि हुंति वा मिस्सा ।
सत्त चउणा [सत्तुवओगा] सत्तसु दो चेव य दोसु ठाणेसु ॥१३॥

द्वयोः मिथ्यात्वसासादनयोः पञ्चैवोपयोगा अज्ञानत्रयं चक्षुरचक्षुर्दर्शने च, केचिदवधिदर्शन-

卐 कोष्ठद्वयान्तरगतो गाथायुक्तपाठः प्रतौ नास्ति तथाप्यत्र संभाव्यतेऽतो लिखितः ।

मपोच्छन्ति षष्ठम् । अविरतदेशविरतद्वये षडेव । मतिश्रुतावधिज्ञानानि ३ चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनानि ३ एकस्मिन्मिश्रे षडेवेति संबध्यते, अज्ञानत्रयं चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनत्रयं च ६ व्यामिश्रा सम्यक्त्व-मिथ्यात्वसंवलितत्वात् । सप्तोपयोगाः सप्तसु प्रमत्तादिक्षीणान्तेषु आद्यज्ञानत्रयं दर्शनत्रयं मनःपर्ययं च ।।७।। द्वयोः सयोग्ययोगिनोः स्थानयोः केवलज्ञानकेवलदर्शने द्वे एव ।।१३।। गुणेषु योगा एकमतेनाह–

निसु तेरस एगे दस नव योगा हुन्ति सत्तसु गुणेसु ।
एक्कारस य पमत्ते सत्त सयोगे अयोगिक्कं ।। १४ ।।

त्रिषु मिथ्यात्वसासादनाविरतेषु मनश्चतुर्वाक् च ।।८।। औदारिकवैक्रियौ पर्याप्तेषु औदारिक-वैक्रियमिश्रौ अपर्याप्तेषु कार्मणो विग्रहे त्रयोदश । अत्र मते वैक्रियोऽविरतान्तानामेव न देशविरतादीनां लब्ध्यामावात् । एकस्मिन्मिश्रे अष्टौ मनोवाक्योगा औदारिकवैक्रियौ च दश । नन्वस्य कालकरणा-भावात् मा भूत् कार्मणम् लब्धिप्रत्ययौदारिकवैक्रियमिश्रौ कस्मान्न भवतः ? सत्यं, किन्तु कुतोऽपि कारणान्नोक्ताविति न विद्मः । सप्तसु देशविरताप्रमत्तक्षीणान्तेषु नव २ अष्टौ मनोवाक्योगा औदारिक-श्चेति, तद्भावे नेषाम् जन्मान्तरमिति न कार्मणऔदारिकमिश्रौ आहारकमप्रमत्तस्य किमिति न ? चेदुच्यते । अत्र मते आहारकस्यारम्भे समाप्तौ वा प्रमत्त एव लब्ध्युपजीवनात् । एकादश प्रमत्ते नव पूर्वोक्ता एव आहारकद्विकं च । सयोगि[नि] सप्त । सत्यं मनो असत्यामृषं मनो, वाक् च ४, औदारिकः तन्मिश्रकार्मणौ समुद्घाते ७, अयोगमेकं अयोगिस्थानं लुप्तविभक्तिकम् ।।१४।। ये तु देशविरतादीनामपि वैक्रियं आहारकसमाप्त्युत्तरं संयतस्याप्रमत्तत्वमिच्छन्ति ते इत्थं पठन्ति––

तेरस चउसु दसेगे पंचसु नव दोसु होंति एक्कारा ।
एक्कंमि सत्त योगा अयोगिठाणं हवइ एक्कं ।। १५ ।।

तत्र चतुर्थः प्रमत्तः । एकादश पूर्वोक्ता एव वैक्रियद्विकेन सह त्रयोदशः, अत्र मते देशविरता-दीनामपि वैक्रियाभ्युपगमः। 'दसेगेत्ति'पूर्ववत् । अन्यच्च पूर्वमते नव २ योगा उक्ता. अत्र तु देशविरता-प्रमत्तवर्जेषु पञ्चसु, तयोस्तु 'दोसु होंति एक्कारा' तत्र देशविरतस्य वैक्रियद्विकेन सहोक्ता एव । अप्रमत्तस्य नव पूर्वोक्ता आहारकवैक्रिययुता एकादश । अनयोरारम्भे प्रमत्तस्ततोऽप्रमत्तः, ननु पूर्वमते-ऽवंडादीनां श्रुत्वा वैक्रियमनयोः किं नोक्तम् ? अल्पत्वात् । शेषं कण्ठ्यम् ।।१५।।

'जप्पच्चईउ' इत्याह––

चउ पच्चइओ बंधो पढमे उवरिमतिगे तिपच्चईउ ।
मीसगबीओ उवरिमदुगं च देसेक्कदेसम्मि ।। १६ ।।
उवरिल्लपंचगे पुण दुपच्चओ जोगपच्चओ तिण्हं ।
सामन्नपच्चया खलु अट्ठण्हं होंति कम्माणं ।। १७ ।।

प्रत्ययाः बन्धहेतवः, ते सामान्यतश्चत्वारः, मिथ्यात्वमविरतिः कषाया योगाश्चेति । तत्र मिथ्यात्वं पञ्चधा– एकान्तं १ वैनयिकं २ सांशयिकं ३ मूढं ४ विपरीतं ५, तत्र अनन्तधर्माध्यासिते वस्तुन्येकांशावधारणमेकान्तं, यथा अस्ति नास्ति एव वा जीव इति ।।१।। ऐहिकामुष्मिकं सुख विनय-वानेव लमते न ज्ञानोपवासब्रह्मचर्यकष्टादिरयभिनिवेशो वैनयिकम् ।२। अर्हता जीवादितत्त्वमुक्तं किं स्यात् न वेति सांशयिकं ।३। पृथ्व्यादीनां मूढं ।४। हिंसादीनां दुःखरूपत्वेऽपि सुखाभिनिवेशो विपरीतम् ।।५।। यथा–

सत्यं वच्मि हितं वच्मि सारं वच्मि पुनः पुनः। असारेऽस्मिन् [अस्मिन्नसार] संसारे सारं सारङ्गलोचना ॥
मिथ्यादर्शनमेवास्तु किमन्यैर्दर्शनान्तरैः । निर्वाणं प्राप्यते येन सरागेनाऽपि चेतसा ॥

अविरतिर्द्वादशधा । इन्द्रियमनसामनियन्त्रणं षोढा, षड्जीववधश्च १२ ॥२॥ कषायाः षोडश नोकषायनवकं च । २५ ॥३॥ योगाः पूर्वोक्ताः पञ्चदश ॥४॥ सर्वेऽपि सप्तपञ्चाशत् । तत्र चतुः प्रत्ययोऽपि बन्धः प्रथमे मिथ्यादृष्टौ चतुर्भिरपि सोत्तरभेदैर्ज्ञानावरणादिकं स कर्म बध्नाति, परं संयमाभावात् आहारकद्विकापगमे पञ्चपञ्चाशदुत्तरभेदाः। उपरितनत्रिके सासादनमिश्राविरतिरूपे त्रिप्रत्ययो मिथ्यात्वाभावात् तत्पञ्चकापगमे सासादनस्य पञ्चाशत् . मिश्रस्य मृत्योरभावात् कार्मणमौदारिकवैक्रियमिश्रे अनन्तानुबन्धिचतुष्कं च नास्ति, तदपगमे त्रिचत्वारिंशत् । अविरतस्य मृत्योर्भावात् कार्मणमौदारिकवैक्रियमिश्रे च क्षिप्यन्ते, षट्चत्वारिंशत् भेदा. । 'मोसग बीउ' त्ति द्वितीयोऽविरतिर्हेतुः समिश्रकोऽसंपूर्ण त्रसवधान्निवृत्तत्वान्न द्वादशधा । उपरितनद्विकं च कषाययोगरूपम्। देशवि(तः) तत्राऽप्रत्याख्यानाश्चत्वारो विग्रहेऽपर्याप्तत्वे देशविरतेरभावान्न कार्मणौदारिकमिश्रे ६ त्रससंयमश्चास्येति सप्तकापगमे एकोनचत्वारिंशद् । प्र.गृ हिणः सनप्पारभंजत्रसासंजमो न विवक्षितो-ऽशक्यपरिहारत्वात् । संकल्पजस्त्वंगीकृतो बृहच्चूर्णौ । 'उवरिल्ल' त्ति, उपरितनपञ्चके प्रमत्तादौ सूक्ष्मान्ते द्विः, कषाय १ योग २ प्रत्ययः। तत्र प्रमत्तस्य संज्वलनाः ४ नोकषायाः ९ योगाः कार्म्मणौदारिकमिश्रवर्जाः १३ सर्वे २६।

पणमिच्छ बारअविरयदुवालसकसायकम्मुरलमिस्से । पन्नमिगतीसरहिया छव्वीस पमत्तगुणठाणे ॥ उत्तरभेदाः

अप्रमत्तस्य वैक्रियमिश्राहारकमिश्रापगमे २४। निवृत्तेः शुद्धत्वाद् वैक्रियाहारकापगमे २२। अनिवृत्तौ हास्यषट्कापगमे १६। वेदत्रयकषायत्रयापगमे तु १० सूक्ष्मे सूक्ष्मलोभक्षयात्तव, योगप्रत्ययस्त्रयाणामुपशान्तक्षीणसयोगिनाम् । तत्राऽष्टौ मनोवाग्योगा औदारिकश्चेति, प्रत्येकमुपशान्तक्षीणयोर्नव । सयोगे त्वाद्यन्तं मनो वाक् च ४ औदारिक२०मिश्रकार्मणानि सप्त । अयोगी त्वबन्धकः । अर्थ कण्ठयम् ॥१६-१७॥ विशेषहेतुमाह–

पडणीयमंतराइय उवघाए तप्पओसनिन्हवणे ।
आवरणदुगं भूओ बंधइ अच्चासणाए य ॥१८॥

आवरणद्विकं ज्ञानदर्शनावरणरूपं तच्च ज्ञानस्य ज्ञानिनां पुस्तकादीनां च प्रत्यनीकतया अनिष्टाचरणेन भूयोऽतितीव्रं बध्नाति कर्म। तथाऽन्तरायेण भक्तपानवस्त्रोपाश्रयलाभादिवारणेन । उपघातेन मूलतो विनाशेन । तत्प्रद्वेषेण अप्रीत्या । निह्नवेन न मया तत्समीपेऽधीतमित्यादिरूपेण । अत्याशातनया जात्याद्युद्घट्टनादिहीलनया । ज्ञान्यवर्णवादाकालस्वाध्यायादिभिः पञ्चाश्रवैरप्येतद् बध्यते । एवं दर्शनावरणेऽपि तदभिलापेन वाच्यम् । तथाहि–दर्शनस्य चक्षुर्दर्शनादेर्दर्शनिनां साध्वादीनां तत्साधनस्य श्रोत्रादेः प्रत्यनीकतयेत्यादि ॥१८॥

वेदनीयहेतूनाह—

भूयाणुकंपवयजोग उज्जुओ खंतिदाणगुरुभत्तो ।
बंधइ भूओ सायं विवरीए बंधई (ए) इयरं ॥१९॥

भूतानुकंपी. व्रते महाव्रतादिषु, योगेषु सामाचार्यादिषूद्यतः। मत्ववर्षोयलोपात् क्षान्तिदानवान् । गुरुभक्तश्च, किं बध्नाति भूयस्तीव्रं सातम् । विपरीते त्वसातम् ॥१९॥ दर्शनमोहहेतूनाह—

अरिहन्तसिद्धचेइयतवसुयगुरुसाहुसंघपडणीओ ।
बंधइ दंसणमोहं अणंतसंसारिओ जेण ॥ २० ॥

अर्हत्सिद्धचैत्यतपःश्रुतगुरुसाधुसंघानां प्रत्यनीकोऽवर्णवादी बध्नाति दर्शनमोहम् , येन बद्धेनाऽनंतसंसारिको भवति जीवः । उन्मार्गदेशनया चैत्यमुनिद्रव्यलोपेन तत्त्वनिह्नवेन ॥२०॥
चारित्रमोहमाह–

तिव्वकसाओ बहुमोहपरिणओ रागदोससंजुत्तो ।
बंधइ चरित्तमोहं दुविहं पि चरित्तगुणघाई ॥ २१ ॥

तीव्रकषायो यमेव कषायं तीव्रं करोति तमेव बध्नाति नोकषायांश्च । तथाहि-कोपनो ऽहंकारी, परदाररतो-ऽलीकभाषी, ईर्ष्यालुर्मायावान् स्त्रीवेदम् । ऋजुर्मन्दकोपो मार्दवी, स्वदारतुष्टो ऽमायावी पुंस्त्वम् । पिशुनो निर्लञ्छन-वध-ताडनरतः स्त्रीपुमंग(ल)सेवी [स्त्रीपुमनंगसेवी] धर्मध्वंसी तीव्रविषयरतिर्नपुंसकत्वमर्जयति ।

हसनहासनशीलो, विप्लवकन्दर्प्परि[र]तिप्रियो हास्यमोहम् । क्रीडति क्रीडयति सुखोत्पादको रतिम् । रतिहन्ता पापरतिररतिम् । शोचति शोचयति व्यसनशोकाभिनंदी शोकम् । बिभेति भीषयते भयम् । जुगुप्सते जुगुप्सां जनयति परिवादशीलो जुगुप्सां रचयति । बहुमोहपरिणतो विषयगृद्धि विभ्रमितमतिः । रागो हास्यरत्यादयः । द्वेषो जुगुप्सादय ताभ्यां संयुक्तः । बध्नाति चारित्रमोहम् । 'चारित्रगुणघाति' लब्धमपि चारित्रगुणं हंति । यद् द्विविधमपि कषायनोकषायरुपम् ॥२१॥ नरकादिहेतूनाह–

मिच्छादिट्ठिमहारम्भ परिग्गहो तिव्वलोह नीसीलो ।
नरयाउयं निबंधइ पावमई रुद्दपरिणामो ॥ २२ ॥

मिथ्यादृष्टिः सद्धर्मत्यक्तः । महारम्भपरिग्रहस्तीव्रलोभो निःशीलो नरकायुर्नितरां बध्नाति पापमती रौद्रपरिणामश्च पर्वतराजिकषाय. ॥२२॥

उम्मग्गदेसओ मग्गनासओ गूढहिययमाइल्लो ।
सढसीलो य ससल्लो तिरियाउं बंधए जीवो ॥ २३ ॥

मार्गो ज्ञानादिकस्तमतिक्रम्य देशकोऽत एव मार्गनाशकः । गूढहृदय-उदायिनृपमारकादिवत् । माइल्लोबहिश्चेष्टः । शठशीलो-मुखमृष्टश्चित्तदुष्ट. । सशल्योऽनालोचितप्रतिक्रान्तः । क्षितिभेदकषायस्तिर्यगायुर्बध्नाति जीवः ॥२३॥

पयईइ तणुकसाओ दाणरओ सीलसंजमविहूणो ।
मज्झिमगुणेहि जुत्तो मणुयाउं बंधए जीवो ॥ २४॥

रेणुराजितनुकषायः । भद्रको विनीतो दानरतश्च शीलसंयमरहितस्तद्धि न हि देवायुर्बध्नाति । मध्यमगुणैः क्षान्त्यादिभिर्युक्तो मनुष्यायुर्बध्नाति जीवः ॥२४॥

अणुवयमहव्वएहिं बालतवाकामनिज्जराए य ।
देवाउयं निबंधइ सम्मद्दिट्ठी य जो जीवो ॥ २५ ॥

अणुव्रतोऽविराधितश्रावकः । महाव्रतः सरागसंयतः । वीतरागस्तु शुद्धत्वान्नायुर्बध्नाति बालतपोऽज्ञानकृततपाः कष्टेन मिथ्यादृष्टयोऽपि देवेषु यान्ति । अकामस्यानिच्छतो निर्जरा--क्षुत्तृष्णाद्यासी शी]

तातपवंशमलपंकरोगबन्धसहनेम गिरितरुद्दालनपातादिभिरुदकराजिसमकषायो देवायुर्निबध्नाति। सम्यग्दृष्टिरविरतोऽविराधितव्रतश्च यो जीवः ॥२५॥ नामकर्म्मनिकषाऽपि शुभाशुभभेदाद् द्वे धा तद्धे तूनाह—

मणवयणकायवंको माइल्लो गारवेहि पडिबद्धो ।
असुहं बंधइ नामं तप्पडिवक्खेहि सुहनामं ॥ २६॥

मनोवचनकायैर्वक्रः क्रोधाविष्टः प्राण्यगोपांगादिनाशकः, मायावान्, ऋद्धिरससातरूपैः गौरवैः प्रतिबद्धः । शेष कण्ठ्यम् ॥२६॥ गोत्रयोर्हेतूनाह

अरहंताइसु भत्तो सुत्तरुई पयणुमाण गुणपेही ।
बंधइ उच्चागोयं विवरीए बंधए नीयं ॥ २७ ॥

अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधुचैत्यानां भक्तः, सूत्रमागमस्तद्रुचिः, पठति पाठयति च । प्रतनुमानो जात्याद्यनहंकारः। गुणप्रेक्षी गुणं पुरस्करोति न दोषम् । समस्तं विभक्तिलोपो वा । शेषं कण्ठ्यम् ॥२७॥ अन्तरायहेतूनाह--

पाणिवहाईसु रओ जिणपूया मोक्खमग्गविग्घयरो ।
अज्जेइ अंतरायं न लहइ जेणच्छियं लाहं ॥ २८ ॥

प्राणिवधादिषु रतः, तथा 'पुष्पाद्यं सावद्यंवा त्यज' इति कुदेशनया गृहिणां जिनपूजा निषेधकः। मोक्षमार्गस्य ज्ञानादेः साधूनां वा लाभान्तरायं करोति । तथाऽन्यसत्त्वानां दानलाभभोगोपभोगविघ्नं करोति मन्त्रादिभिर्वीर्यं हन्ति सोऽर्जयत्यन्तरायम्, न लभते येनेप्सितं लाभम् ॥२८॥

येषु स्थानेषु बंधोदयोदीरणाविधिमाह--

बंधठाणा(णि) चउरो ७।८।६।१। तिन्नि य उदयस्स ८।७।४। हुन्ति ठाणाणि ।
पंच य उदीरणाए ७।८।६।५।२। संजोयमओ परं वुच्छं ॥२९॥ प्रक्षेपगाथा

यथोद्देशं निर्देश इति बन्धस्थानानि गुणेष्वाह—

छसु ठाणगेसु सत्तट्ठविहं बंधंति तिसु य सत्तविहं ।
छव्विहमेगो तिन्नेग बंधगाऽबंधगो एगो ॥ ३० ॥

षट्सु मिथ्यात्वसासादनाविरतदेशप्रमत्ताप्रमत्तेषु जीवा आयुर्बन्धकालादन्यत्र सप्तधा आयुर्बन्धे त्वष्टधा बध्नन्ति । त्रिषु तु मिश्रनिवृत्यनिवृत्तिषु सप्तधा आयुर्बन्धाऽभावात् । एकः सूक्ष्मो मोहायुर्वर्जाः षडेव, मोहनीयं बादरसंपरायहेतुकमिति । त्रय उपशान्तक्षीणसयोगिन एकं सातम् । एकोऽयोगीत्यबन्धकः ॥३०॥ उदयविधिमाह—

सत्तट्ठविह छ[विह]बंधगावि वेयंति अट्ठगं नियमा ।
एगविह बंधगो उण चत्तारि व सत्त वेयंति ॥ ३१ ॥

यथासंभवं ये सप्ताष्टषड्विधबन्धकाः सूक्ष्मान्ता उक्तास्ते नियमादष्टधा वेदयन्ति । एकविधबन्धका उपशान्तक्षीणसयोगिनः । पुनश्चत्वारि सप्त वा २ । सयोगो भवोपग्राहीणि चत्वारि । उपशान्तक्षीणास्तु मोहाऽभावात् सप्त । वाशब्दादयोगी भवोपग्राहीणि चत्वारि वेदयति ॥३१॥

उदीरणामेवाह—

मिच्छाविट्ठिप्पभिई अट्ठ उईरंति जा पमत्तो त्ति ।
अद्धावलियासेसे तहेव सत्तेवुईरंति ॥ ३२ ॥

मिथ्यादृष्टयादयः प्रमत्तान्ताः यावदद्धाप्यावलिकाशेषमायुर्न भवति तावदष्टावुदीरयन्ति । तदुदीरणाध्यवसायस्य सर्वेष्वपि भावात् । अद्धाकालस्तदावलिकाशेषे त्वायुष्यायुर्वर्जाः सप्तैव । यथा पूर्वम्, आवलिकाशेषस्यायुष उदीरणा प्रतिषिद्धा । अत्राविशेषोक्तावपि मिश्रोऽष्टौ [ष्टा ए] वोदीरयति । स ह्यायुष्यन्तर्मुहूर्तविशेष एव मिश्रत्वं परित्यज्य सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं वा याति ततो ना(न)वलिकाशेषत्वम् ॥३२॥

वेयणियाऊवज्जे छक्कम्म उईरयंति चत्तारि ।
अद्धावलियासेसे सुहुमु उईरेइ पंचेव ॥ ३३ ॥

वेदनी[य]आयुर्वर्जानि षट्कर्म्माणि उदीरयन्ति अप्रमत्तापूर्वानिवृत्तिसूक्ष्माश्चत्वारः । अद्धावलिकाशेषे तु मोहे सूक्ष्मस्तद्वर्जानि पञ्चैवोदीरयन्ति यतस्तच्छेषस्य मोहस्योदीरणा नास्ति ॥३३॥

वेयणियाउयमोहे वज्ज उईरंति पंचेव ।
अद्धावलिया सेसे नामं गोयं च अकसायी ॥ ३४ ॥

वेदनी [य] आयुर्मोहवर्जानि पञ्च । द्वौ उपशान्तक्षीणावुदीरयतः । किं सदा, नेत्याह, अद्धावलिकाप्रविष्टे ज्ञानदर्शनावरणांतरायकर्म्मणीति शेषः । नामगोत्रे द्वे एव उदीरयति । '[अ]कषायी' क्षीणमोहः, अयं ज्ञानदर्शनावरणांतरायाणि क्षपयन् तावदुदीरयति यावत्केवलोत्पत्त्या सत्तावावलिकाशेषाणि भवन्ति तत ऊर्ध्वमनुदीरयन्नेव क्षपयति । तदा नामगोत्रयोरेवोदीरणा । उपशान्तस्तु सदा पञ्चैव । क्षपया[णा]भावेनावलिकाप्रवेशाभावात ॥३४॥

उईरेइ नामगोए छकम्मविवज्जिया सजोगी उ ।
वट्टंतो उ अजोगी न किंचि कम्मं उईरसि ॥ ३५ ॥

सयोगी तु षट्कर्माणि वर्जयित्वा नामगोत्रे एवोदीरयति । घातिचतुष्कं क्षीणम्, वेद[नी]यायुषोस्तूदीरणा प्रागेवोपरता [तद्योग्या]ध्यवसायाभावात् । अयोगी तु वर्तमानोऽपि कर्मचतुष्टये न किंचित्कर्मोदीरयति, योगसव्यपेक्षत्वादुदीरणाया ॥३५॥

इयतीर्बध्नन्नियतीर्वेदयत्युदीरयति चेति संयोगगतं पश्चानुपूर्व्याह--

अणुईरं उ अयोगी अणुहवइ चउव्विहं गुणविसालो ।
इरियावह न बंधइ आसन्नपुरक्ख [क्ख]डो संतो ॥ ३६ ॥

अयोगी गुणैर्ज्ञानादिभिर्विशालोऽनुदीरयन्नेवाघातिचतुष्क'मनुभवति' वेदयति । ईर्या-योगव्यापारः सैव जीवगृहप्रवेशे पन्था यस्य तदीर्यापथं-सातम् तदुपशान्तादिभिर्बद्धम्, अयं तु न बध्नाति योगाभावात् । सन् मोक्षस्तत्त्वतः स एव चतुर्गत्यपेक्षया सन्निधमान, स आसन्नपुरस्कृतो येन स आसन्नपुरस्कृतः सन् । 'उ' अला(प)क्षणिक ॥३६।

इरियावहमाउत्तो चत्तारि व सत्त चेव वेयंति ।
उईरंति दुन्नि पंचय संसा [र] गयम्मि भयणिज्जो ॥ ३७ ॥

'म'अलक्षणः। ईर्यापथायुक्ता सातयुक्ता उपशान्तक्षीणसयोगाः सातं बध्नन्तश्चत्वारि सप्त वेदयन्ति। तत्र सयोग्यघातिचतुष्कम्। अमोहे[हो]दयौ सप्त। उदीरयन्ति तु द्वे पञ्च वा, तत्र[स]योगी नामगोत्रे। क्षीणस्तु ज्ञानदर्शनान्तरायेष्वावलिकाऽप्रविष्टेषु पञ्च; अन्यथा तु द्वे। उपशान्तस्तु सदा पञ्चैव। संसारगते विषये उपशान्तो भजनीयः कस्याप्यस्ति कस्यापि नास्ति। क्षीणसयोगिनो नास्त्येव संसारः॥३७॥

छप्पंच उईरंतो बंधइ सो छव्विहं तणुकसाओ।
अट्ठविहमणुहवन्तो सुक्कज्झाणे दहइ कम्मं ॥ ३८ ॥

तनुकषायः सूक्ष्मः पूर्वयुक्त्या षड्विधं पञ्चधा च उदीरयन्नष्टधा चानुभवन् षड्विधमुक्तस्वरूपं बध्नाति। स तस्यामवस्थायां शुक्लध्यानेनानंतगुणं कर्म्म दहति, श्रेणिस्थितस्य जन्तो धर्मशुक्लध्यानद्वयं लघुचूर्ण्यभिप्रायेणाविरुद्धम्। बृहच्चूर्णौ तु धर्मध्यानमेवास्य, उक्तञ्च–'वीतरागस्वस्यासन्नत्वेनोपचारात्' ॥३८॥

अट्ठविहं वेयंता छव्विहमुईरंति सत्त बंधंति।
अनियट्टी य नियट्टी अपमत्तजई य ते तिन्नि ॥ ३९ ॥

अनिवृत्तिनिवृत्त्यप्रमत्ता अष्टधा वेदयन्त आयुर्वेदनीयवर्जं षड्विधमुदीरयन्ति। आयुर्वर्जानि सप्त बध्नन्ति, नन्वप्रमत्तस्यायुर्बन्धोऽस्तीत्याह-प्रमत्तेनारब्धमायुर्बन्धमप्रमत्तः समर्थयतो सतोऽप्यविवक्षा वा। च शब्दात्सोऽप्युक्तो वा॥३९॥

अवसेसट्ठविहकरा वेइंति उईरगाय अट्ठण्हं।
सत्तविहगावि वेइंति अट्ठगमुईरणे भज्जा ॥ ४० ॥

अवशेषा मिथ्यादृष्टयादिप्रमत्तान्ता 'अष्टविधकरा' अष्टविधबन्धकाः सन्तो वेदका उदीरकाश्चाष्टानां, सप्तधोदीरणा वेद्यमानायुष आवलिका प्रवेशकाल एव प्रागुक्ता सा चाष्टधाबधू[बन्धका]नां न भवति। आयुर्बन्धस्त्रिभागादिष्वेव भवति, त(दो)दोदीरणाऽतोऽष्टधैवेति युक्तम्। त एव संयोगचिन्तायाः प्रत्येकचिन्तातो विशेषः। यतः प्रत्येकचिन्तायां सप्ता-ऽष्टधा बन्धः सप्ताष्टधोदीरणा चामीषां सामान्येनोक्ता। अत्र तु अष्टधा बध्नतामष्टधैवोदीरणेति। सप्तधा बन्धका अपि वेदयन्त्यष्टधैव। उदीरणायां तु भाज्याः, सप्तधा अष्टधा वा भवति आयुष आवलिकाप्रवेशकाले आयुस्त्यक्त्वा इन्य[अन्यत्र]त्वष्टधा मिश्रस्तु सदा सप्तधा बध्नाति अष्टधा वेदयत्युदीरयति चायुर्बन्धाभावात्॥४०॥

चत्वार्य[रोऽ]नुयोगाः–प्रकृतिवर्णना, साद्यादिप्ररूपणा, भूयःकारादिप्र० स्वामित्वप्र० तत्र प्रकृतयो मूलोत्तरा आह––

णाणस्स य दंसणस्स य, आवरणं वेयणीयमोहणीयं।
आउय नामं गोयं, तहंतरायं च पयडीओ ॥ ४१ ॥
पंच-नव दुन्नि अट्ठावीसा चउरो तहेव बायाला।
दुन्नि य पंच य भणिया, पयडीओ उत्तरा चेव ॥ ४२ ॥

अनयोः स्वरूपमस्मत्कृतकर्मस्तव-कर्मविपाकटिप्पनयोर्ज्ञेयम्। लेशेन उच्यते-ज्ञानं मत्यादिपञ्चधा, दर्शनं चक्षुरादि नवधा, तयोरावरणे ज्ञानावरणं १, दर्शनावरणं २। सातासातरूपेण वेदन

इति वेदनीयं । ३ । मुह्यन्ति सत्कृतेभ्यो जीवा अनेनेति मोहनीयं । दर्शनमोहनीयं मिथ्यात्वमिश्र-सम्यक्त्वरूपम् । चारित्रमोहनीयं षोडशकषाया नवनोकषायाः ।४। आयाति भवान्तरे संक्रामता-मुदयमित्यायुर्नरायुष्कादि चतुर्धा ।५। नमयति जन्तुं गत्यादिपर्यायैरिति नाम । सुरोऽयमित्याविनाम यद्वशाज्जन्तुरासादयति तत्कर्माप्युपचारान्नाम । द्विचत्वारिंशद्विधम्, तत्र गति ४-जाति ५-तनु ५-उपांग ३-बन्धन ४-सङ्घात ५-संहनन ६-संस्थान ६वर्ण ५-गन्ध २-रस ५-स्पर्श ८-आनुपूर्वी ४-विहा-योगति २ एवं १४ पिण्डप्रकृतयः प्रत्येक २८ मिलिताः ४२ पिण्डभेदं. ६५ सह ९३ । बन्धननाम यदा पञ्चदशधा विवक्ष्यते-यथा औदारिकौदारिकबन्धननाम ।१। औदारिकतैजसबं० ।२। औदारिककार्मण बं० ।३। औदारिकतैजसकार्मणबं० ।४। एवं वैक्रियाहारकयोरपि चत्वारि चत्वारि तत्तदभिलापेन १२। तथा तैजस तैजस बं० ।१। तैजसकार्मण बं० ।२। कार्मणकार्मण बं० ।३। एवं १५ । तदा त्र्युत्तरं शतं नाम्नः ।६। गूयते शब्द्यते प्रधानाऽप्रधानतया तेन उच्चैर्नीचैर्गोत्रं कर्माप्युपच[चा] राद्द्विधा ।७। जीवं वा अर्थ-साधनं चान्तरा(य)पततीत्यन्तराय । जीवस्य दानादिकमर्थसिसाधयिषोर्विघ्नीभूय अन्तरा पतति पञ्चधा ॥ ४१-४२ ॥ साद्यादिर्मूलप्रकृतिष्वाह—

साइअणाई धुवअद्धुवो य बन्धो उ कम्म छक्कस्स ।
तइए साइगसेसा अणाइधुवसेसओ आऊ ॥ ४३ ॥

यः पूर्वं छिन्नः पुनर्भवति स बन्धः सादि । यस्त्वनादि कालसन्तानेन प्रवृत्तो न कदाचिच्छिन्नः सोऽनादिः । अभव्यसम्बन्धो ध्रुवः । भव्यानामध्रुव । तत्र ज्ञानदर्शनावरणमोहनामगोत्रान्तरायकर्म-षट्कस्य साद्यादिश्चतुर्धापि बन्धो लभ्यते, कथ ? मोहवजकर्मपञ्चकस्य मिथ्यादृष्ट्यादिसूक्ष्मान्ताः सर्वेऽपि बन्धकाः । उपशान्तस्तस्याऽबन्धक । मोहस्य त्वनिवृत्तिमेव यावद् बन्धनः [क] । ततः सूक्ष्मोपशान्तौ एतद् कर्मषट्कस्याऽबन्धको भूत्वा आयुःक्षये स्थितिक्षये वा प्रतिपत्य यदा पुनरेतानि बध्नतस्तदैतद् बन्धः स्यादिति । सूक्ष्मोपशान्तावस्थामप्राप्तानामनादिः । ध्रुवोऽभव्याना [म] ध्रुवो भव्यानाम् । 'तइए' त्ति तृतीये वेदनीये सादिकाच्छेद्योऽन्यो[ऽना]दिध्रुवाध्रुवरूपस्त्रिधा । वेदनीयस्य बन्धाभावोऽयोगिन्येव तस्य च प्रतिपातो नास्त्यतो न सादित्वम्, आसंसारं बध्यमानत्वादनादिस्त्वस्ति । भव्याभव्यापेक्षयाऽध्रुवाध्रुवौ स्तः । अनादिध्रुवशेषस्त्वायुषि साद्यध्रुवरूपः । यत आयुषस्त्रिभागादावे-व नियतो बन्धस्ततोऽनादिर्ध्रुवश्च [न] ॥ ४३ ॥ उत्तरप्रकृतीनामाह--

उत्तरपयडीसु तहा धुविपाणं(धुवियाण)बन्धचउविगप्पो उ ।
साइगअद्धुवियाओ सेसा परियत्तमाणाओ ॥ ४४ ॥

उत्तरप्रकृतीषु यथा मूलप्रकृतिषु प्रोक्त साद्यापि[दि] स्तथोच्यते-तत्र ध्रुवबन्धिनीनाम् चतुर्विकल्पोऽपि बन्धः । स्वबन्धोच्छेदादर्वाग् याः सदा बध्यन्ते न कदाचित् परावर्तन्ते ता(द)ध्रुव-बन्धिन्यः सप्तचत्वारिंशत् यथा-ज्ञानाव० ५, दर्शना व० ९. मिथ्यात्वं षोडशकषाया भयं जुगुप्सा १९, तैजसकार्मणवर्णगन्धरस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-निर्माण ९, अन्तराय० ५=४७ । तत्र ज्ञानाव० ५-दर्शना० चतुष्कान्तरायाणां १४ सूक्ष्मान्त्यसमये छिन्नबन्धानां उपशान्तोऽबन्धको भूत्वा पतितो यदैता बध्नाति तदा सादिः । उपशान्तमप्राप्तानामनादिः । ध्रुवाध्रुवौ (१०) प्राग्वत् । संज्व-लनाना४मनिवृत्तौ बन्धोच्छेदं कृत्वा पतितस्य बध्नतः सादिः । शेष प्राग्वत् । निद्राप्रचलातैजस-कार्मणवर्णादि ४ अगुरुलघूपघातनिर्माणभयजुगुप्सानां १३ निवृत्तौ छेदं कृत्वा पतितस्य बध्नतः सादिः शेषं प्राग्वत् । प्रत्याख्यानानां ४ देशविरते छेदं कृत्वा पतित्वा बध्नतः सादि । शेषं प्राग्वत् ।

अप्रत्याख्यानानां४मविरते छेदस्ततो देशे गत्वा पतितस्य बध्नतः सादिः शेषं प्राग्वत् । स्त्यानर्द्धित्रिक-मिथ्यात्वानन्तानुबन्धीनां ८ मिथ्यादृष्टिः सम्यक्त्वं प्राप्याऽबन्धको भूत्वा पतितबध्नत [पतित्वा बध्नतः] सादिः । शेषं प्राग्वत् । 'साइग' त्ति सादिका अध्रुवाश्च भवन्ति ध्रुवबन्धिनीभ्यःशेषाः परावर्तमानाः । परावृत्य परावृत्य पुनर्बध्यन्ते यास्ता अध्रुवबन्धीन्यस्त्रिसप्ततिर्यथा–सातासाते वेदत्रयं, हास्यरतियुग्ममरतिशोकयुग्मम्, चत्वार्यायूंषि, चतस्रो गतयः, पञ्च जातयः, औदारिकवैक्रियाहारकशरीराणि,षट्संस्थानानि, त्रिण्यङ्गोपाङ्गानि, षट्संहनना न, चतस्र आनुपूर्व्यः, पराघातं, उच्छ्वासं, आतपं, उद्योतं, विहायोगतिद्वयम्, त्रसादिविंशतिः, तीर्थकरं उच्चैर्नीचैर्गोत्रे ७३ एतन्मध्ये सातासाते वेदत्रयं च परस्परविरुद्धत्वात् न युगपद् बध्यन्त इति परावर्तमानाः । पराघातोच्छ्वासनाम्नी तु पर्याप्तकनाम्नैव सह बध्येते नाऽपर्याप्तकनाम्नेति परावर्तमानता । आतपं त्वेकेन्द्रिययोग्यबन्धेनैव सह बध्यते, उद्योतं तिर्यग्गतिसहितमेवेति तयोः परावृत्तिः । तीर्थकराहारके तु यथाक्रमं सम्यक्त्वसंयमगुणवन्त एव बध्नन्तीति परावृत्तिः । एवं सर्वा अप्येता नियतकाल एव बध्यन्तेऽतः सादिकाः, जातोऽपि बन्धो निवर्तत इत्यध्रुवा । मूलप्रकृतिबन्धेषु भूयस्काराल्पतरावस्थितानाह —

चत्तारि पयडिठाणाणि तिण्णि भूयगारअप्पतरगाणि ।
मूलपयडीसु एवं अवट्ठिओ चउसु नायव्वो ॥ ४५ ॥

तत्रैकधाऽल्पबन्धको भूत्वा पुनः षड्विधादि बहुबन्धको भवति स आद्यसमये भूयस्कारबन्धः १ यत्र त्वष्टधातः सप्तधादिबन्धको भवति सोऽल्पतरः २ यत्र त्वाद्यसमये एकधा द्वितीयेऽप्येकधा सोऽवस्थितः ३ यत्र त्वबन्धको भूत्वा पुनर्बध्नाति सोऽ वक्तव्यः ४ अयन्तूत्तरप्रकृतीनामेव, मूलप्रकृतीनां सर्वथाऽबन्धकस्याऽयोगिनः प्रतिपाताभावात् । एवं चतुर्धा बन्धः । उक्तं च—

एगादहिगे पढमो एगाई ऊणगम्मि बीओ य ।
तत्तियमित्तो तइयो पढमे समये अवत्तव्वो ॥ ४६ ॥ प्रक्षेपः

तत्र मूलप्रकृतिबन्धस्थानानि चत्वारि 'सत्तट्ठछ एग बन्धा' इति तत्र त्रयो भूयस्कारास्त्रयोऽल्पतराः । यथा आयुर्बन्धकालेऽष्टबन्धस्ततः सप्तधा बध्नतः प्रथमसमयेऽल्पतरः १ द्वितीयादिसमयेष्ववस्थितः ।१। सप्तधातः सूक्ष्मे षट्धा बध्नतोऽल्पतरः ।२। द्वितीयादिष्ववस्थितः ।२। षड्विधादुपशान्ते एकधा बध्नतोऽल्पतरः द्वितीयेऽवस्थितः ३ इति त्रयः । उपशान्ते एकधा बन्धात् सूक्ष्मे षड्विधं बध्नतो भूयस्कारः ।१। एवं द्वितीयादिष्ववस्थितः सर्वत्र । ततोप्यध. सप्तधा बध्नतो भूयः ।२। आयुर्बन्धेऽष्टधा बध्नतो भूयः ३ एवं त्रयः ॥४५-४६॥ । उत्तरास्वाह—

तिण्णिदसअट्ठाणाणि दंसणावरणमोहनामाणं ।
एत्थ य भूयोगारो सेसेसेगं हवइ ठाणं ॥ ४७ ॥

दर्शनावरणोत्तरप्रकृतीनां त्रीणि बन्धस्थानानि, मोहस्य दश, नाम्नोऽष्टौ यथासंख्यं त्रिषु कर्मसु 'भूयक्कारे' इत्यादि लोपात् चत्वारोऽपि बन्धा भवन्ति । कथं ? दर्शननवकं सासादनं यावत् बध्यते ततः परं स्त्यानर्द्धित्रिकस्य बन्धश्छिद्यते, [त]तो मिश्रादिषु षड्विधं बध्नतोऽल्पतरः ।१। ततो निवृत्तौ निद्राद्विकछेदस्तत्राऽल्पतरः ।२। शेष[ाः]सूक्ष्मं यावत् बध्यते । ततः प्रतिपत्य षड्विधं बध्नतो भूयस्कारः । ततोऽपि नवधा बध्नतो भूयःकारः ।२। यदा तूपशान्ते दर्शननवकाबन्धको भूत्वा अद्धाक्षये पुनश्चतुर्धा बध्नाति तदाऽवक्तव्यः । १ भूयस्कारादिलक्षणायोगान्न तद्विकल्पे वक्तुं शक्यत इति

अवक्तव्यः, यदा तूपशान्त एवायुःक्षयादनुत्तरेषूत्पद्यते तदाद्यसमये षड्विधबन्धतोऽवक्तव्यः । २ तदेवं द्वौ भूयसौ, द्वौऽल्पौ द्वौऽवक्तव्यौ । मोहबन्धस्थानान्येवं दश-२२-२१-१७-१३-९-५-४-३-२-१ तत्र मिथ्यात्वं षोडशकषायाः १७,अन्यतरो वेदः १८, हास्यरतियुगअरतिशोकयुगयोरन्यतरद्युग २०, भयं २१, जुगुप्सा २२, एनां मिथ्यादृष्टिरेव बध्नाति । एवैव मिथ्यात्वरहिता २१, परं स्त्रीपुंवेदयोरन्यतरो वेदः, एनां सासादनो बध्नाति । अनन्तवर्जकषाया. १२, पुं वेद १३, अ यतरद्युगं १५, भयं १६, जुगुप्सा १७, एतद् बन्धो मिश्राविरतयोरेव । अप्रत्याख्यानवर्जाः एताः १३ देशविरतो बध्नाति । प्रत्याख्यान ४ वर्जा नव प्रमत्तो बध्नाति । अप्रमत्तनिवृती च एता एव परं हास्यरतियुग्मेव । संज्वलनचतुष्कं पुंवेदः पञ्च अनिवृत्तिर्बध्नाति, पुंवेदे छिन्ने चतुष्कमयमेव क्रोधे छिन्ने त्रयं, मा्ने द्वयं, मायायाम् एकं लोभं । एषु दशसु नव भूयस्काराः एकधा निपत्य द्विधा बध्नत आद्य एवं त्रिधादिषु यावद् द्वाविंशे नव अल्पतरा स्त्वष्टौ । तत्र द्वाविंशतिधा सप्तदशधा बध्नत आद्य, । एवं यावदेकेऽष्टौ । द्वाविंशादेकविंशे न गतिरसंभवात्, यतो न मिथ्यादृष्टिरनन्तरभावेन सासादनत्वं याति किन्तूपशमिक एव । अवक्तव्यौ द्वौ । यदा उपशान्तो मोहस्याबन्धकोभूत्वाऽद्धाक्षये प्रतिपत्य संज्वलन लोभं बध्नाति तदेक । अथोपशान्त एवायुः क्षयेऽनुत्तरेषूत्पद्यते तदा सप्तदशधा बध्नतः २ ॥४७॥

तेवीसपण्णवीसाछव्वीसाअट्ठवीसइगुनीसा ।
तीसेगतीस एगं बन्धट्ठाणाइ नामस्स ॥ ४८ ॥ प्रक्षेप०

नाम्नोऽष्टौ २३-२५-२६-२८-२९-३०-३१-१ । तत्र 'तैजसं' बध्यमानत्वात्. [तैजसादि ९ ध्रुवाः] तथा तिर्यग्गतिस्तिर्यगानुपूर्वी, एकेन्द्रियजातिरौदारिकं, हुंडं स्थावरं, बादरसूक्ष्मयोरन्यतरत्, अपर्याप्तं प्रत्येकसाधारणयोरन्यतरत् अस्थिरं, अशुभं, दुर्भगं, अनादेयं, अयशःकीर्तिरेताश्चतुर्दशपूर्वाभिः सह त्रयोविंशतिः । एतां चैक-द्वि-त्रि-चतुः पञ्चेन्द्रियाणामन्यतरो मिथ्यादृगेवाऽपर्याप्तैकेन्द्रिययोग्यां बध्नाति । एषा पराघातोच्छ्वासाभ्यां सह २५ । परमपर्याप्तस्थाने पर्याप्तम्,स्थिरास्थिरशुभाशुभ-यशः-कीर्त्ययश.कीर्तीनां परावृत्तिर्वाच्या । एतां पर्याप्तैकेन्द्रिययोग्यां नानाजीवा बध्नन्ति । एषा विकलेन्द्रियादियोग्यापि नानाभङ्गैः संभवति परं परस्थानत्वान्नोच्यते सप्ततीकातो ज्ञेया । एषैवातपोद्योतयोरेकतरक्षेपे २६, एषा पर्याप्तैकेन्द्रिययोग्यैव बध्यते, तथा देवगतिर्देवानुपूर्वी पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकं समचतुरस्रं उच्छ्वासं पराघातं, प्रशस्तविहायोगतिस्त्रसं बादरं, पर्याप्तं प्रत्येकं स्थिरास्थिरयोः शुभाशुभयोर्यशःकीर्त्ययश.कीर्त्योः पृथगेकैकमन्यतरत्, सुभगं, सुस्वरं, आदेयमेताः १९ पूर्वनवध्रुवाभिः सह २८ । एतां देवगतियोग्यां विशुद्धास्तिर्यग्मनुष्या बध्नान्त । अस्यां तीर्थकरनाम्नि क्षिप्ते २९ एतां सम्यक्दृशो नरा एव बद्धतीर्थंकरनामानो देवगतियोग्यां बध्नन्ति । यद्वा या पूर्वं पञ्चविंशतिरुक्ता तन्मध्ये औदारिकाङ्गोपाङ्गाऽन्यतरस्वरेऽन्यतरसंहननेऽन्यतर विहायोगतौ क्षिप्तायां २९ परमेकेन्द्रियस्थाने-पञ्चेन्द्रियं स्थावरस्थाने त्रसं वाच्यं । एषा पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योग्यैव । पूर्वोक्ताष्टाविंशतौ आहारकद्विकक्षेपे ३०, परं स्थिर-शुभ-यशकीर्तय एव वाच्या न विपक्ष । अस्यास्त्वप्रमत्तनिवृत्तौ बन्धको यद्वा कश्चिद् बद्धतीर्थंकरनामकर्मा देवो मृत्वा नृगतियोग्यामेव बध्नाति । यथा-नृद्विकं, पञ्चेन्द्रियं-औदारिकद्विकं, तुल्यं[समचतुरस्रं], वज्रर्षभनाराचं, पराघातं, उच्छ्वासं, प्रशस्तविहायोगतिस्त्रसादिचतुष्कं, स्थिरास्थिरयोः शुभाशुभयोः यशःकीर्त्ययशकीर्त्योः पृथगेकैकं, सुभगं सुस्वरं, आदेयं, तीर्थंकरं २१, नवध्रुवाभिः सह ३० । आहारकद्विकयुक्तायां पूर्वं त्रिंशदुक्ता, तस्यां तीर्थकरे क्षिप्ते ३१ । एतामप्रमत्त. कियं तमपि भागं यावन्निवृत्तिश्च देवगतियोग्यामेव बध्नाति । एकधा तु यशःकीर्तिरुप निवृत्य नवसि-

सूक्ष्माः स्वरूपेणैव बध्नन्ति । न तु कस्यचिद्योग्यं देवगतियोग्यस्यापि बन्धस्य छिन्नत्वात् । एवं भूयस्काराः षट् । तत्र त्रयोविंशतिं बद्ध्वा विशुद्धितः पञ्चविंशतिं बध्नत आद्यः । एवं षड्विंशत्याविष्वेक-त्रिंशति षष्ठः । यद्वा एकधा बद्ध्वा श्रेणेःनिपततः पुनःनिवृत्तावेकत्रिंशतं बध्नतः षष्ठो न सप्तमः । एकत्रिंशत्स्थानस्योभयथाप्येकत्वात् । अल्पतराः सप्त । तत्र निवृत्तौ देवयोग्यां २८-२९-३०-३१ वा बद्ध्वा एकविधं गतस्याद्यः । एकत्रिंशतस्त्रिंशतं गतस्य द्वितीयः । कथं ? एकत्रिंशद्बन्धक देवस्य [देवगतस्य] नरयोग्यां त्रिंशतं बध्नतः । स एव यदा नरेषूत्पन्नो देवयोग्यां तीर्थंकरयुतां एकोनत्रिंशतं बध्नाति तदा ३ । तस्मादष्टाविंशतौ ४ षड्विंशतौ ५ पञ्चविंशतौ ६ त्रयोविंशतौ ७ ।

अवक्तव्यास्त्रयः। उपशान्ते नाम्नोऽबन्धको भूत्वा अद्धाक्षये प्रतिपत्य यदा एकधा बध्नाति तदाद्यः, उपशान्तास्यैवायुः क्षयेणात्ततीर्थंकरनाम्नोऽनुत्तरेषूत्पन्नस्याद्यसमये नृयोग्यां तीर्थंकरयुतां त्रिंशतं बध्नतः २ । तत्रैव तीर्थंकरवियुक्तां नृयोग्यां एकोनत्रिंशतं बध्नतः ३ । वेदनीय(द्विक) स्यत्ववस्थित बन्ध एव, अवक्तव्यो न संभवति, उक्तं च—

णाणावरण तह आउयम्मि गोयम्मि अंतरायम्मि । ठिय अव्वगत्तबन्धा ....॥

यतः आयुषो निवृत्तौ शेषाणामुपशान्तोऽबन्धको भूत्वा पुनर्बन्धेऽवक्तव्यः । द्वि० स० अवस्थितः । .... अवट्ठिओ वेयणिम्मि ॥

बन्धस्वामित्वमाह—

सव्वासिं पयडीणं मिच्छद्दिट्ठी उ बन्धओ भणिओ ।
तित्थयराहारदुगं मुत्तुं सत्तरुत्तरसयस्स ॥ ४९ ॥

बन्धे विंशत्युत्तरं शतं तासां सर्वासां प्रकृतीनां मिथ्यादृष्टिर्बन्धक उक्तस्तीर्थंकरनामाहारकद्विकं मुक्त्वा शेषसप्तदशोत्तरशतस्य, यतः—

सम्मत्तगुणनिमित्तं तित्थयरं संजमेण आहारं ।
बज्झन्ति सेसियाओ मिच्छत्ताईहिं हेऊहिं ॥ ५० ॥

सम्यक्त्वगुणाद्धेतोस्तस्याद्यो विंशतिः तद्धेतुक तीर्थंकरनाम । संयमेनाप्रमत्तेनाहारकद्विकं बध्यते । शेषाः ११७ मिथ्यात्वादिभिः हेतुभिर्बध्यन्ते । काः कुत्र छिन्ना इत्याह—

सोलस मिच्छन्तंता पणुवीसं हुंति सासणंताओ ।
तित्थयराउसेसा अविरइयंता उ मीसस्स ॥ ५१ ॥

मिथ्यात्वं, नपुंसकं, नारकायुर्नरकद्विकं एक द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियजातयः, हुंडं, सेवार्त्तं, आतपं, स्थावरं, सूक्ष्मं, अपर्याप्तं, साधारणं १६ । आसां मिथ्यात्वेऽस्तस्त [त्र]भावस्तदुत्तरत्राभाव एव रूपः । नारकैकविकलेन्द्रिययोग्या अशुभाः एतद्वर्ज एकोत्तरशतं सासादनो बध्नाति । स्त्यानर्द्धित्रिकं चत्वा[रो]ऽनन्तानुबन्धिनः स्त्रीवेदस्तिर्यगायुस्तिर्यग्द्विकं आद्यन्तवर्जानि पृथक् चत्वारि चत्वारि संस्थानसंहननानि उद्योतं अशुभखगतिर्दुर्भगं दुस्वरं अनादेयं नीचैर्गोत्रं २५ एताः सासादनन्ताः । एतच्छेषां तीर्थंकरनामसहिताभविरतो बध्नाति सप्तसप्तर्ति । 'तित्थयराउ' त्ति तीर्थंकरनृदेवायुर्द्विकशेषा अविरतान्ताः सत्यो या एताविरतो बध्नाति ता एव मिश्रे परं चतुःसप्ततिः । नारकतिर्यगायुषी यथासंख्यं मिथ्यादृष्टिसासादनयोश्छिन्ने ।

अविरइयंताओ दस विरयाविरयंतियाउ चत्तारि ।
छच्चेव पमत्तंता एगा पुण अप्पमत्तंता ॥ ५२ ॥

अप्रत्याख्यानाः ४ मनुष्यायुर्मनुष्यद्विकं ७ औदारिकं द्विकं वज्रर्षभनाराचं १० एता अविरतान्ताः । ननु सम्यग्दृष्टिस्त्वादसौ देवयोग्यामेव बध्नाति, कुतो नरायुष्कसंभव इत्याह–नरतिर्यक्षु स्थितोऽसौ देवयोग्यं बध्नाति । नारकदेवेषु तु स्थितो नरयोग्यमेव । देशविरतादयस्तु न नरकस्वर्गयोरित्यासामुत्तरत्रासंभवः । सप्तसप्ततेर्दशस्वपगतासु देशविरते ६७ बन्धः । प्रत्याख्यानाः ४ देशे छिन्नाः प्रमत्ते ६३ बन्धः । असातं अरतिः शोकः अस्थिरं अशुभं अयशःकीर्ति. ६ एताः प्रमत्ते छिन्नाः । षट्कापगमेऽप्रमत्ते ५७ आहारकद्विकक्षेपे ५९ बन्धः । प्रमत्तेनारब्ध (द्वय)मसौ समर्थयते देवायुष्कं, [तच्चा]सौ स्वाद्धाया (अ) संख्येयभागे छिनत्ति ततः ५८ बन्धः । निवृत्तेरपि ।

दो तीसा चत्तारि य भागे भागेसु संखसन्नाए ।
चरिमे य जहासंखं अपुव्वकरणंतिया होन्ति ॥ ५३ ॥

द्वौ त्रिंशत् चत्वारि च छिन्नाः क्व ? भागेऽपूर्वकरणस्य भागे कस्य भागस्यापि कियत्सु संख्येयसंज्ञया । चरमे च भागे यथासंख्यं निवर्त्यन्तो भवति । तत्रायमष्टपञ्चाशत् तावद् बध्नाति यावत् संख्येयभागस्तत्र निद्राप्रचलयोः छेदः ततः ५६ बध्नाति । तावद् यावद् संख्येय भागः । तत्र देवद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकमाहारकद्विकं तैजसं कार्मणं तुल्यं वर्णादि ४ अगुरुलघु उपघातं पराघातं उच्छ्वासं शुभखगतिः त्रसादि ४ स्थिरं शुभ सुभगं सुस्वरं आदेयं निर्माणं तीर्थकरं ३० । एतच्छेदे २६ ता बध्नाति यावच्चरमसमयस्तत्र हास्यरतिभयजुगुप्सानां ४ छेदः । ततोऽनिवृत्तौ २२ बन्धः ।

संखेज्जइमे सेसे आढत्ता बायरस्स चरमंते ।
पंचसु एक्केक्कंता सुहुमंता सोलस हवन्ति ॥ ५४ ॥

षड्विंशतिमनिवृत्तिस्तावत् बध्नाति यावत् स्वाद्धायाः संख्येयभागा गता एकस्तु संख्येयभागः शेषस्तस्य पञ्चसु भागेस्वेकैकस्याः छेदः । तत्र प्रथमभागान्ते नृवेदः, २१ बन्धः । द्वितीये क्रोधं २० बन्धः । तृ० मानं १९ ब० । च० मायां १८, लोभं १७. एताः सूक्ष्मस्तावद् बध्नाति यावच्चरमसमयस्तत्र ज्ञानाव० ५, दर्शन० ४, यशःकीतिरुच्चैर्गोत्रं अन्तराय ५–१६ आसां छेदः, तदपगमे सातमेकं उपशान्तक्षीण-सयोगिनो बध्नन्ति ।

सायंतो जोगंते एत्तो परओ उ नत्थि बन्धोत्ति ।
नायव्वो पयडीणं बंधस्संतो अ[अणं]तो य ॥ ५५ ॥

सातस्यान्तश्छेदः सयोग्यन्ते तत परं नास्ति बन्धः । ज्ञातव्यः प्रकृतीनां बन्धस्यान्तस्तत्रभावो-(ऽनन्तश्च) तदुत्तरत्राभाव इति । भव्यानां सान्तोऽभव्यानामनन्त इति वा । स्वामित्वं मार्गणास्थानेष्वाह–

गइआइएसु एवं तप्पाउग्गाणमोहसिद्धाणं ।
सामित्त नेयव्वं पयडीणं ठाणमासज्ज ॥ ५६ ॥

एवमुक्तरित्या प्रकृतीनां स्थानं ज्ञानपञ्चकादिमाश्रित्य बन्धस्वामित्वं ज्ञेयं । 'केसु गइइन्दिय त्ति दारेसु' तत् गत्यादिप्रायोग्याणां प्रकृतीनां, किं भूतानामोघसिद्धानां सामान्यानन्तरभणननिश्चितानां, कोऽर्थः ? ओघेन यदुक्तं स्वामित्वं गत्यादिष्वपि तथा ऊह्यं । तत्र नारकदेवायुषी नरकद्विकं देवद्विक एक-द्वि-त्रि-चतुर्जातयो वैक्रियद्विकमाहारकद्विकमातपं स्थावरं सूक्ष्ममपर्याप्तं साधारणं १९ एता

भवप्रत्ययादेव नारकाणां न भवन्ति। शेषमेकोत्तरशतं बध्नन्ति। तिर्यग्गतौ आहारकद्विकं तीर्थकरं ३ मुक्त्वा ११७ बन्धो। नराणां १२० बन्धे परं तिर्यञ्चो नराश्च मिश्राद्यविरतासु देवगतियोग्यमेव बध्नन्ति, न नृगतियोग्यं। देवास्तु नरकगतियोग्यं यदुक्तं एकोत्तरशतं तदेवैकेन्द्रियआतपस्थावरसहितं १०४ बध्नन्ति। 'इन्दिये' त्ति एक-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिया नारकदेवायुषी नरकद्विकं देवद्विकं वैक्रियद्विक-माहारकद्विकं तीर्थकरं ११ मुक्त्वा पृथक् पृथक् नवोत्तरशतं बध्नन्ति। पञ्चेन्द्रिया १२०। एवं काया-दिष्वपि बन्धस्वामित्वविषयानुसारतो वाच्यं। प्रकृतिबन्धो गतः।

स्थितिबन्धमाह-तत्र पञ्चानुयोगाः स्थितिप्ररूपणा।१। साद्यादिप्र०।२। प्रत्ययप्र०।३। शुभा-शुभप्र०।४। स्वामित्वप्र०।५।

सत्तरिकोडाकोडी अयराणं होइ मोहणीयस्स।
तीसं आइतिगंते वीसं नामे य गोए य ॥५७॥
तेत्तीसुदही आउम्मि केवला होइ एवमुक्कोसा।
मूलपयडीण एत्तो ठिइं जहन्नं निसामेह ॥५८॥

महत्त्वात्तरीतुं न शक्यन्तेऽतराणि सागराणि तेषां सप्ततिः कोटाकोट्यो मोहस्योत्कृष्टस्थितिः। अत्र सप्तवर्षसहस्राण्यनुदयरूपाऽबाधा तया ऊना (म) कर्मस्थितिनिषेकः। निषेको नाम प्रथमसमये बहुः द्वितीये हीनः एवं हीनतरस्तमः अबाधां विहाय तत ऊर्ध्वं वेदनार्थं कर्मनिषेको भवति। स्थापना .:.

'तीसं' ति आदित्रिकं ज्ञानदर्शनावरणे वेदनीयरूपं तथान्त्यमन्तरायं तेषु त्रिंशत्सागर० कोटा[को]ट्यः। त्रीणि वर्षसहस्राण्यबाधा। नामगोत्रयोर्विंशतिसाग०। वर्षसहस्रद्वयमबाधा। आयुषि पूर्वकोटि त्रिभागाधिकानि ३३ सागराण्युत्कृष्टा स्थितिः। पूर्वकोटीत्रिभागोऽबाधा। केवलाबाधारहिता॥

जघन्यामाह-ज्ञानदर्शनावरणान्तरायमोहानामन्तर्मुहूर्तं लघ्वन्तर्मुहूर्तमबाधा। वेदनीयस्य कषायप्रत्ययस्य १२ मुहूर्ता। अन्तर्मुहूर्तमबाधा। योगप्रत्ययस्य द्वौ समयौ स नेहाधिक्रियते। नामगोत्रयो-रष्टौ मुहूर्ता। अन्तर्मुहूर्तमबाधा। आयुषः क्षुल्लकभवग्रहणं जघन्या स्थितिः।

दोन्निसयाइम्मि समया समओ सघायणो य तेऊणं। खुड्डागभवग्गहणं सव्वजहन्नो ठिई कालो॥
खुड्डगभवा साहीया सत्तरस हवन्ति एगपाणुम्मि। पाणू एगमुहुत्ते तिसत्तरासत्ततीससया॥
पणसट्ठिसहस्सपणसयछत्तीसा इगमुहुत्तखुड्डभवा। दो य सया छप्पन्ना आवलियाणेग खुड्डभवो॥

अन्तर्मुहूर्तमबाधा। उत्तरासु तत्र ज्ञानाव० ५ दर्शन० ९ असात० १ अन्तराय० ५=२० त्रिंशत् सागरकोटाकोट्य उत्कृष्टा स्थितिः। सातस्त्रीवेदनृद्विकाऽनां पञ्चदशसाग०। मिथ्यात्वस्य सप्ततिः सा०। कषायषोडशकस्य चत्वारिंशत् सा०। नपुंसकारतिशोकभयजुगुप्सानरकद्विकतिर्यग्द्विकएक-पञ्चे-न्द्रियजात्यौदारिकद्विकवैक्रियद्विकतैजसकार्मणहुंडसेवार्तवर्णादिचतुष्कागु[रु]लघूपघातपराघातोच्छ्वासा-तपोद्योताप्रशस्तविहायोगतिस्थावरत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकाऽस्थिराऽशुभदुर्भगदुस्वरानादेयाऽयशःकीर्तिनि-र्माणनीचैर्गोत्राणां ४३ विंशतिः सा०। पुंवेदहास्यरतिदेवद्विकतुल्यवज्रर्षभनाराचशुभखगतिस्थिर-शुभसुभगसुस्वरादेययशःकीर्त्युच्चैर्गोत्राणां १५ दशसाग०। न्यग्रोधऋषभनाराचयोर्द्वादशसा०। सादिनाराचयोश्चतुर्दशसा०। कुब्जार्धनाराचयोः षोडशसा०। वामनकीलिकाद्वित्रिचतुर्जातिसूक्ष्मा-ऽपर्याप्तसाधारणानामष्टादशसा०। सर्वत्रैकसागरकोटाकोट्यामेकं वर्षशतमबाधा। द्वाभ्यां द्वे इत्यादि। आहारकद्विकतीर्थकरयोः सागरान्तःकोटाकोटिस्थितिः। अन्तर्मुहूर्तमबाधा। अबाधाकालादनन्तरं कर्मणामुदयः किन्तु यद्युदयन्ति तदा। ([अबा]धानन्तरमेव बद्धस्पृष्टनिधत्ताधिकारणात्।) नारकदेवा-

युषोस्त्रयस्त्रिंशत् सागराणि । तिर्यग्[न]रायुषोस्त्रीणिपल्योपमानि । जघन्यस्थितिस्तु वृत्तितो ज्ञेया । स्थितेः साद्यादीनाह–

मूलठिईण[अ]जहन्नो सत्तण्हं साइयाइउ बन्धो ।
सेसतिगे दुविगप्पो आउचउक्के वि दुविगप्पो ॥ ५९ ॥

जघन्याजघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टाः ४ स्थितिबन्धाः । तत्रायुर्वर्जसप्तकर्मणां याः स्थितयस्तासां योऽजघन्यो बन्धः स सादिरनादिरध्रुवोध्रुवश्च भवति । कथं ? मोहस्य क्षपकानिवृत्तौ चरमस्थितिबन्धे जघन्यः शेषषट्कस्य सूक्ष्मक्षपकचरमस्थितिबन्धे जघन्योऽतोऽन्यः सर्वोऽप्युपशमश्रेणावप्यजघन्यः । उपशमकोऽपि क्षपकात् द्विगुणबन्धक इत्यजघन्यः । ततः उपशान्तावस्थायामजघन्यस्याबन्धको भूत्वा निपत्य पुनः कर्मसप्तकस्याजघन्यं बध्नतः सादिः । उपशान्तावस्थामप्राप्तानामनादिः । अभव्यभव्ययोध्रुवाध्रुवौ, शेषत्रिकं जघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टरूपं । तत्र सादिरध्रुवश्च । जघन्योऽजघन्यादवतीर्य तत्प्रथमतया तं बध्नतः सादि । क्षीणावस्थायां न भवतीत्यध्रुवः । उत्कृष्टस्त्रिंशत्सागरकोटाकोटयः संक्लिष्टमिथ्यादृष्टिसंज्ञिनि लभ्यते । सर्वकेन्द्रियाद्यनुत्कृष्टबन्धादवतीर्य कदाचिद् बध्यत इति सादिः । अन्तर्मुहूर्तादनुत्कृष्टं बध्नतोऽध्रुवः । उत्कृष्टाद् बध्यत इत्यनुत्कृष्टोऽपि सादिः । अन्तर्मुहूर्तादनन्तोत्सर्पिण्यवसर्पिण्यन्ते उत्कृष्टं बध्नतोऽध्रुवः ।

'आउ' त्ति आयुर्बन्धमाश्रित्य पदचतुष्कं जघन्याजघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टरूपं तत्र सादिरध्रुवश्च । आयुषो द्वित्रिभागादौ बध्यत इति सादिरन्तर्मुहूर्तादुपरमत इत्यध्रुवः । उत्तराणामाह–

अट्ठारसपयडीणं अजहन्नो बन्धु चउविगप्पो उ ।
साइयअद्धुवबन्धो सेसतिगे होइ बोद्धव्वो ॥ ६० ॥

ज्ञानाव० ५ दर्शन० ४ संज्वलन० ४ अन्तराय ५=अष्टादशानामजघन्यःसाद्यादिश्चतुर्धापि । तत्रोपशमश्रेणावजघन्यच्छेदे पुनरजघन्यं बध्नतः सादिः । श्रेणीमप्राप्तस्यानादिः, ध्रुवाध्रुवौ प्राग्वत् । शेषत्रिके जघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टरूपे सादिरध्रुवश्चासामेव । तत्र संज्वलनचतुष्कस्य क्षपकानिवृत्तौ स्वस्वच्छेदेऽर्ध्व न भवतीत्यध्रुवः । उत्कृष्टानुत्कृष्टयोरप्यारोहावतारे कुर्वतां साद्यध्रुवौ ।

उक्कोसअणुक्कोसो जहन्नअजहन्नओ य ठिइबन्धो ।
सायइअदुधुवबन्धो सेसाणं होइ पयडीणं ॥ ६१॥

उक्ताष्टादशभ्यः शेषप्रकृतीनामुत्कृष्टोऽनुत्कृष्टो जघन्याऽजघन्यश्च स्थितिबन्धः सादिरध्रुवश्च भवति । कथं ? निद्रा ५ मिथ्यात्व १ आद्यकषाय १२ भयजुगुप्सातैजसकार्मणवर्णादि४अगुरुलघूपघातनिर्माणानां २९ शुद्धबादरपर्याप्तैकेन्द्रियो जघन्यं बन्धं करोति । ततोऽन्तर्मुहूर्तात्संक्लिश्याऽजघन्यं ततस्तत्रैव भवे भवान्तरे वा शुद्धितो जघन्यमेव परावृत्तेर्द्वावप्येतौ साद्यध्रुवौ । उत्कृष्टं त्वेतासां मिथ्यादृक्संक्लिष्टसंज्ञी करोति । मुहूर्तात् त्वनुत्कृष्टं [पुनः] कदाचिदुत्कृष्टमिति परावृत्तेः साद्यध्रुवौ । शेषाध्रुवाणां ७३ जघन्यादिबन्धोऽध्रुवत्वादेव सादिरध्रुवश्च । शुभाशुभत्वमाह—

सव्वासिंपि ठिईओ सुभासुभाणं पि होन्ति [अ] सुभाओ ।
माणुसतिरिक्खदेवाउगं च मोत्तूण सेसाणं ॥ ६२ ॥

सर्वासां शुभानामशुभानां च स्थितयोऽशुभा एव । यत स्थितीनां कारणं संक्लेशः कषायोदय इत्यर्थः, 'ठिइ अणुभागं कसायओ कुणइ' त्ति वचनात् । नन्वनुभागोऽप्यशुभो स्यात् । नैवं कषायवृद्धावशुभानां वर्धते शुभानां हीयते । मन्दत्वे तु शुभानां वर्धते, अशुभानां हीयते । परं नृतिर्यग्देवायुषां स्थिति मुक्त्वा । एषां स्थितिवृद्धौ रसोऽपि वर्धत इति । प्रत्ययमाह—

सव्वठिईणं उक्कोसगो उ उक्कोससंकिलेसेण ।
विवरोए [उ] जहन्नो आउगति[ग]वज्जसेसाण ॥ ६३ ॥

सर्वमूलोत्तरकर्मस्थितीनामुत्कृष्टस्थितिबन्ध उत्कृष्टसंक्लेशेनैव भवति । विपरीते मन्दसंक्लेशे तु जघन्यः नृतिर्यग्देवायुस्त्रिकवर्जशेषाणां ज्ञेयः । त्रिकस्य तु स्थितिवृद्धौ रसो वर्धते । स्वामित्वमाह—

सव्वोकोसठिईणं मिच्छद्दिट्ठी उ बन्धओ भणिओ ।
आहारगतित्थयरं देवाउ[यं] वावि मोत्तूण ॥ ६४ ॥

सर्वमूलोत्तरप्रकृत्युत्कृष्टस्थितेः पर्याप्तसंक्लिष्टमिथ्यादृष्टिर्बन्धकः । प्रायेण यावता नृतिर्यगायुषी उत्कृष्टे विशुद्ध एव बध्नाति । सासादनश्च तेशुद्धोऽप्युत्कृष्टे न बध्नाति गुणपाताभिमुखत्वेन । आहारकद्विकं तीर्थंकरमुत्कृष्टं देवायुष्कं च मुक्त्वा, सम्यक्त्वसंयमप्रत्ययत्वात्तेषां । क एतान्यर्जयति—

देवाउयं पमत्तो आहारगमप्पमत्तविरओ य ।
तित्थयरं च मणुस्सो अविरयसम्मो समज्जेइ ॥ ६५ ॥

पूर्वकोटचायुः प्रमत्तयतिरप्रमत्तत्वाभिमुखस्त्रिभागाद्यसमये उत्कृष्टं त्रिभागाधिकत्रयस्त्रिंशत्सागररूपं देवायुर्बध्नाति । शुभेयं स्थितिरित्यप्रमत्तत्वाभिमुखत्वं । आहारकद्विकं त्वप्रमत्तः प्रमत्तत्वोन्मुख उत्कृष्टं करोति स्थितेरशुभत्वात् । तीर्थंकरं त्वविरतसम्यग्मनुष्यः पूर्वं नरके बद्धायुष्को मिथ्यात्वं यत्र समये यास्यति ततोऽर्वाक्समये बध्नात्युत्कृष्टम् , तीर्थंकरनाम्नो ह्यविरतादयो निवृत्त्यन्ता बन्धकाः, किन्तूत्कृष्टा स्थितिः संक्लेशोद्भवाऽतोऽविरतोपादानं. तिर्यञ्चोऽस्य पूर्वप्रतिपन्नाः प्रतिपद्यमानकाश्च भवप्रत्ययान्नेति मनुष्यग्रहणं । क्षायिकस्तु शुद्धत्वात् नोत्कृष्टबन्धकः श्रेणिकवत् ।

पन्नरसण्हं ठिइमुक्कोसं बंधंति मणुयतेरिच्छा ।
छण्हं सुरनेरइआ ईसाणंता सुरा तिण्हं ॥ ६६ ॥

अदेवमायुस्त्रयं, देवद्विकं, नरकद्विकं, द्वि-त्रि-चतुर्जातयो, वैक्रियद्विकं, सूक्ष्मं, अपर्याप्तं, साधारणं=१५ आसामुत्कृष्टां स्थितिं तिर्यङ्मनुष्या एव मिथ्यादृष्टयो बध्नन्ति । अत्यन्तसंक्लिष्टः शुद्धो वायुर्बन्धं न करोति । 'छण्हं' ति तिर्यग्द्विक-औदारिकद्विक-सेवार्तोद्योतानामुत्कृष्टस्थितिबन्धकाः सुरा नारकाश्च । सामान्योक्तावपि सेवार्तौदारिकाङ्गोपाङ्गयोरीशानोपरितना एव द्रष्टव्याः, अधस्तना हि अष्टादशकोटाकोटिकां मध्य[मा]नामेव बध्नन्ति । उत्कृष्टां त्वेकेन्द्रिययोग्यामेव, तेषु तु संहननाङ्गोपाङ्गयोरभाव एव । 'ईसाण' त्ति एकेन्द्रियातपस्थावराणामीशानान्ताः सुरा उत्कृष्टस्थितिकर्तारः उपरितना नैतेषूत्पद्यन्ते ।

चतुर्गतिकाः का उत्कृष्टा बध्नन्तीत्याह—

सेसाणं चउगइया ठिईमुक्कोसं करंति पयडीणं ।
उक्कोससंकिलेसेण ईसिमहमज्झिमेणावि ॥ ६७ ॥

उक्तचतुर्विंशतिशेषद्विनवतेश्चतुर्गतिमिथ्यादृष्टय उत्कृष्टां स्थितिं बध्नन्ति । 'उक्कोस' त्ति संक्लेशोऽध्यवसायस्थानम्, तत्र जघन्यस्थितिबन्धाध्यवसायस्थानम्, तत्र जघन्यस्थितिबन्धाध्यवसाय स्थानान्यप्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणान्याहुः [तदनन्तरे स्थितिस्थाने तानि विशेषाधिकानि, एवमुत्त-रोत्तरस्थितिस्थाने विशेषाधिकक्रमेण तानि तावद्भवन्ति यावच्चरमस्थितिस्थानम् ।] तेषु प्रवर्धमानं ⁚⁚⁚⁚ न्यस्त पंक्तिस्थितं यदुत्कृष्टं चरममध्यवसायस्थान तदुत्कृष्टसंक्लेश उच्यते । शेषाणि चरमपंक्ति-⁚⁚⁚ स्थितानीषन्मध्यमान्युच्यन्ते । तैश्चरमपंक्तिवर्तिभिरुत्कृष्टस्थितिजनकैः सर्वैरपि उत्कृष्टास्थितिर्ज-न्यत इति भावः । जघन्यमाह—

आहारगतित्थयरं नियट्टिअनियट्टि पुरिससंजलणं ।
बंधइ सुहमसरागो सायजसुच्चावरणविग्घं ॥ ६८ ॥
छण्हमसन्नी कुणइ जहण्णं ठिइमाउगाणमन्नयरो ।
सेसाणं पज्जत्तो बायरएगिंदियविसुद्धो ॥ ६९ ॥

आहारकद्विकं तीर्थंकरं च निवृत्तिः क्षपकस्तद्बन्धस्य चरमे स्थितिबन्धे स्थितो जघन्यं बध्नाति । तद्बन्धकेष्वयमेव शुद्धः । नृतिर्यग्देवायुर्वर्जकर्मणां जघन्या स्थितिः विशुद्धया उक्ता । नृवेदसञ्ज्वलनानां ५ अनिवृत्तिक्षपको जघन्यां स्थितिं करोति । सातं यशःकीर्तिरुच्चैर्गोत्रं 'आवरण' ज्ञान० ५-दर्शन० ४-विघ्न० ५-सूक्ष्मश्चरमे स्थितिबन्धे जघन्यं करोति । नरकद्विक-देवद्विक-वैक्रियद्विक-षट्कस्य तिर्यगसंज्ञि-पर्याप्तो जघन्यां स्थितिं करोति । [आयु] श्चतुष्कस्यान्यतरः संज्ञी असंज्ञी वा जघन्यां स्थितिं करोति । नारकदेवायुषोस्तिर्यङ्नराः, नृतिर्यगायुषोरेकेन्द्रियादयः । उक्तशेषाणामेकेन्द्रियाः बादरः पर्याप्तस्तद्बन्ध-केषु विशुद्धः पल्योपमासंख्येयभागहीनसागरद्विसप्तभागादिकां जघन्यां स्थितिं करोति ॥ स्थितिबन्धः ॥

अनुभागमाह-इह जन्तुः पृथक्सिद्धानामनन्तभागवर्तिभिरभव्येभ्योऽनन्तगुणैः परमाणुभिः-निष्पन्नान् कर्मस्कन्धान् प्रतिसमयं गृह्णाति । तत्र प्रतिपरमाणुकषायविशेषात्सर्वजीवानन्तगुणाननुभाग-स्याविभागपलिच्छेदान् करोति । तत्र समपरमाणुनामेका वर्गणा । रसांशेनाधिकानां द्वितीयेत्यादि । स च रसः शुभोऽशुभश्च द्विधाप्येक-द्वि-त्रि-चतुःस्थानिकः । यथा लि[नि]म्बादीनां सहज एकस्थानिकः । क्वाथेऽर्धावर्तो द्वि० । त्रिभागे ति० चतुर्भागे च० । सर्वेऽपि लवबिन्दुचुलुकादिमन्दमन्दतरादिभेदादने-कधा, मिश्रो अप्यनेकधा । रसस्य साद्यादीन्याह-

घाईणं अजहन्नो (अ)णुक्कोसो वेयणीयनामाणं ।
अजहन्न अणुक्कोसो गोए अणुभागबन्धम्मि ॥ ७० ॥
साइअणाई धुवअद्धुवा य बन्धो उ मूलपयडीणं ।
सेसम्मि उ दुविगप्पो आउचउक्के वि दुविगप्पो ॥ ७१ ॥

घातिकर्मणा[म]जघन्योरसः साद्यादिश्चतुर्धापि भवति । द्वितीयगाथायां सम्बन्धः । अशुभानां जघन्यं शुभानामु[त्कृष्टं] यः कश्चित्तद्बन्धकेषु विशुद्धः स एव जनयति । तत्र ज्ञानदर्शनावरणा-न्तरायकर्मणामशुभत्वात् क्षपकसूक्ष्मोऽन्त्यसमये जघन्यं रसं मोहस्य त्वनिवृत्तिर्जघन्यं रसं करोति । तत उपशान्तेऽजघन्यस्याबन्धको भूत्वा निपत्य पुनर्बध्नतः सादिः उपशान्तमप्राप्तानामनादिः, ध्रुवा-ध्रुवौ प्राग्वत् । द्वितीयगाथार्धे 'सेसम्मि उ' त्ति शेषे जघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टत्रिकरसे द्विविकल्पः, साद्य-ध्रुवरूपो घातिचतुष्कस्य । तत्र पूर्ववद्यावद् जघन्यं लभते तदा सादिः । क्षीणे नासादित्यध्रुवः । उत्कृष्टरसं तु प्रकृतकर्मणामशुद्धत्वात् क्लिष्टो मिथ्यादृष्टिः पर्याप्तासंज्ञी एकं द्वौ वा समयौ

यावद्बध्नाति । स चानुत्कृष्टाद् बध्यत इति सादिः । जघन्यतः समयादुत्कृष्टतो द्विसमयावनुत्कृष्टं गतस्याध्रुवः । अनुत्कृष्टस्तु सादिर्भवति पुनर्जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तेन उत्कृष्टतः अनन्तानन्तोत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिरुत्कृष्टं गतस्याध्रुवः । अनुत्कृष्टरसो वेदनीयनाम्नोश्चतुर्धापि । तथाहि–एतदन्तर्गते सातयशःकीर्ती आश्रित्योत्कृष्टरसः क्षपकसूक्ष्मान्त्यसमये प्राप्यते । ततोऽन्य उपशमश्रेणावप्यनुत्कृष्टः । तत्रोपशान्तेऽबन्धको भूत्वा निपत्यानुत्कृष्टं बध्नतः सादिः । तमप्राप्तानामनादिः । ध्रुवाध्रुवौ प्राग्वत् । शेषत्रिके द्विविकल्पोऽत्रापि तत्रोत्कृष्ट सूक्ष्मे बध्नातीति सादिः । क्षीणे यातीत्यध्रुवः । जघन्यरसं त्वनयोः सम्यग्दृग् मिथ्यादृग वा बध्नाति मध्यमपरिणामः, अयं चाजघन्यात् भवतीति सादिः । पुनर्जघन्यतः समयादुत्कृष्टतः चतुस्समयावजघन्यं बध्नतोऽध्रुवः । अजघन्यस्तु सा[सा]दिः । तत्रैव भवे भवान्तरे वा जघन्यं बध्नतोऽध्रुवः । 'अजहन्न'त्ति गोत्रानुभागबन्धोऽजघन्योऽनुत्कृष्टश्च चतुर्धापि । तत्रोत्कृष्टानुत्कृष्टौ वेदनीयनाम्नोरिव चिन्त्यौ । जघन्यं तु सप्तमपृथ्विनारकः करणत्रयादनन्तरमन्तःकरणस्थितिद्वयं करोति ॰ तत्राधस्तनीं वेदयन्यस्मादनन्तरं समये सम्यक्त्वं प्राप्स्यति तत्रान्त्यसमये वर्तमानो नीचैर्गोत्रस्य जघन्यं रसं बध्नाति । न शेषा इति सादिः । तस्मादनन्तरमजघन्यरसमुच्चैर्गोत्रस्य बध्नातीत्यध्रुवः । अजघन्यस्तु सादिः । तदप्राप्तानामनादिः । ध्रुवाध्रुवौ प्राग्वत् । एवं जघन्यो द्विधा अजघन्यश्चतुर्धा । 'आउ' त्ति चतुर्गत्यायुर्जघन्याजघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टरसचतुष्के सादिरध्रुवश्च द्विधा । तत्र त्रिभागादौ सादिश्चतुर्धापि अन्तर्मुहूर्ताद्यातीत्यध्रुवः । उत्तराणामाह—

अट्ठण्हमणुक्कोसो तेयालाणमजहन्नगो बंधो ।
णेओ हि चउविगप्पो सेसतिगे होइ दुविगप्पो ॥ ७२ ॥

तैजसकार्मणप्रशस्तवर्णगन्धरसस्पर्शअगुरुलघुनिर्माणानां ८ अनुत्कृष्टश्चतुर्धापि । तथा ह्यासामुत्कृष्टरसं क्षपकनिवृत्तिर्देवगतियोग्यानां त्रिंशतः प्रकृतीनां बन्धच्छेदसमये करोति । ततोऽन्यस्तूपशमश्रेणावप्यनुत्कृष्टः । स चोपशान्तेऽबन्धको भूत्वा पुनर्लाभे सादिः । तत्राप्राप्तानामनादिः । शेषं प्राग्वत् शेषत्रिके द्विविकल्पः । तत्र पूर्वोक्त निवृत्तावुत्कृष्टः सादिः । समयाद्यातीत्यध्रुवः । जघन्यरसं त्वासां शुभत्वात् क्लिष्टमिथ्यादृक्संज्ञी बध्नाति । पुनर्जघन्यतः समयादुत्कृष्टतो द्विसमयावजघन्यं पुनर्जघन्यमेवमुभयोः साद्यध्रुवता । 'तेयाल' त्ति ज्ञानाव० ५ दर्शन० ९-मिथ्यात्व १-कषाय १६-भयजुगुप्सा २-अप्रशस्तवर्णादि ४ उपघातान्तरायाः५ णां ४३ अजघन्यश्चतुर्धाऽपि । तत्र ज्ञान० ५-दर्शन० ४-अन्तराया ५ णाम १४शुभत्वात् क्षपकः सूक्ष्मोऽन्त्यसमये जघन्यरसं बध्नाति तस्मादुपशान्ते[ऽबद्ध्वा पुनः]अजघन्यं बध्नतः सादिः । उपशान्तमप्राप्तानामनादिः । शेषं प्राग्वत् । संज्वलनानां ४ क्षपकानिवृत्तिर्यथास्वं बन्धच्छेदे एकैकं समयं जघन्यं रसं बध्नाति ।ततोऽन्योऽजघन्यः । तस्योपशान्तेऽबन्धःपुनर्बध्नतः सादिः । तमप्राप्तानामित्यादि तथैव । निद्राप्रचला-शुभवर्णादि ४-उपघातभयजुगुप्सानां क्षपकनिवृत्तिर्बन्ध(न)छेदे एकैकं समयं जघन्यरसं बध्नाति । ततोऽन्योऽजघन्यः । तमुपशान्तेऽबद्ध्वा पुनर्बन्धे सादिः । तमप्राप्तानामित्यादि तथैव । प्रत्याख्यानानां ४ देशविरतोऽन्त्यसमये जघन्यरसं बध्नाति । अप्रत्याख्यानानां ४ अविरतः क्षायिकत्वं संयमं च युगपत् प्रतिपित्सुर्जघन्यं बध्नाति । स्त्यानर्द्धित्रिकमिथ्यात्वानन्तानुबन्धिनः ८ मिथ्यादृक् सम्यक्त्वं संयमं चेप्सुर्जघन्यरसं करोति । सर्वत्राऽन्योऽजघन्यः । एते निपत्य पुनर्बध्नतः साद्यादयो वाच्याः । शेषत्रिके जघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टरूपे द्विविकल्पः । (जघन्यः सूक्ष्मे सादिः क्षीणे यातीत्यध्रुवः)। उत्कृष्टस्य मिथ्यादृक्बन्धकः सादिः । पुनरनुत्कृष्टेऽध्रुवः । एवमनुत्कृष्टोऽपि ।

अध्रुवबन्धिनीनामाह—

उक्कोसमणुक्कोसो जहन्नमजहन्नगो वि अणुभागो ।
साई अद्धुवबन्धो पयडीणं होइ सेसाणं ॥ ७३ ॥

शेषाणामध्रुवाणां चतुर्धाऽपि साद्यध्रुवः, अध्रुवबन्धित्वात् । प्रत्ययानाह—

सुहपयडीण विसोहीइ तिव्वमसुहाण संकिलेसेण ।
विवरीए उ जहन्नो अणुभागो सव्वपयडीणं ॥ ७४ ॥

वक्ष्यमाणशुभप्रकृतीनां विशुद्धया तीव्रं रसं बध्नाति, अशुभानां संक्लेशेन । वैपरित्ये जघन्यः शुभानां संक्लेशादशुभानां विशुद्धया भवति । शुभाशुभा आह—

बायालं पि पसत्था विसोहि गुणउक्कडस्स तिव्वाओ ।
बासीइमप्पसत्था मिच्छुक्कडसंकिलिट्ठस्स ॥ ७५ ॥

सातं, तिर्यग्नृदेवायूंषि, नृद्विकं, देवद्विकं, पञ्चेन्द्रियजातिः, पञ्चशरीराणि, तुल्यं वज्रर्षभनाराचं, अङ्गोपाङ्ग ३, शुभवर्णादि ४, अगुरुलघु पराघात उच्छ्वासं, आतपं, उद्योतं, शुभखगतिस्त्रसादिदशकं, निर्माणं, तीर्थंकरमुच्चैर्गोत्रं, ४२ एता एव प्रशस्ताः, विशुद्धिगुणोत्कटस्य तीव्ररसा भवन्ति । ज्ञानाव० ५, दर्शन० ९, असातं, मिश्रसम्यक्त्ववर्जमोहषड्विंशतिः, नारकायुः, नरकद्विकं, तिर्यग्द्विकं, एक-द्वि-त्रि-चतुर्जातयः, आद्यवर्जसंस्थानसंहनन १०, अशुभवर्णादि ४, उपघातं, अशुभखगतिः स्थावरादिदशकं, नीच्चैर्गोत्रं, अन्तराय ५=८२ एता अप्रशस्ता मिथ्यात्वोत्कटसंक्लिष्टस्य तीव्ररसा भवन्ति ।

卐 [आयवनामुज्जोयं माणुसतिरियाउगं पसत्थासु ।
मिच्छस्स हुंति तिव्वा सम्मद्दिट्ठिस्स सेसाओ ॥ ७६ ॥

आतपोद्योतमनुष्यतिर्यगायुःप्रकृतीनां तीव्ररसबन्धका मिथ्यादृष्टयो भवन्ति] । यत आतपोद्योततिर्यगायूंषि सम्यक्दृष्टिर्न बध्नात्येव । देवनारकास्तु सम्यग्दृशो मध्यमं नरायुर्बध्नन्ति न युगलायुरिति । शेषाः ३८ पुण्यप्रकृतयः सम्यग्दृष्टेरेव तीव्ररसा भवन्ति ।

देवाउमप्पमत्तो तीव्वं खवगा करंति बत्तीसं ।
बंधंति तिरियमणुया एक्कारसमिच्छभावेण ॥ ७७ ॥

देवायुस्तीव्र[र]समप्रमत्तयतिर्बध्नाति तथा सात-देवद्विक-पञ्चेन्द्रियजाति-वैक्रियद्विकआहारकद्विक-तैजसकार्मण तुल्य-शुभवर्णादि ४-अगुरुलघु-पराघातोच्छ्वास-शुभखगति-त्रसादि १०-निर्माण तीर्थकरोच्चैर्गोत्राणां३२ क्षपको सूक्ष्मनिवृत्ती तीव्र (रसं) रसं कुरुतः । निवृत्तिर्मोहक्षपणयोगतया क्षपकः । तत्र सातयशःकीर्त्युच्चैर्गोत्राणां ३ सूक्ष्मोन्त्यसमये तीव्ररसं करोति । शेषाणां २९ निवृत्तिर्देवयोग्यबन्धच्छेदसमये तीव्र रसंकरोति । 'बंधंति' त्ति नारकतिर्यङ्नरायूंषि, नरकद्विकं, विकलत्रिकं; सूक्ष्मं, अपर्याप्तं, साधारणं ११ एता मिथ्यादृशस्तिर्यङ्मनुष्याः तीव्ररसा बध्नन्ति । देवानारकाश्च नव भवप्रत्ययात्र बध्नन्ति । तिर्यङ्नरायुषी उत्कृष्टयुगलेषु तेष्वपि ते न उत्पद्यन्ते ।

पञ्चसुरसम्मदिट्ठी सुरमिच्छो तिन्नि जयइ पयडीओ ।
उज्जोयं तमतमगा सुरनेरइआ भवे तिण्हं ॥ ७८ ॥

卐 कोष्ठकद्वयान्तर्गता गाथायुक्तपाठ. ह. लि. प्रतौ नास्ति, तथाप्युपयोगित्वाल्लिखितः ।

नृद्विकौदारिकद्विकाद्यसंहननानां ५ सुरः सम्यग्दृगुत्कृष्टरसबन्धक एकं द्वौ वा समयौ, नारकाणां वेदनया तीर्थाद्यदर्शनान्न शुद्धिः, तिर्यङ्नराः शुद्धाः सुरेषु यान्ति । एकेन्द्रियजात्यातपस्थावरत्रयस्य सुरो मिथ्यादृगीशानान्त उत्कृष्टरसं बध्नाति । द्वयं संकिलष्ट आतपं तु शुभत्वात् तद्योग्यशुद्धः । अतिशुद्धो नरः स्यात् । उद्योतं तमस्तमकाः सप्तमपृथ्विनारकास्तीव्रं उपशमिकोन्मुखाः कुर्वन्ति । सुराः सनत्कुमारादयो नारका वा संक्लिष्टाः स्युस्तिर्यग्द्वयसेवार्तत्रयस्य तीव्ररसकर्तारः । शुभाः ४२ अशुभाः १४ उक्ताः । अष्टषष्टिमाह--

सेसाणं चउगइगा तिव्वणुभागं कुणंति पयडीणं ।
मिच्छद्दिट्ठी नियमा तिव्वकसाउक्कडा जीवा ॥ ७९ ॥

शेषाणां ज्ञानाव० ५ दर्शन ९-असात-मिथ्यात्व-कषाय १६-नोकषाय ९-अनाद्यसंस्थान ५ अनाद्यन्तसंहनन ४-अशुभ वर्णादि४-उपघाताऽशुभखगत्यस्थिराशुभदुर्भगदुःस्वरानादेयायशःकीर्तिनीचैर्गोत्रान्तरायाणां ६८ अशुभानां मिथ्यादृष्टयस्तीव्रकषायोत्कटास्तीव्रं रसं कुर्वन्ति । तत्र हास्यरतिस्त्रीपुंवेदानाद्यन्तसंस्थानसंहननानां १२ तत्प्रायोग्यक्लिष्टाः. शेषाणामुत्कृष्टक्लिष्टाः कुर्वन्ति । उत्कृष्टसंक्लेशे अप्रेतनयुगलं नपुंसकत्वं च संहननसंस्थाने सेवार्तहुंडे च स्युः । जघन्यमाह-

चोद्दस सरागचरिमो पंचगमनियट्टिनियट्टि एक्कारं ।
सोलसमंदणुभागं संजमगुणपट्ठिओ जयइ ॥ ८० ॥

ज्ञानाव० ५-दर्शन ४ अन्तरायाणां ५=१४ सूक्ष्मोऽन्त्यसमये जघन्यरसं बध्नाति । पुंवेद १-संज्वलन ४ पञ्चकमात्मीयात्मीयबन्धच्छेदेऽनिवृत्तिर्जघन्यं रसं करोति । निवृत्तिर्निद्राप्रचला-ऽशुभवर्णादि ४ उपघात हास्यरति-भयजुगुप्सानां ११ आत्मीयात्मीयबन्धच्छेदे जघन्यं रसं बध्नाति । स्त्यानर्द्धित्रिक-मिथ्यात्व संज्वलनवर्जकषाय १२=षोडशानां मन्दरसं संयमाभिमुखो मिथ्यादृगविरतो देशविरतो वा करोति । तत्र स्त्यानर्द्धित्रिकमिथ्यात्वाद्यकषायाणां ८ अन्त्यसमये मिथ्यादृष्टिः । अप्रत्याख्यानानामविरत, प्रत्याख्यानानां देशविरतो मन्दं रसं करोति ।

आहारमप्पमत्तो पमत्तसुद्धो उ अरइसोगाणं ।
सोलस माणुसतिरिया सुरनारयतमतमा तिन्नि ॥ ८१ ॥

आहारकद्विकमप्रमत्तः प्रमत्तत्वोन्मुखो जघन्यरसं करोति । अरतिशोकयोः प्रमत्तोऽप्रमत्तत्वोन्मुखः शुद्धो जघन्यं रसं करोति । आयुश्चतुष्क-नरकद्विक-देवद्विक-वैक्रियद्विक-विकलत्रिक-सूक्ष्मापर्याप्त-साधारणानां १६ नरास्तिर्यञ्चश्च जघन्यरसं कुर्वन्ति । तिर्यङ्नरायुर्वर्जाश्चतुर्दश देवनारका भवप्रत्ययादेव न बध्नन्ति । तिर्यङ्नरायुषी अपि मन्दरसे न बध्नन्ति । सुरनारकास्तिस्रः तमतमकाश्च तिस्रो जघन्यरसाः कुर्वन्ति । तत्रौदारिकद्विकोद्योतास्तिस्रः सुरनारकाणामुत्कृष्टक्लेशास्तिर्यग्योग्या बध्नन्तो जघन्यरसा कुर्वन्ति । तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रास्तिस्रस्तमस्तमस्काः, सम्यक्त्वोन्मुखा इति ।

एगिंदियथावरगं मन्दणुभागं करंति तेगइआ ।
परिअत्तमाणमज्झिमपरिणामा नेरइयवज्जा ॥ ८२ ॥

नारकवर्जा गतित्रयजीवाः परावर्तमानमध्यमपरिणामा एकेन्द्रियस्थावरयोर्जघन्यरसं बध्नन्ति। तत्क्लिष्टाः शुद्धा वा। तदेवैकेन्द्रियस्थावरत्वं तदेवपञ्चेन्द्रिय[त्रस]त्वं तदेवैकेन्द्रियस्थावरत्वमिति परावृत्तिः। नारकाः स्वभावात् तद्द्वयं बध्नन्ति ।

आसोहम्मायावं अविरयमणुओ उ जयइ तित्थयरं ।
चउगइउक्कडमिच्छो पणरस दुवे विसोहीए ॥८३॥

समश्रेणित्वादाईशानान्ता भवनपत्यादयः आतपं क्लिष्टा मन्दरसं बध्नन्ति । अविरतसम्यग्[दृग्]-मनुष्यो बद्धनरकायुष्को मिथ्यात्वोन्मुखस्तीर्थकरं मन्दरसं करोति । तथा चतुर्गतिका अपि उत्कृष्ट(मिथ्या-त्व)संक्लेशाः पञ्चेन्द्रियतैजसकार्मणप्रशस्तवर्णादि ४ अगुरुलघुपराघातोच्छ्वासत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येक-निर्माणानां १५ जघन्यं रसं कुर्वन्ति शुभत्वात् । परं तिर्यङ्नरा नरकयोग्याः, नारकाः सनत्कुमाराद्यश्च पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योग्या एता मन्दाः कुर्वन्ति । ईशानान्तास्तु पञ्चेन्द्रियत्रसवर्जा १३ एकेन्द्रिययोग्याः । पञ्चेन्द्रियत्रसे तु शुद्धा एव (२८)' १८] स्त्रीनपुंसके द्वे चतुर्गतिका अपि तद्योग्यशुद्धा मन्दरसे कुर्वन्ति ।

सम्मद्दिट्ठी मिच्छो व अट्ठ परियत्तमज्झिमो जयइ ।
परियत्तमाणमज्झिममिच्छद्दिट्ठी उ तेवीसं ॥८४॥

सम्यग्दृग्-मिथ्यादृग् वा सातासातस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तीः परावर्तमानमध्यम-परिणामो मंदरसाः करोति । नृद्विकसंस्थानषट्कसंहननषट्कखगतिद्विकसुभगदुर्भगसुस्वरदुःस्व-रादेयानादेयोच्चैर्गोत्र(रा)त्रयोविंशतिं परावृत्य परावृत्य बध्नतश्चतुर्गतिका अपि मिथ्यादृष्टयो मध्यम-परिणामा मंदरसां कुर्वन्ति । सम्यग्दृशामेतासां परावृत्तिर्नास्ति । तथाहि-तिर्यङ्नराः सम्यग्दृशो देवद्विकमेव बध्नन्ति, न नृद्विकादि । देवास्तु नृद्विकमेव न तिर्यग्द्विकादि, संस्थानाद्यपि शुभमेव नाशुभमिति न परावृत्तिः । सर्व१देश२घातिनीः प्राह--

केवलनाणावरणं, दंसणछक्कं च मोहबारसगं ।
ता सव्वघाइसन्ना, हवंति मिच्छत्तवीसइमं ॥८५॥

केवलज्ञानावरणं, निद्रापञ्चक-केवलदर्शनरूपषट्कं, मोहे संज्वलनवर्जकषाय १२ मिथ्यात्वं एता २० सर्वघातिन्यः, स्वाऽऽवार्यं गुणं सर्वमपि घ्नन्ति, पर केव[ल]स्यांशः सर्वजीवेष्वनावृत एव, मेघोन्नतौ चन्द्रसूर्ययोः प्रभेव ।

नाणावरणचउक्कं, दंसणतिगअंतराइयं पंच ।
पणुवीसदेसघाई, संजलणा नोकसाया य ॥८६॥

ज्ञानावरणचतुष्कं मति श्रुत-अवधि-मनःपर्यायरूपं, दर्शनत्रिकं चक्षुरचक्षुरवधिरूपं, अन्तराय-पंचकं, पंचविंशतिर्देशघातिन्यः, संज्वलनाः ४ नोकषायाश्च ९ = २५ 'सव्वे विय अइयारा संजल'...... ।

अवसेसा पयडीओ, अघाइया घाइयाइपलिभागा ।
ता एव पुन्नपावा, सेसा पावा मुणेयव्वा ॥८७॥

शेषाः ७५ वेदनीयायुर्नामगोत्रप्रकृतयो ज्ञानदर्शनचारित्रादिगुणानां मध्ये न किञ्चिद् घातयन्ती-त्यघातिन्यः परं घातिनीभिः सह वेद्यमानाः पलिभागास्तत्तुल्या दृश्यन्ते, यथाऽचौरोऽपि चौरैर्मिलितो चोर इव दृश्यते । एता एव काश्चित्साताद्याः ४२ पुण्यप्रकृतयः, काश्चिदसाताद्याः ३३ पापाः, शेषा सर्वदेशघातिन्यः पापा एव ज्ञेयाः । रसस्थानान्याह--

आवरणदेसघायंतरायसंजलणपुरिससत्तरसं ।
चउविहभावपरिणया, तिविहपरिणया भवे सेसा ॥८८॥

आवरणेषु देसघातीनि ज्ञान० ४-दर्शन-३ अन्तराय ५-संज्वलन ४-नृवेद=१७ एताश्चतुर्विधभावे परिणता एक-द्वि-त्रि-चतुःस्थानिकरूपेण। तत्रानिवृत्तेः संख्येयभागेष्वासामशुभत्वादेकस्थानिक एव रसो बध्यते। अत्रान्तरे केवलद्विकं बध्यते परं सर्वघातित्वाद्द्विस्थानिकरसोऽस्तस्याऽत्राऽग्रहणम्। शेषस्तु द्विस्थानिकादिको रसः प्रस्तुतप्रकृतीनां मिथ्यादृष्ट्यादिषु लभ्यते। तत्र गिरिराजिसमकोपश्चतुस्थानिकम्, पृथ्वीराजिसमस्त्रिस्थानिकम्, रेणुजलराजिसमो द्विस्थानिकमिति बध्नाति। द्वि-त्रि चतुःरूपत्रिविधरस-परिणता एतच्छेषाः शुभाशुभा वा। एकस्थानिकं त्वासां न संभवत्येव। यतोऽनिवृत्तेः संख्येयभागेष्वेवासौ बध्यते तत्र सप्तदश मुक्त्वा शेषाऽशुभप्रकृतयो न बध्यन्त एव।

अथ शुभानामेकस्थानिकः कस्मान्नेत्युच्यते, इहासंख्येयलोकाकाशप्रदेशमानानि सक्लेशस्थानानि विशुद्धिस्थानानि च। येष्वेव संक्लिष्टश्चटति तेष्वेव सोपानेष्विव विशुद्धोऽवरोहति। परं शुद्धिस्थाना-न्यधिकानि यतः क्षपको [ये]ष्वेवारोहति न तेष्ववरोहति क्लेशाभावात्। तैराधिक्यं एवं स्थितेऽति-शुद्धश्चतुस्थानिकं बध्नाति शुभानाम्। अतिक्लेशे बन्ध एव नागच्छन्ति शुभाः। या अपि नरकयोग्या वैक्रियतैजसकार्मणाद्याः शुभाः संक्लिष्टो बध्नाति तासामपि स्वभावाद् द्विस्थानिक एव रसः, इति न शुभानामेकस्थानिको रसः क्वापि। प्रत्ययमाह–

चउपच्चएगमिच्छत्तसोलस-दुपच्चया य पणतीसं ।
सेसा तिपच्चया खलु तित्थयराहारवज्जाओ ॥८९॥

एका सातरूपा प्रकृतिश्चतुःप्रत्यया मिथ्यात्वाऽविरतिकषाययोगैर्बध्यते। मिथ्यात्वप्रत्ययाः षोडश 'सोलसमिच्छत्तंता' इति वचनात्। द्विप्रत्ययाः पञ्चत्रिंशत् सासादनेऽविरते च यासां ३५ बन्धच्छेद उक्तस्तास्तत्र मिथ्यात्वेऽपि बध्यन्त इति मिथ्यात्व[अविरति] प्रत्ययाः, शेषं द्वयं गौणं। शेषाः त्रिप्रत्ययाः तीर्थंकरमाहारकं च त्यक्त्वा मिथ्यादृष्ट्यादिष्वविरतेषु सकषायेषु च सूक्ष्मान्तेषु बध्यन्त इति। उपशान्तादिषु योगसद्भावेप्यासां बन्धो नास्तीति स नोक्तः, सम्यक्त्वनिमित्तं तीर्थंकरं संयमेना-हारकमिति वर्जनम्। विपाकान् विभागेनाह–

पंच य छत्तिगछप्पंच दुण्णि पंच य हवन्ति अट्ठेव ।
सरिराई फासन्ता पयडीओ आणुपुव्वीए ॥९०॥
अगुरुलहु उवघायं परघाउज्जोयआयवनिमेणं ।
पत्तेयथिरसुभेयरणामाणि य पुग्गलविवागा ॥९१॥

शरीराद्याः स्पर्शान्ताः शरीरसंस्थानाङ्गोपाङ्गसंहननवर्णगन्धरसस्पर्शरूपा अष्टौ पिण्ड-प्रकृतयः। किं भवन्ति पुद्गलविपाका इति उत्तरगाथान्ते सम्बन्धः। आनुपूर्व्या पञ्चादिभेदाश्च। कथं? पञ्चशरीराणि षट्संस्थानानि त्रिण्यङ्गोपाङ्गानि षट्संहननानि पञ्चवर्णाः द्वौ गन्धौ पञ्चरसाः अष्टौ स्पर्शाः एताः पुद्गलेष्वेव विपच्यन्ते शरीरादिपुद्गलेष्वेवात्मीयां शक्तिं दर्शयन्तीत्यर्थः। कथं? शरीरनामोदयात् शरीरतया पुद्गला एव परिणमन्तीत्यादि वाच्यम्। तथाऽगुरुलघूपघातपराघातोद्योतातपनिर्माणानि, प्रत्ये-कादिष्वितरेण योगः, प्रत्येकसाधारणस्थिरास्थिरशुभाशुभाश्च पुद्गलविपाकाः ॥९०॥९१॥

आऊणि भवविवागा खेत्तविवागा उ आणुपुव्वीओ।
अवसेसा पयडीओ जीवविवागा मुणेयव्वा ।।९२।।

भवन्ति जन्तवोऽस्मिन्निति भवो, विग्रहगतेरारभ्य हृयः। तत्र भव एव विपाक-उदयो येषां तानि भवविपाकीनि चत्वार्यायूंषि प्राग्भवे बद्धानि आगामिभवे विपच्यन्त इति भावः। क्षे[त्र]माकाशं तत्रैव विपाक उदयो यासां ता क्षेत्रविपाका आनुपूर्व्यः ४ विग्रहगतावेवासां उदयः। अवशेषा ज्ञानावरणादिकाः जीव एव विपाकः स्वशक्त्याऽऽविर्भावरूपो यासां ताः जीवविपाका ज्ञेयाः। यतो जीव एव ज्ञान्यज्ञानी वा न पुनस्तनुपुद्गला इति सर्वासु। या अपि पुद्गलभवक्षेत्रविपाकास्ता अपि वस्तुतो जीवविपाका एव पारम्पर्येण न मुख्यतया। अनुभागः [उक्तः] ॥ ९२ ॥

प्रदेशबन्धमाह-तत्र चत्वार्य[रोऽ]नुयोगाः (१) कर्मप्रदेशादानविधिः, (२) भागप्ररूपणा, (३) साद्यादिप्र० (४) स्वामित्वप्र०।

एगपएसोगाढं सव्वपएसेहि कम्मुणो जोग्गं।
बंधइ जहुत्तहेउं साईयमणाइयं वावि ।।९३।।
पंचरस-पंचवण्णेहि परिणयं दुविहगंधचउफासं।
दवियमणंतपएसं सिद्धेहि अणंतगुणहीणं ।।९४।।

इह पुद्गलं द्रव्यं जीवो बध्नाति इति योगः। कथं? एकप्रदेशावगाढं-यत्रैव जीवस्याऽऽत्मप्रदेशास्तत्रैव यदवगाढं न त्वन्यतः। स च सर्वैरप्याऽऽत्मीयप्रदेशैर्बध्नाति। न त्वेकेन द्वयादिभिर्वा। यतः समस्तलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणा एकस्य जन्तोः प्रदेशा भवन्ति। मिथ्यात्वादिबन्धकारणोदये च ते सर्वे स्वस्वाकाशप्रदेशेभ्यो युगपदेव कर्मद्रव्यं गृह्णन्ति। परस्परं च सर्वेऽप्युपकुर्वन्ति परस्परं सम्बद्धत्वात्। कर्मणो योग्यं कर्मवर्गणान्तर्गतं 'यथोक्तहेतु' पूर्वोक्तसामान्यविशेषहेतुभिर्बध्नाति। बन्धच्छेदं कृत्वा प्रतिपत्य ता एव यो बध्नाति तस्य सादिः। अकृतच्छेदस्याऽनादिः ध्रुवाऽध्रुवौ प्राग्वद् अपिशब्दात्। तच्च द्रव्यं प्रतिस्कन्धं पंचवर्णोपेतं, पंचरसं द्विगन्धं चतुःस्पर्शं च गृह्णाति। तत्र मृदुलघू अवस्थितौ द्वौ तु स्निग्धोष्णौ स्निग्धशीतौ वा रूक्षोष्णौ रूक्षशीतौ वाऽविरुद्धौ भवतः, प्रज्ञप्तौ तु स्निग्धरूक्षशीतोष्णा उक्ताः। 'अनन्तप्रदेश' अनन्तपुद्गलं गृह्णाति, अभव्येभ्योऽनन्तगुणं, सिद्धेभ्योऽनन्तगुणहीनं कर्मस्कन्धमिति। स्कन्धा अपि प्रतिसमयमनन्ता गृह्णाति।

कर्मणो योग्यमयोग्य च द्रव्यं अस्ति तद् विभागदर्शनार्थं ग्रहणाऽग्रहणवर्गणाः प्ररूप्यन्ते। इह समस्तलोकाकाशप्रदेशेषु ये केवलैकाकिनः परमाणवः तत्समुदायः सजातीयत्वात् एकावर्गणा। इयं स्वभावाज्जीवानामग्रहे इत्यग्रहणवर्गणा। एवं द्वित्र्यादिस्कन्धसंख्यातासंख्यातानंतप्रदेशस्कन्धनिष्पन्ना अप्यग्रहे यावदनन्तानन्तैरेव परमाणुभिर्निष्पन्नानामेकोत्तरवृद्धिभाजां स्कन्धानां समुदायरूपा अनन्ता औदारिकाविवर्गणाः। स्थापना तासां। अनया दिशा ध्रुवादि लिख्येत-

४ ४ ४	७ ७ ७	१० १० १०	१३ १३ १३	१६ १६ १६	१९ १९ १९	२२ २२ २२	२५ २५ २५
३ ३ ३	६ ६ ६	९ ९ ९	१२ १२ १२	१५ १५ १५	१८ १८ १८	२१ २१ २१	२४ २४ २४
२ २ २	५ ५ ५	८ ८ ८	११ ११ ११	१४ १४ १४	१७ १७ १७	२० २० २०	२३ २३ २३
१ १ १	औदारिक-वर्गणा ज्ञेयाः	वैक्रिय-वर्गणा ज्ञेयाः	आहारक-वर्गणाः	अग्रहण-वर्गणा ज्ञेयाः	तैजसवर्गणा ज्ञेयाः	अग्रहण-वर्गणाः	भाषावर्गणा ज्ञेयाः

२८ २८ २८	३१ ३१ ३१	३४ ३४ ३४	३७ ३७ ३७	४० ४० ४०	४३ ४३ ४३	एवं ध्रुव १ अध्रुव २
२७ २७ २७	३० ३० ३०	३३ ३३ ३३	३६ ३६ ३६	३९ ३९ ३९	४२ ४२ ४२	△सचित ३ अचित ४
२६ २६ २६	२९ २९ २९	३२ ३२ ३२	३५ ३५ ३५	३८ ३८ ३८	४१ ४१ ४१	शून्य ५ प्रत्येक ६ अनंत ७-धूमिका ८ अवश्या ९
अग्रहण-वर्गणा ज्ञेयाः	आनप्राणवर्गणास्तद्ज्ञेयाः	अग्रहण-वर्गणा ज्ञेयाः	मनोवर्गणा	अग्रहण-वर्गणाः	कर्म-वर्गणाः	अनंता वर्गणाः परि-कल्पनीयाः । ▲

वर्गणा अपि स्थाप्याः । अत्र सैद्धान्तिकाः कार्मग्रन्थिकाश्च केचिदौदारिक-वैक्रियाहारकवर्गणानामप्यन्तरद्वयेऽग्रहणवर्गणा इच्छन्ति । युक्तं तच्चत औदारिकवर्गणाभ्यो वैक्रियवर्गणास्ताभ्योऽप्याहारकवर्गणाः प्रदेशतोऽसंख्येयगुणा इष्यन्ते । एतच्चान्तरालेऽग्रहणवर्गणा विना नोपपद्यते । परं कर्मप्रकृतौ नोक्ताः । भागावसरस्तत्र य उपशान्तो वेदनीयमेव बध्नाति स यत् किमपि द्रव्यं गृह्णाति तदेकस्य वेदनीयस्यैव भवति । अन्यस्य बन्धाभावात् । यस्तु सूक्ष्मः षड्विधं बध्नाति तेन गृहीतं षड्विभागैः परिणमति । एवं सप्तधा सप्तभिः, अष्टधा अष्टभिः परिणमति । ननु ते भागाः समा विषमा वेत्याह–

आउगभागो थोवो नामे गोए समो तओ अहिगो ।
आवरणमंतराये सरिसो अहिगो य मोहे वि ॥ ९५ ॥
सव्वुवरि वेअणीयं भागो अहिगो उ कारणं किं तु ।
सुहदुक्खकारणत्ता ठिईविसेसेण सेसाणं ॥ ९६ ॥

अष्टधा बन्धे यदनन्तस्कन्धात्मकं द्रव्यं गृह्णाति तन्मध्यात् सर्वस्तोको भाग आयुषः । तदपेक्षया नामगोत्रयोरधिकः । स्वापेक्षया समः । ज्ञानदर्शनावरणान्तरायाणां स्वापेक्षया समो नामगोत्रापेक्षया ऽधिकः । एतदपेक्षया मोहेऽधिकः । मोहे सर्वोपरि भागो जातस्ततोऽपि वेदनीये इति । किं कारणं ? सुख-दुःखकारणरूपं हि वेदनीयं तत्भागपरिणताश्च पुद्गलाः स्वाभावादेव प्रचुराः सन्तः स्वकार्यं कर्तुमलम् । शेष कर्मपुद्गला स्वल्पा अपि स्वकार्यं कुर्वन्ति । स्निग्धान्नं स्वल्पमपि तृप्तिं करोति, कदन्नं बहु इति । सुखदुःखरूपत्वात् वेदनीयस्य बहुभागाः स्थितिविशेषाच्छेषकर्मणामल्पत्वं बहुत्वमिति । साद्यादीनाऽऽह–

छण्हं पि अणुक्कोसो पएसबन्धो चउव्विहो बन्धो ।
सेसतिगे दुविगप्पो मोहाउ [य] सव्वहिं चेव ॥ ९७ ॥

षण्णां ज्ञान-दर्शनावरण-वेदनीय-नाम-गोत्रा-ऽन्तरायकर्मणामनुत्कृष्ट एव प्रदेशबन्धे चतुर्विधः साद्यादिर्बन्धो भवति । कथं सूक्ष्मस्योत्कृष्टयोगे स्थितस्यैकं द्वौ वा समयौ यावदुत्कृष्टः प्रदेशबन्धः प्राप्यते । सूक्ष्मो मोहायुषी न बध्नात्यतोऽनयोर्भागं द्रव्यमिह बहु मिलतीत्युत्कृष्टः । तत्र उपशान्तेऽबन्धको भूत्वा निपत्योत्कृष्टादनुत्कृष्टं बध्नतः सादिः । तमप्राप्तानामनादिः । ध्रुवाऽध्रुवौ प्राग्वत् । शेषत्रिके जघन्याऽजघन्योत्कृष्टरूपे साद्यध्रुवौ द्विधा । तत्र सूक्ष्मे उत्कृष्टः सादिः । पातेऽध्रुवः । जघन्यस्तु षण्णां [1]पर्याप्तमन्दवीर्यसप्तधाबन्धकसूक्ष्मनिगोदस्य भवाद्यसमये लभ्यते । द्वितीयेऽजघन्यः पुनः संख्याते-नाऽसंख्यातेन वा कालेन जघन्यः । ततोऽजघन्यः । एवमनयोः साद्यध्रुवता । मोहायुषोः सर्वत्रैव जघन्यादौ४ द्विधा तत्र मिथ्यादृग् सम्यग्दृग्वाऽनिवृत्त्यंतः सप्तबन्धको मोहस्योत्कृष्टप्रदेशबन्धं करोति । पुनरनुत्कृष्टं उत्कृष्टमेवमनयोः साद्यध्रुवता । जघन्याजघन्यौ सूक्ष्मनिगोदादिषु सरतामुक्तौ । उत्तराणामाह—

△ एतदन्त्यकोष्ठगतवर्गणाभेदा अस्माभिः सम्यग् नावगम्यन्ते । १ पर्याप्तं=अत्यन्तम् ।

तीसण्हमणुक्कोसो उत्तरपयडीण चउविहो बन्धो ।
सेसतिगे दुविगप्पो सेसाणं चउविगप्पो वि ॥ ९८ ॥

ज्ञानाव० ५, स्त्यानर्द्धित्रिकवर्जदर्शना० ६, अनंतवर्जकषाय १२, भयजुगुप्सा, अन्तराय ५, त्रिंशतोऽनुत्कृष्टः साद्यादिश्चतुर्धाऽपि । तत्र ज्ञानावरण ५ अन्तराय ५ दर्शनानां ४=१४ यथामूलप्रकृतिषट्कस्य भावितः तथैव भावनीयः। परं दर्शने निद्रापञ्चकभागाधिक्यं। निद्राद्विकस्य त्वविरतादि निवृत्त्यन्ताः सप्तधा बन्धकाले एकं द्वौ वा समयावुत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः । आयुर्द्रव्यभागोधिकः सप्तधात्वात् स्त्यानर्द्धित्रिकभागोप्यधिकः मिथ्यादृग्-सासादनावेव तद्बध्नीतो न्यौ। नान्ये । मिश्रस्य उत्कृष्टयोगो नास्तीति सोऽपि न । उत्कृष्टात्प्रिपत्याऽनुत्कृष्टं गतस्य सादिः । अनाद्यादि प्राग्वत् । अप्रत्याख्यानानां (४) अविरते उत्कृष्टो बन्धः । मिथ्यात्वानन्तानां ५ भागोऽधिकः । प्रत्याख्यानानां (४) देशविरते उत्कृष्टः । पूर्वाणां भागोऽधिकः । भयजुगुप्सयोरविरतादिनिवृत्त्यन्ता उत्कृष्टबन्धकाः मिथ्यात्वभागो लभ्यते । सज्वलनक्रोधस्याऽनिवृत्तिः पुंवेदे छिन्ने उत्कृष्टबन्धं करोति । मिथ्यात्वाद्यकषाय १२, नोकषायाणां ९ भागोऽधिकः । [माने] क्रोधभागोऽधिकः । (मायालोभयोः) [मायायां क्रोधमानभागोऽधिकः] लोभे सर्व मोहभागोऽतोऽधिकः । तत्रोत्कृष्टादनुत्कृष्टं गच्छतां सादिः। अनाद्यादिः प्राग्वत् । शेषत्रिके द्विधा-तत्राऽनुत्कृष्टप्रस्तावे उत्कृष्टः सादिरध्रुवश्चोक्तः। जघन्याऽजघन्यौ निगोदेषु सरतां भाव्यौ । त्रिंशतः शेषासु चतुर्धाऽपि, सादिरध्रुवश्च सम्बध्यते । तत्राऽध्रुवाणामध्रुवत्वादेव, ध्रुवाणां त्रिंशद्हृतैव शेषाः १७, तत्र स्त्यानर्द्धित्रिकमिथ्यात्वानन्तानुबन्धिनां ८ सप्तधा बन्धको मिथ्यादृगुत्कृष्टबन्धं करोति । निपत्यानुत्कृष्टं गतस्येत्याद्यनुवर्त्तमाना साद्यध्रुवत्वम् । जघन्याऽजघन्यौ निगोदेषु वाच्यौ । वर्णादिनवकस्याऽप्येवमेव वाच्यं। परं सप्तबन्धको मिथ्यादृष्टिर्नाम्नस्त्रयोविंशतिं बध्नन्नुत्कृष्टप्रदेशबन्धकः ।

स्वामित्वमाह--

आउक्कस्सपएसस्स पंच मोहस्स सत्तठाणाणि ।
सेसाणि तणुकसाओ बन्धइ उक्कोसगे जोगे ॥ ९९ ॥

आयुषः उत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य मिथ्यादृगविरतदेशप्रमत्ताऽप्रमत्ताः पञ्च स्वामिनः । [योगस्य] अल्पत्वान्न सासादनः । मिश्रनिवृत्त्यादयस्त्वायुर्बन्धं न कुर्वन्त्येव। मोहस्योत्कृष्टबन्धस्वामित्वे सासादनमिश्रे त्यक्त्वाऽनिवृत्त्यन्तानि सप्तस्थानानि । शेषाणि षट्कर्माणि तनुकषायः सूक्ष्म उत्कृष्टयोगस्य उत्कृष्टप्रदेशानि बध्नाति मोहायुषी न बध्नातीति तद्भागोऽधिकः । जघन्यमाह--

सुहुमनिगोयापज्जत्तगस्स पढमे जहण्णगे जोगे ।
सत्तण्हं पि जहण्णो आउगबंधे वि आउस्स ॥ १०० ॥

सूक्ष्मनिगोदस्याऽपर्याप्तस्य भवाद्यसमये जघन्ययोगस्थस्यायुर्वर्जसप्तकर्मणामेकं समयं जघन्यतः प्रदेशबन्धः । आयुषोऽपि जघन्यप्रदेशबन्धोऽस्यैवायुर्बन्धकाले भवति । उत्तराणामुत्कृष्टजघन्यबन्धस्वामिन आह--

सत्तरस सुहुमसरागा पंचगमणियट्टिसम्मगो नवगं ।
अजई बीयकसाये देसजई तइयए जयइ ॥ १०१ ॥

ज्ञानावरण ५, दर्शन० ४, सातयशःकीर्त्युच्चैर्गोत्राऽन्तराया-५-णां=१७ सूक्ष्म उत्कृष्टप्रदेशबन्धं करोति । मोहायुर्भागोऽत्र दर्शनावरणनामयोरनुक्तप्रकृतिभागाश्च । पुंवेदः संज्वलन ४. पंचकमनिवृत्ति-

त्कृष्टं बध्नाति । हास्यरतिभयजुगुप्साभागोऽत्र । सम्यग्दृग्गाविरताद्यपूर्वान्तः सम्यग्दृष्टिः निद्राद्विक-हास्यषट्क-तीर्थकरत्वं नवकं बध्नाति । मिथ्यात्वभागोऽत्र । 'अजति' दविरतो 'द्वितीयकषायान्' ऽप्रत्याख्यानान् वेदयतिस्तृतीयान् प्रत्याख्यानान् 'यतते' उत्कृष्टाणू [नू] बध्नाति ।

तेरस बहुप्पएसं सम्मो मिच्छो व कुणइ पयडीओ ।
आहारमप्पमत्तो सेसपएसुक्कडं मिच्छो ॥ १०२ ॥

असात-नरायु-देवायु-देवद्विक-वैक्रियद्विक तुल्याद्यसंहनन-शुभखगति-सुभग-सुस्वरा-ऽऽदेयास्त्रयोदश बहुप्रदेशाः सम्यग्दृग् मिथ्यादृग्वा करोति । आहारकद्विकमप्रमत्तो निवृत्तिश्चोत्कृष्टप्रदेशं बध्नाति । उक्तचतु पञ्चाशच्छेषाः षट्षष्टि.प्रदेशोत्कटबन्धा मिथ्यादृष्टिरेव करोति । कीदृगुत्कृष्टं जघन्यं च करोतीत्याह—

सन्नी उक्कडजोगी पज्जत्तो पयडिबन्धमप्पयरो ।
कुणइ पएसुक्कोसं जहन्नयं जाण विवरीए ॥ १०३ ॥

'संज्ञी' समनस्कः उत्कटयोगव्यापारः पर्याप्तिमान् प्रकृतिबन्धकेष्वल्पतरप्रकृतिबन्धकः । करोति (प्रकृष्टि) [प्रदेश] बन्धमुत्कृष्टं, उक्तगुणविपरीते जघन्यं विद्धि । जघन्यबन्धस्वामित्वमाह—

घोलणजोगिअसन्नी बंधइ चउ दुन्नि अप्पमत्तो उ ।
पंच असंजयसम्मो भवाइसुहमो भवे सेसा ॥ १०४ ॥

नारकदेवायुषी नरकद्विकमेनाश्चतस्रो घोलमानयोगोऽसंज्ञी बध्नाति जघन्यप्रदेशाः एकं चतुरो वा समया(:) [नू]। पृथिव्यादयश्चतुरिन्द्रियान्ता देवनरकयोर्नोत्पद्यन्ते तेन नैतच्चतुष्कं बध्नन्ति। असंज्ञ्यपर्याप्तस्तु तथाविधसंक्लेशविशुद्ध्यभावान्न तद्बध्नातीत्यनुक्तोऽपि पर्याप्तो दृश्यः । द्वयमाहारकद्विकमप्रमत्तो घोलमानयोगो नाम्न एकत्रिंशद्बन्धको जघन्य करोति । देवद्विकवैक्रियद्विकतीर्थकराः पञ्च भवाद्ये समयेऽविरत (नू) [देव०४नु० ती० वे०] सम्यग्दृग्जघन्यप्रदेशाः करोति, पर्याप्त एकोनत्रिंशद्बन्धकः । उक्तं कादशेभ्यः शेषाः १०९ भवादौ बह्वीर्बध्नन् सूक्ष्मापर्याप्तनिगोदजीवो जघन्यप्रदेशा बध्नाति ।

प्रकृतिस्थित्यादिहेतूनाह—

जोगा पयडिपएसं ठिइअणुभागं कसायओ कुणइ ।
कालभवे खित्तविक्खो उदओ सविवागअविवागो ॥ १०५ ॥

योगो वीर्यं तस्मात्प्रकृतिः कर्मणां स्वभावः, पुद्गलास्तिकायदेशाः प्रदेशाः, कर्मवर्गणाऽन्तःपातिनः कर्मस्कन्धाः समाहारः। तद् जीवः करोति । प्रकृतिप्रदेशयोर्योगो हेतुरित्यर्थः । मिथ्यात्वाविरतिकषायाणामभावेऽप्युपशान्तादिषु केवलयोगेनैव वेदनीयं बध्यते । अयोगे तु न बध्यते इत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां योग एव हेतुः प्रधानं । ननु योगः कियान् ? आह सूक्ष्मनिगोदस्यापि सर्वजघन्यवीर्योऽपि प्रदेशोऽसङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणान् वीर्यस्य भागान्प्रयच्छति । बहुवीर्ये तु बहुतराऽसंख्येयभागाः ज्ञेयाः । तच्च जघन्यवीर्याणां समुदाय एका वर्गणा, एकाधिके द्वितीया, एवं [द्वि]त्र्यादिभिः, १५-१५-१५, १४-१४-१४, १३-१३-१३, १२-१२-१२, ११-११-११, १०-१०-१०, एवं यदा एकोत्तरा वृद्धिर्न प्राप्यते किन्त्वसंख्येयवीर्यैरेव तदा तैः समैरेका स्पर्द्धकवर्गणा एवं द्व्यादिभिर्यावत् श्रेणेरसंख्यातभागवर्तिप्रदेशमानानि । तेषां समुदाय एकं योगस्थानकं । सूक्ष्मनिगोदस्य यज्जघन्य-

नन्ता जीवास्तथाप्यसंख्येयान्येव स्थानानि यत एकस्मिन्नेव स्थाने स्थावरा अनन्ता जीवा भवन्ति, त्रसास्त्वसंख्याताः। स्थानं स्थितिः कर्मणो जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कृष्टतः सागरकोटाकोटयादिका स्थितिः। अनु पश्चाद् बन्धाद् भवनं अनुभवो यस्याऽसौ अनुभागो रसः समाहारः तज्जीवः कषायात्करोति तवध्यवसायात्। कषाया ह्युदीरणाः सर्वजघन्याया अपि कर्मस्थितेर्निर्वर्तकान्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशमानान्यान्तर्मौहूर्तिकान्यध्यवसायस्थानानि जनयन्ति। रसः पूर्ववत्। मिथ्यात्वाऽविरत्यभावेऽपि कषायसद्भावे प्रमत्तादिषु स्थित्यनुभागौ भवतः। [तद]भावे तूपशान्तादिषु नेति त्वन्वयव्यतिरेकाभ्यां कषायजत्वम्। 'कालभवे' त्ति इह तावन्मूलप्रकृतयो ध्रुवोदयाः। ज्ञानाव० ५ दर्शन० ४ मिथ्यात्वतैजसकार्मणवर्णादि ४-अगुरुलघु-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-निर्माण-अन्तरायाः ५=२१ ध्रुवोदया एव सर्वजन्तूनामुदयच्छेदादर्वागेतदुदयो भवत्येव। शेषाणां तु कालभवक्षेत्राऽपेक्षः। तथाहि-निद्रादीनां प्रायो रजन्यादिकाले उदयः, गत्यादीनां भवं प्राप्योदयः, आनुपूर्व्यादीनां क्षेत्रापेक्ष उदयः। (अथवैकोऽपि निद्रोदयः कालं ग्रीष्मं, भवं पृथिव्यादिकं, क्षेत्रं सजलादिकं प्राप्योदयः। आनुपूर्व्यादीनां क्षेत्रापेक्ष उदयः)। अथवैकोऽपि निद्रोदयः कालं ग्रीष्मं भवं पृथिव्यादिकं क्षेत्रं सजलादिकं प्राप्य वर्धते। द्रव्यभावाऽपेक्षे वा। द्रव्यं दधिकृशरादि प्राप्य निद्रां भावे चित्तस्वास्थ्यादि। उदयो द्विधा सविपाकोऽविपाकश्च। यत्र स्वस्वभावस्थित स्वस्वरूपेणैव कर्मोदेत्यसौ सविपाकः यथा नरस्य नरगतिपञ्चेन्द्रियजात्यादितद्भवयोग्यकर्मोदयः। यत्र तु स्तिबुकसंक्रान्त्या परप्रकृतिभावेन कर्म वेद्यतेऽसौऽविपाकः। यथा नरस्य नरगतिस्त्वेन वेद्यमानानां नरकतिर्यग्देवगतिनामुदयः। तस्मात्स्वरूपेण वा पररूपेण वा वेदितमेव कर्म क्षीयते। योगस्थानानि कारणं १, प्रकृति २ प्रदेशाः ३ कार्यं, स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानानि कारणं ४, स्थितिविशेषाः कार्यं ५ अनुभागबन्धाध्यवसाय[स्थानानि] कारणं ६ अनुभागाः कार्य ७। एषां अल्पबहुत्वमाह—

सेढिअसंखेज्जइमे जोगट्ठाणाणि होन्ति सव्वाणि।
तेसि असंखेज्जगुणो पयडीणं संगहो सव्वो ॥१०६॥
तासिमसंखेज्जगुणा ठिईविसेसा हवन्ति नायव्वा।
ठिइबन्धज्झवसायट्ठाणाणि असंखगुणिआणि ॥१०७॥
तेसिमसंखेज्जगुणा अणुभागे होन्ति बन्धठाणाणि।
एत्तो अणंतगुणिआ कम्मपएसा मुणेयव्वा ॥१०८॥
अविभागपलिच्छेआ अणंतगुणिआ हवन्ति इत्तो उ।
सुयपवरदिट्ठिवाए विसिट्ठमयओ परिकहन्ति ॥१०९॥

एकाकाशश्रेणेरसंख्येयभागे यावन्तः प्रदेशास्तत्संख्यानि योगस्थानानि। तानि चोत्तरपदापेक्षया सर्वस्तोकानीति शेषः। तेभ्योऽसंख्येयगुणः प्रकृतीनां 'सङ्ग्रहः' समुदयः सर्वोऽपि 'संखाईआओ खलु ओहोणाणस्स सव्वपयडीओ, इति वचनात्। एतदावरणस्याप्येतावन्तो भेदा एवं मत्यादीनामपि, आनुपूर्वीणां बन्धोदय वैचित्र्येणाऽपि[प्य]संख्याता भेदाः, ते च लोकस्य सङ्ख्येयभागवर्तिप्रदेशराशितुल्या इति चूर्णीकारोक्तविशेषः। 'भेदाः' प्रकृतय उच्यन्ते ताभ्यः स्थितिविशेषा अन्तर्मुहूर्त्तं एकद्विसमयाधिकादिरूपा असंख्यातगुणा भवन्ति। एकैकस्या प्रकृतेरसंख्यातैः स्थितिविशेषैर्बध्यमानत्वात्। स्थितिः कर्मणोऽवस्थानानि। स्थितिविशेषेभ्य [स्थितिबंधाध्यवसायस्थानान्यसंख्येयगुणानि। एकैकस्थितिविशेषोऽ]

(ताभ्य) संख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणैरध्यवसायस्थानैर्जन्यते, तेभ्यः स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानेभ्योऽसंख्येयगुणान्यनुभागबन्धस्थानानि भवन्ति, यतः स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानमेकैकमन्तर्मुहूर्तमानम्। अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानं त्वेकैकं जघन्यतः सामयिकं उत्कृष्टतोऽष्टसामयिकमिति । एतेभ्यः अनन्तगुणाः कर्मप्रदेशाः स्कन्धाः गुणितव्याः। यत एते सिद्धानन्तभागेऽभव्येभ्योऽनन्तगुणाः प्रतिसमयं गृह्यन्ते । क्षीरनिम्बाद्यधिश्रयणैरिवानुभागबन्धाध्यवसायस्थानैस्तन्दुलेष्विव कर्मपुद्गलेषु रसो जन्यते। स चैकस्याऽपि परमाणोः केवलिना छिद्यमानः सर्वजीवानन्तगुणानविभागपलिच्छेदान्प्रयच्छति । यतोऽन्यो न। तेऽविभागपलिच्छेदा अनन्तगुणा भवन्त्येतेभ्यः, कर्मस्कन्धेभ्यः, यतः प्रतिपरमाणु सर्वजीवानंतगुणाः प्राप्यन्त इति। श्रुतं द्वादशाङ्गं तत्प्रवरो दृष्टिवादस्तत्र विशिष्टमतयः तीर्थंकरगणधराः परिकथयन्तीति विधानद्वारम् ।

सम्प्रति निःप्रत्यवायनिस्तीर्णप्रतिज्ञाभरो ग्रन्थकारः प्राह:--

एसो बंधसमासो पिण्डुक्खेवेण वण्णिओ कोइ ।
कम्मप्पवायसुयसायरस्स निस्संदमित्तो उ ॥११०॥

एष बन्धसंक्षेपः पिण्डितस्य कर्मप्रकृतिश्रुतादुत्क्षेपस्तेन न स्वेच्छया वर्णितः। कोऽप्यपूर्वः। कर्मप्रवादं प्रकृतिश्रुतं स एव महद्वात्सागरस्तस्य निस्यन्दमात्रः।

बंधविहाणसमासो रइयो अप्पसुयमन्दमइणा उ ।
तं बंधमोक्खनिउणा पूरेऊणं परिकहन्तु ॥१११॥

बन्धभेदो संक्षेपो रचितोऽल्पश्रुतेन मन्दमतिना च मयेति गम्यते । तं ऊनातिरिक्तं बन्धमोक्षनिपुणा जिनवचनान्तःसारज्ञाः पूरयित्वा शिष्येभ्यः परिकथयन्तु। कर्तुश्रोतृफलमाह--

इअ कम्मपयडिपगयं संखेवुद्दिट्ठनिच्छियमहत्थं ।
जो उ पउंजइ बहुसो सो नाहीइ बंधमोक्खत्थं ॥११२॥

इति कर्मप्रकृतिश्रुताऽन्तर्गतं संक्षेपोद्दिष्टं कथितं निश्चितं प्रमाणेन महानर्थो यस्य तत् निश्चितमहार्थम्, दृष्टिवादाद्यन्तर्गतविचारबहुलत्वात्। एवं भूतं चामुं यो बहुशः उपयोक्ष्यते व्याख्यानाऽध्ययनगुणनश्रवणचिन्तनधारणादिद्वारेण पुनः पुनरुपयोगं नेष्यति स बन्धस्य मोक्षस्य च कर्माष्टकध्वंसरूपस्याऽर्थं ज्ञास्यतीति [अन्त्य]मङ्गलम्।

[प्रशस्तिः]

सपादलक्षक्षोणीश-समक्षं जिनवादिनाम् ।
श्रीधर्मघोषसूरीणां, पट्टालङ्कारकारकाः ॥१॥ [अनुष्टुब्]
त्रिवर्गपरिहारेण, गद्यगोदावरीसृजः ।
बभूवुर्भूरिसौभाग्याः, श्रीयशोभद्रसूरयः ॥२॥ [,,]
स्वपरसमयज्ञानप्रीतप्रकृष्ट जगज्जना-
श्चतुरवचनामोदामूषामरेशगुरुप्रभाः ।
अभिनृपसभं गंगागौरप्रनर्तितकीर्त्तय-
स्तदनुमहसः पात्रं याता रविप्रभसूरयः ॥३॥ [हरिणी]

तच्छिष्यः [उदयप्रभसूरिः] स्वपरकृते श्री शतकस्य टिप्पनं [रचितवान्]॥छ॥ ग्रन्थाग्रं ॥१०००॥

शुद्धिपत्रकम्

पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
२	१०	ध्मातं	ध्मातं
"	१६	सम्यगदृशन०	सम्यग्दर्शन०
३	१२	वृक्तं	वुक्तं
३	१५	रन्तवर्ति	रन्तर्वर्ति
५	२२	सग्रहात्मिका०	संग्रहात्मिका०
७	१८	भिधानमनुयोग०	भिधानमनुयोग०
८	६	सर्वसक्रमादि०	सर्वसंक्रमादि०
"	१८	कर्ममौक्षलक्षणः।	कर्ममोक्षलक्षणः।
१०	६	तद्रूपतयेव	तद्रूपतयैव
"	६	चतुविधम्	चतुर्विधम्
"	६	प्रकृतिदीघम्	प्रकृतिदीर्घम्
"	११	सर्वत्रदीर्घ	सर्वत्र दीर्घ
"	"	सप्तविधब धाद्	सप्तविधबन्धाद्
१०	१४	ओप्य घ	ओप्य (घ)
१०	१५	निबधन	निबन्धन
१२	२६	सख्येयभाग०	संख्येयभाग०
"	२६	सपूर्ण०	संपूर्ण०
१३	१२	तेजोजागेण	तेजोजोगेण
१५	२२	ठिइअणुभाग	ठिइअणुभागं
१८	२१	सजमदंसण	संजमदंसण
"	२६	धटन्त	घटन्त
१६	२८	तेजोलेस्या०	तेजोलेश्या०
२०	४	सीन्नपज्जता०	सन्निपज्जत्ता०
२१	६	तब्भगएसु	तब्भवगएसु
२२	४	इयदिठ्ठी	इयदिट्ठी
"	२४	मिथ्यात्व	मिथ्यात्वं
२४	१४	विसेससाहि०	विसेसाहि०
२४	२२	०मिहिय	मिहियं
२५	१६	पविठ्ठा	पविट्ठा
२६	१३	सर्वजधन्य०	सर्वजघन्य०
"	१४	स्पर्धकउच्यते	स्पर्धकमुच्यते
"	२०	न्तिपद्यते	प्रतिपद्यते
"	२७	सचयात्मिकां	संचयात्मिकां
"	३०	वभागां	विभागां
२७	४	यदुनन्त०	यदनन्त०
२८	२४	एव	एवं

पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
२६	१२	कि वा	किं वा
"	२४	एका दश्यां	एकादश्यां
"	२६	छद्मथं	छद्मस्थं
३०	११	पर	परं
३१	२५	एवस वस्तोकवीय०	एव सर्वस्तोकवीर्य०
"	"	सवजघन्यः,	सर्वजघन्यः,
"	३०	श्रेण्यसख्य-	श्रेण्यसंख्य-
३२	३	विभागापचय	विभागोपचय
३२	२२	तद ख्यगुण०	तदसंख्यगुण०
३२	१२	पएसा ण	पएसाण
३२	३४	न सम्यग्..............इति। स एवं प्रतिभाति-तद्यथा-योगस्थानकानि आउत्कृष्टयोगसंज्ञिपर्याप्तक संभवानि भवन्ति।	
३३	१६	त्तगेसु, सव्व०	त्तगेसु सव्व०
३३	२४	बन्धनिरोपेन	बन्धनिरोधेन
३३	२५	न्निरोघस्य	न्निरोधस्य
"	२५	तन्निरोघश्च	तन्निरोधश्च
३४	५	लब्भति	लब्भंति
३६	२७	अभिनिविशो	अभिनिवेशो
३८	२४	बन्धो	बन्धो
४१	६	मुप्पान्यतो	मुप्पायन्तो
४७	१	संबेधः	संवेधः
४८	१३	तिकालवियं	तिकालविसयं
४८	३१	पुनरयम्-लब्ध	पुनरयम्-
४९	४	बहुलकर्म	बहुलकमं
४९	२८	त्रिविध चैतदथ	त्रिविधं चैतदर्थं
५०	१७	अवधिज्ञा नव्या-पारो	अवधिज्ञानव्या-पारो
"	२५	'इद्रियमणो	'इंद्रियमणो
"	२६	स्वरूपनिर्दश।	स्वरूपनिर्देशः।
५१	६	दसणावरणीयं	दंसणावरणीयं
"	१७	सामन्नग्गहण	सामन्नग्गहणं
५१	२६	ममीदर्शन	मीदर्शन
५२	२५	दुखोत्पादकं,	दुःखोत्पादकम्,
५३	१८	एतव्वा०	एतेव्वेवा०

पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
५४	१७	०द्रव्य	०द्रव्यं
५४	३०	कराम.माऽव्य०	करामानाव्य०
५४	३३	पतङ्ग—	पतङ्ग—
५५	१४	तेजोगुणापेत	तेजोगुणोपेत
,,	२३	व्यापारेऽपि	व्यापारेऽपि
,,	३१	विशुद्ध द्रव्यै'	विशुद्धद्रव्यैः'
५६	२७	विध्नपर्यायेन	विघ्नपर्यायेण
		विध्न	विघ्न०
६४	११	तित्थरणाम	तित्थयरणामं
६८	१६	समयवृद्ध	समयवृद्ध्या
६८	१७	प्रतिप.दनमिति	प्रतिपादनीयेति
६९	१७	मयगइ०	मणुयगइ०
७०	९	पुव्वकोडि०	पुव्वकोडि०
७०	२६	सहसम०	सहस्स०
७१	३	खवगाइसु	खवगाइसु
७१	२२	गुणास्थानयोः	गुणस्थानयोः
७२	१४	खवगस्स	खवगस्स
७३	३	अठारम्मण्हं	अट्ठारसण्हं
७४	२७	तत्थए०	तित्थ०
,,	१९	तव्वंधकेसु	तव्वंधकेसु
८३	२९	संकेलिट्ठो	संकिलिट्ठो
८५	३०	स्थितिरेवा	स्थितिरेव
८६	२९	दाणुव्वीओ	दाणुपुव्वीओ
८९	८	थिराथर	थिराथिर
९०	२१	किंचि	किंचि
९२	२३	॥१॥	॥७९॥
९३	२२	सव्वपडीणं	सव्वपयडीणं
९८	१२	अगुल०	अंगुल०
९९	१८	अणंतगुहीणं	अणंतगुणहीणं
९९	२९	यद्व्या०	तद्व्या०
१००	३	अठ्ठविह	अट्ठविह
१०१	१२	कमंसु	कमंसु
१०२	४	लम्मति	लब्भति
१०३	१३	सयया	समया
१०३	१५-२५-२६	२१ पुर्ववत्	पूर्ववत्
,,	१६	लम्मति	लब्भति
,,	३३	बधकस्स	बंधकस्स

पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
१०४	२०	मिच्छद्दिट्ठिम्मि	मिच्छद्दिट्ठिम्मि
१०५	२	लम्मति	लब्भति
१०६	१९	मिच्छद्दिट्ठी	मिच्छद्दिट्ठी
१०८	१९	बंद्धमाण०	बंधमाण०
१०९	२०	णिरूवणत्थ	णिरूवणत्थं
१०९	२५	बधठाणाणि	बंधठाणाणि
११०	२८	कश्चिदेकान्तिक,	कश्चिदेकान्तिकः,
१११	९	ठितिबधज्झ०	ठितिबंधज्झ०
११२	३	कम्मपोग्गला	कम्मपोग्गला
११२	२८	बधविहाण	बंधविहाण
११३	५	वुद्दिट्ठिं	वुद्दिट्ठं
११४	३	वाचकवर	वाचकवर
११५	१६	माहः—	माह—
११५	२३	प्रत्येक	प्रत्येकं
११६	१७	दसण	दंसण
११६	२७	चतुरसज्ञि०	चतुरसंज्ञि०
११७	३	अचक्षुःषि	अचक्षुषि
११७	११	सज्ञिनि	संज्ञिनि
११७	१४	बारगंसेमि	बारसेगंमि
११७	१५	उवआग	उवओग
११७	२१	चतुरसज्ञि०	चतुरसंज्ञि०
११७	२८	कण्ठय	कण्ठ्या
११८	८	त्रिकं जीव	[त्रीपुञ्जी]
११८	१७	अन्तमु०	अन्तमुं०
११८	१९	दलिकर०	दलिकैर०
११८	२१	हस्त्रा	ह्रस्वा
११८	२३	ह्स्वां	ह्रस्वां
११८	३१	बादरा	बादराः
११८	३५	॥११॥ .... ॥१२॥	॥११॥ [एवं क्षीणाः कषाया यस्य स क्षीणकषायः] ॥१२॥
११८	३६	वितराग	वीतराग
११९	४	पूवकोटिं	पूर्वकोटिं
११९	५	योगः	योग[रहितः]
११९	७	मुणय	मणुय
११९	८	मवेदर्शित०	मेव दर्शित०
११९	३२	समुद्धाते	समुद्घाते

पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
११६	३४	गुणेषूपया०	गुणेषूपयो०
११६	३७	पाठ;	पाठः
१२०	१०	लब्ध्यामा०	लब्ध्यमा०
१२०	२०	त्रयोदशः,	त्रयोदश,
१२०	३२	सुख	सुखं
१२१	३	निर्वाण	निर्वाणं
१२१	१३	सनप्पारभं०	सनप्पारंभज०
१२१	२१	औदारिक २०	औदारिक २.
१२२	२१	माहा०	महा०
१२२	३५	० तृष्णा ह्म०	०तृष्णाब्रह्म०
१२३	६	प्राण्यगो	प्राण्यंगो
१२३	७	शेष	शेषं
१२३	८	सत्तरुई	सुत्तरुई
१२३	१५	पुष्पाद्यै	पुष्पाद्यैः
१२३	२५	निवृत्य	निवृत्त्य
१२४	७	०मुहूर्तविशेष०	मुहूर्ताऽविशेष०
१२४	१७	सत्तावाव०	सत्ताऽऽव०
१२५	१	बधो	बन्धो
१२५	३२	ममस्मत्	मस्मत्०
,,	३२	लेशेत	लेशत
१२६	६	कामण	कार्मण
१२६	१८	मोहवजकम	मोहवर्जकर्म
१२६	२०	सूक्ष्माप०	सूक्ष्मोप०
१२६	२१	स्यादिति	स्यादिति [सादिः]
१२६	२४	ऽध्रुवाध्रुवो	ऽध्रुवध्रुवौ
१२६	३१	वण	वर्ण
१२६	३१	तजस०	तैजस०
१२७	२	गस्त्वा	गत्वा
१२७-१३२	३-६	भूत्त्वा	भूत्वा
१२८	४	युगयारन्यतरद्युग।	युगयोरन्यतरद्युगम्
१२८	६	अ यतर०	अन्यतर०
१२८	८	युग्मेव	युग्ममेव
१२८	११	आद्य,	आद्यः,
१२८	१३	सप्तादश०	सप्तदश०
१२८	२१	पर्याप्ते०	पर्याप्तिं०

पृष्ठम्	पंक्ति०	अशद्धिः	शद्धिः
१२८	२३	जातिर्वे०	जातिर्वै
१२८	३१-३४	यशकी०	यशःकी०
१२८	३१	विपक्षः	विपक्षाः
१२८	३५	रूप निवृत्य न०	रूपं निवृत्यनि०
१२९	३	आद्यं	आद्यः
१२९	६	एकस्त्रिंश०	एकत्रिंश०
१३०	२२	नृवेदः	नृवेदम्
१३०	३२	रित्या	रीत्या
१३१	३०	दुस्वर	दुःस्वर
१३१	३३	नाराचयोर्चतुर्दश	नाराचयोश्चतुर्दश
१३२	१४	० तोर्त्सिपण्य	तोत्सर्पिण्य
१३२	२५	सायङ्	साइय
१३२	३१	ऽध्रुवत्वात्	अध्रुवत्वात्
१३३	३३	ठिईमुक्कोमं	ठिइमुक्कोसं
१३४	३	ध्यवस्य०	ध्यवसाय०
१३४	६	०स्थान	०स्थानं
१३४	१३	तीर्थंकर	तीर्थंकरं
१३४	२४	बिन्दुवु०	बिन्दुचु०
१३४	३२	रस	रसं
१३५	११	पृथ्वि	पृथ्वी
१३५	२३	शुभत्त्वात्	शुभत्वात्
१३६	१४	तिर्यक्द्विकं,	तिर्यग्द्विकम्,
१३६	२६	क्षपणयोग	क्षपणयोग्य
१३७	२०	रस	रसं
१३७	२५	प्रमतत्वो०	प्रमत्तत्वो०
१३७	२६	द्विकोद्याता	द्विकोद्योता
१३८	३	तदैवे	तदैवै
१३८	२४	पर	परं
१३९	२२	त्रिपत्ययाः	त्रिप्रत्ययाः
१४०	६	ता	ताः
१४०	२३	स्निग्धोष्णौः	स्निग्धोष्णौ
१४१	३	सचित रे अचित।	सचित्त रै अचित्त
१४१	२१	शेष कर्मपुद्गला	शेषकर्मपुद्गलाः
१४२	१८	वर्तमाना	वर्तमानात्
१४३	२	सम्यग्दगा	सम्यग्दृगा